सोहनलाल द्विवेदी का काव्य

(POEMS OF SOHANLAL DWIVEDI)

Thesis Submitted to the
UNIVERSITY OF COCHIN
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
JALAJA, V. S.

Supervisor
DR. N. RAMAN NAIR
Prof. and Head of the Department

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN-22
1982

<u>**CERTIFICATE**</u>

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by V.S. JALAJA under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
University of Cochin
Dated : 18--11--1982

Dr. N. RAMAN NAIR
(Supervising teacher)

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin - 682022, during the tenure of scholarship awarded to me by the Cochin University. I sincerely express my gratitude to the Cochin University for this help and encouragement.

Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin - Pin 682022.

V.S. JALAJA

प्राक्कथन

प्रा क्क थ न

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन द्वारा राजनीतिक चेतना को अद्यतन अर्थ प्राप्त हुआ । उसके मूल में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की सक्रिय शक्ति थी । इसी समय यद्यपि ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसॉफिकल सोसायटी आदि ने हमारे राजनीतिक विचारों के प्रबोधन केलिए स्तुत्य कार्य किया है तथा इन संस्थाओं ने भारतीयों की भाव सरिणी को नए मुहावरों से संपन्न किया । साथ ही साहित्यकारों ने जिन्दगी के अनदेखे पक्षों को भावोन्मीलित करते हुए अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को नए स्वरों में संचरित किया ।

आज़ादी प्राप्त होने के पहले भारत के राजनीतिक जीवन में अनेक उतार चढ़ाव हुए हैं । समकालीन साहित्यिक रचनाएं इसका साक्षी हैं । आधुनिक हिन्दी साहित्य में राजनीतिक चेतना को प्रथम बार अभिव्यक्ति देनेवाले कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिली शरण गुप्त, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं । इनकी प्रारम्भिक रचनाओं से यह विदित होता है कि पहले हमारी राजनीतिक चेतना केवल जातीयता तक सीमित थी । किन्तु राजनीतिक रंगमंच पर गांधीजी के आगमन से उसका सिद्धान्त रूप में विकास केलिए मार्ग प्रशस्त किया । उन्होंने राष्ट्रीयता को जातीयता के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर सही दिशा दर्शायी । वस्तुतः भारत की राष्ट्रीयता में गांधी जी तथा उनके विचारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ । भारतीय धर्म और मूल्य पर आधारित उनकी विचार पद्धति की हमारी राष्ट्रीयता में सर्वस्वीकृति हुई ।

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने इस गांधीवादी राष्ट्रीयता को सही अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है। किन्तु छायावाद में आकर इस प्रवृत्ति क्षीण हो गयी, फिर भी कतिपय कवियों ने पूर्ववर्ति लीक को पकड़कर आगे बढ़ा। उनमें सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी आदि आते हैं। उन्होंने अपने युग की मांग की पूर्ति हेतु अपनी लेखनी को उस ओर मोड़ दिया।

सोहनलाल द्विवेदी गांधीवादी जीवन दर्शन तथा उनकी विचार पद्धति के सशक्त कवि है। उन्होंने अपना सारा साहित्यिक जीवन राष्ट्रीय चेतना के विकास केलिए सौंप दिया। सन् 1921 से उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन शुरू किया जब भारत कई गृह युद्धों से गुज़र रहा था। इस समय द्विवेदी की लेखनी ने हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रबोधन केलिए महत्वपूर्ण योग दिया। राष्ट्र के प्रति अतिरिक्त सजगता द्विवेदी की निजि विशेषता है। किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें उचित स्थान नहीं प्राप्त हुआ है।

द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन पर अभी तक कोई आलोचनात्मक मूल्यांकन नहीं हुआ है। इस दिशा में केवल दो ही ग्रन्थ आज उपलब्ध है। "काव्य के इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी" और "एक कवि एक देश" नाम से प्रकाशित द्विवेदी का अभिनन्दन ग्रन्थ। इन्हें द्विवेदी की रचनाओं के अध्ययन की कुंजी मान सकते हैं। इस अभाव की पूर्ति हेतु मैं ने द्विवेदी जी की काव्य रचनाओं पर शोध करने का निश्चय किया। इस शोध कार्य में मैं ने उनको राष्ट्रीय चेतना तथा गांधी विचार धारा के सही अभिव्यक्ता और एक सशक्त बाल साहित्यकार के रूप में देखने एवं परखने का प्रयास किया है।

यह शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय विषय की पृष्ठ भूमि उपस्थित करता है । विषय प्रवेश भी इस अध्याय में सम्मिलित है । यहाँ सन् 1857 से सन् 1947 तक की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों एवं समकालीन प्रमुख कवियों की राष्ट्रीय कविताओं का विवेचन किया गया है । इसके आधार पर यह प्रमाणित किया गया है कि लगभग सन् 1920 ई० तक की राष्ट्रीय चेतना में कई उत्थान-पतन आए हैं । समकालीन राष्ट्रीय चेतना भूमि-भूमिवासी जन की संकुचित भूमि में बद्ध था । किन्तु आगे चलकर राष्ट्रीयता ने मानवतावाद की व्यापक भूमिका को ग्रहण किया । इन उत्थान पतनों के बीच जब भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन ज़ोर पकड़ चुका था हिन्दी काव्य क्षेत्र में सोहनलाल द्विवेदी का प्रवेश होता है । इस परिवेश के आधार पर द्विवेदी की रचनाओं का अध्ययन आगामी अध्यायों में किया गया है ।

दूसरे अध्याय में द्विवेदी की राष्ट्रीय कविताओं का विवेचन किया गया है । राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए द्विवेदी की कविताओं को दो काल खण्डों में विभक्त किया गया है जैसे स्वतंत्रता के पूर्व की राष्ट्रीय कविताएं तथा स्वतंत्रता के बाद की राष्ट्रीय कविताएं । यहाँ उन्हें स्वतंत्रता आन्दोलन के एक प्रमुख राष्ट्रीय कवि के रूप में देखने का प्रयास किया गया है ।

तीसरे अध्याय में द्विवेदी जी की रचनाओं पर गांधी विचारधारा के प्रभाव का अन्वेषण किया गया है । यहाँ मैं ने गांधी विचारधारा को वादों, सिद्धान्तों या दर्शन से मुक्त करके उसको जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके आधार पर द्विवेदी की रचनाओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जैसे महात्मा गांधी के विराट व्यक्तित्व पर लिखी कविताएं तथा उनके सिद्धान्तों के प्रभाव से लिखी कविताएं ।

चौथे अध्याय में द्विवेदी जी के बालकाव्य पर विचार किया गया है। यहाँ बाल साहित्य की परिभाषा देते हुए उसकी विशेषताओं तथा सीमाओं पर प्रकाश डाला गया है। इन कृतियों के आधार पर द्विवेदी की रचना पद्धति का विश्लेषण किया गया है। उनकी बाल कविताओं को तीन श्रेणियों जैसे शिशुगीत, किशोर गीत तथा बाल गीत में बाँट कर उनके भावगत एवं शिल्पगत नवीनताओं का उल्लेख किया गया है। यहाँ वे बाल साहित्य के पारखी एवं सच्चे वैज्ञानिक के रूप में उपस्थित होते हैं।

पाँचवाँ अध्याय में द्विवेदी की कविताओं में प्राप्त गीतितत्व पर प्रकाश डाला गया है। गीतिकाव्य के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए द्विवेदी की रचनात्मक खूबी प्रस्तुत किया गया है। उनके गीतों में संस्कारजन्य मानवप्रेम तथा राष्ट्रीयता को अधिक स्थान मिला है।

छठे अध्याय में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति द्विवेदी में जो विशेष आस्था है उस पर विचार किया गया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्ति देने में द्विवेदी की रचनाएं कहाँ तक सफल हुए है उस पर प्रकाश डाला गया है।

सातवें अध्याय में द्विवेदी की रचनाओं की शैल्पिक विशेषताओं पर विचार किया गया है। इस सन्दर्भ में द्विवेदी की मौलिकता तथा उनकी प्रयोगशीलता का अध्ययन किया गया है।

अन्तिम अध्याय उपसंहार है। यहाँ एक कवि के रूप में हिन्दी साहित्य को उनकी देन तथा उनकी सफलता एवं सार्थकता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

यह शोध कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ॰ एन॰ रामन नायर के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है । इस प्रयत्न के दौरान आपसे प्राप्त प्रेरणा एवं स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन केलिए मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

श्री॰ सोहनलाल द्विवेदी की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत अध्ययन की पूर्ति केलिए आवश्यक पुस्तकें तथा बहुमूल्य सुझाव दिए । लखनऊ तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के विभाग के अध्यक्षों से भी मैं कृतज्ञ हूँ जिनसे अध्ययनात्मक यात्रा के बीच मुझे बहुमूल्य परामर्श मिले हैं । इस विभाग के मेरे अन्य गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे इस प्रबन्ध लेखन में सहायता मिली है तथा विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा और अन्य शुभ चिन्तकों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की है ।

कोचिन विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने आवश्यक छात्रवृत्ति देकर मेरी सहायता की है ।

हिन्दी विभाग,
कोचिन विश्वविद्यालय,
कोचिन पिन 682022·
तारीख· 18·11·1982

Laja VS
लजा, वी·एस·

विषय - सूची

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - एक ... ... 1 - 38

मोहनलाल द्विवेदी का पूर्ववर्ती राष्ट्रीय काव्य

उन्नीसवीं शती का नवजागरण - धार्मिक परिस्थिति
राजनीतिक परिस्थिति - सामाजिक परिस्थिति -
भारतेन्दुयुग की राष्ट्रीय चेतना - स्वर्णिम अतीत तथा
जन्म भूमि के प्रति प्रेम - जातीयता के उद्गार -
विदेशी शासन की स्तुति - मातृभाषा के प्रति प्रेम -
द्विवेदी युग की राष्ट्रीय चेतना - स्वराज्य की
राजनीतिक क्रान्ति तथा कांग्रेस - साहित्यिक प्रति
क्रिया - सांस्कृतिक जागरण - पिछड़े वर्गों के प्रति
सहानुभूति - मानवतावादी दृष्टिकोण - वीरपूजा
द्विवेदी युगोत्तर राष्ट्रीय चेतना - राजनीतिक
भूमिका - साहित्यिक प्रतिक्रिया - आस्थाबोध
का विकास - क्रान्ति का स्वर - बलिदान की
भावना - वीरनायकों की परिकल्पना -
अन्तराष्ट्रीय स्वर - निष्कर्ष ।

अध्याय - दो ... ... 39 - 77

मोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीयता की परिभाषा - द्विवेदी की राष्ट्रीय
चेतना की प्रेरणा भूमि - स्वतंत्रता के पूर्व की
राष्ट्रीय चेतना - स्वर्णिम अतीत का वर्णन -

पृष्ठ-संख्या

मातृभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम - वर्तमान दुर्दशा का वर्णन - समकालीन घटनाओं का चित्रण - स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय चेतना - स्वाधीनता जन्य हर्षोल्लास - नूतन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा - नए उत्तरदायित्वों के संवहन की प्रेरणा - जागरण गीत - वीरपूजा - निष्कर्ष ।

अध्याय - तीन ... ... 78 - 111

सोहनलाल द्विवेदी पर गांधी विचारधारा का प्रभाव

भारतीय राजनीति और महात्मा गांधी - गांधी विचारधारा - गांधीवाद अथवा गांधी दर्शन - आधुनिक हिन्दी काव्य और गांधी विचारधारा - द्विवेदी और गांधी विचारधारा - गांधी पर लिखी कविताएं - गांधीजी के दृष्टिकोण पर आधारित कविताएं - सत्य पर अटल विश्वास - अहिंसात्मक दृष्टिकोण - प्रार्थना की उपादेयता - व्रत और उपवास का महत्व - नारी उद्धार की भावना - ग्रामदशा और ग्रामोन्नति की भावना - अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोद्धार - चर्खे और खादी की महिमा की गूंज - सत्याग्रह और समर्पण की भावना - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - चार ... ... 112 - 155

सोहनलाल द्विवेदी का बाल-साहित्य

बाल साहित्य सामान्य परिचय - परिभाषा - विशेषताएं तथा सीमाएं - सोहनलाल द्विवेदी का पूर्ववर्ति बालकाव्य - सोहनलाल द्विवेदी का कार्यक्षेत्र बाल काव्यों का वर्गीकरण - शिशुगीत - भावपक्ष तथा शिल्प पक्ष - बालगीत - राष्ट्रीय गीत - जागरण गीत - नीतिपरक गीत - अनुभूतिपरक विशेषता - किशोर गीत - अनुभूतिपरक तथा शिल्पगत विशेषता - निष्कर्ष ।

अध्याय - पांच ... ... 156 - 190

गीतकार सोहनलाल द्विवेदी

सामान्य भूमिका - विशेषता - भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग - छायावाद युग - सोहनलाल द्विवेदी की रचना पद्धति - प्रकृति सम्बन्धी गीत - मानवीय भावों के अनुरूप प्रकृति चित्रण - प्रेम सम्बन्धी गीत - नारी सौन्दर्य - राष्ट्रीय गीत - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - छः ... ... 191 - 225

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं का सांस्कृतिक परिवेश

भूमिका - संस्कृति - सभ्यता - सांस्कृतिक काव्य - द्विवेदी के सांस्कृतिक काव्यों का परिचय - वासवदत्ता - उर्वशी - सरदार चूडावत - कर्ण और कुंती - एक बूंद - अशोक पुत्र कुणाल - भिक्षा प्राप्ति - महाभिनिष्क्रमण - मौलिक उद्भावना - सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण - समकालीन तथ्यों के समन्वय द्वारा सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण - पात्र परिकल्पना - मानवतावादी दृष्टिकोण - नैतिक दृढ़ता की प्रतिष्ठा - समभाव की प्रतिष्ठा - दाम्पत्य प्रेम में पातिव्रत्य पर ज़ोर - शिष्टाचार - निष्कर्ष ।

अध्याय - सात ... ... 226 - 266

सोहनलाल द्विवेदी का शिल्प विधान

शिल्प का स्वरूप - द्विवेदी द्वारा गृहीत काव्य शिल्प खण्डकाव्य का सामान्य विवेचन - द्विवेदी के खण्डकाव्यों का वस्तुविन्यास - वस्तुविन्यास में नाटकीयता - द्विवेदी द्वारा गृहीत काव्य शैली - वर्णनात्मक शैली - उद्बोधनात्मक शैली - प्रश्न वाचक शैली सम्बोधन शैली - आत्मपरक शैली - गीत शैली - छन्द योजना - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय - आठ ... ... 267 - 272

उपसंहार - द्विवेदी का योगदान

देश प्रेम की व्यापक परिभाषा - गांधीविचार धारा की नयी अभिव्यक्ति - परम्परा और मूल्यों का अन्वेषण - मानवतावाद की प्रतिष्ठा - सार्थकता के पहलु ।

परिशिष्ट ... ... 273 - 274

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची ... 275 - 284

अध्याय - एक

सोहनलाल द्विवेदी का पूर्ववर्ति राष्ट्रीय काव्य

अध्याय - एक

मोहनलाल द्विवेदी का पूर्ववर्ती राष्ट्रीय काव्य

उन्नीसवीं शती का नवजागरण

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध ने भारतीय जीवन तथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया । इस काल में समूचे भारत में सुधारवादी आन्दोलन चल रहा था[1] । राजनीतिक क्षेत्र में पराजय के बावजूद भारतवासी को यह महसूस होने लगा कि पराधीनता में भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहिए । इस कालावधि में देश में ऐसी कई सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का जन्म हुआ था जिन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के ज़रिए भारतीय जीवन तथा साहित्य को पुनर्जीवित करने का महान कार्य संपन्न किया । अंग्रेज़ी शिक्षा से प्राप्त बौद्धिक चिन्तन ने धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया । सुधारवादी दृष्टिकोण ने भारत में राष्ट्रीयता तथा तीव्र देश-प्रेम की भावना को उजागर किया ।

---

1. By the end of the 18th Centugary when British rule was definitely established in Bengal, the political, social and economic conditions of the people had deteriorated to a considerable extent, while the mental and moral condition was marked by inertia and stagnation. It set up a high standard of rational thinking, leading to so cial and relegious reforms which regenerated the whole of India.
History of the freedom movement in India - R.C. Magumdar.

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार

सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं जैसे ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, और थियासोफिकल सोसायटी आदि ने सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय पुनर्जागरण केलिए मार्ग प्रशस्त किया ।

ब्रह्म-समाज

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से उत्पन्न बौद्धिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप सन् 1825 को बंगाल में ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई । राजाराम मोहनराय द्वा संचालित इस समाज का मुख्य ध्येय सामाजिक तथा धार्मिक पुनर्जागरण था । फि फिर भी उसने जनता की राजनीतिक चेतना पर भी गहरा प्रभाव डाला है । भारत की राष्ट्रीय भावभूमि को सांस्कृतिक और धार्मिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न प्रथम बार राजाराम द्वारा संपन्न हुआ । भारत को स्वतंत्र करने उत्कट वांछा से उन्होंने भारतवासियों को अंग्रेज़ी शिक्षा की अनिवार्यता से अ कराया । उन्होंने प्राचीन धार्मिक - सामाजिक रूढ़ियों, मूर्तिपूजा, बहुदेव अवतारवाद, सतीप्रथा, बहुविवाह आदि का उन्मूलन करके भारत को नवीन मानवतावाद तथा शुद्ध ईश्वरवाद का दर्शन कराया । उन्होंने वेदों के आ पर भारत में एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की । राजाराम की सामाजिक धार्मिक सुधारों ने नई राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना केलिए मार्ग प्रशस

ब्रह्मसमाज के तत्वों के प्रचार प्रसार केलिए भारत में कई में ब्रह्ममण्डलियों की स्थापना हुई । उनमें बंबई की प्रार्थना समाज क विशेष उल्लेखनीय है । सन् 1867 में केशवचन्द्र सेन के प्रयास से प्रार्थना की स्थापना हुई । सह भोज, विधवा विवाह, अन्तरजातीय विवा शिक्षा, बाल-विवाह-निषेध, ईश्वर की एकता में विश्वास आदि सा धार्मिक कार्यक्रमों द्वारा समाज ने मानव समुदाय में नवजागरण का अ

अलावा इसके प्राचीन धार्मिक आदर्शों को मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में विवेचित कर जनसामान्य को ग्राह्य बना दिया । उन्होंने परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों के बन्धन से वैयक्तिक चेतना की पूर्णमुक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखा ।

आर्यसमाज

सन् 1875 को बंबई में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना हुई । भारत को पश्चिम के प्रभाव से बचाना आर्यसमाज का उद्देश्य था । सबसे पहले आर्यसमाज ने पश्चिमी सभ्यता में मुग्ध मूल्यच्युत भारतीयों को अपनी अनमोल सांस्कृतिक मूल्यों से अवगत कराया । उन्होंने धार्मिक सुधार तथा समाज के जीवन स्तर को ऊपर उठाने केलिए तथा प्राचीन रूढ़ियों और आडम्बरों को दूर करने केलिए अथक परिश्रम किया । स्वराज्य का महत्व प्रस्तुत करते हुए उन्होंने "सत्यार्थ प्रकाश" में लिखा है - कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है .... प्रजा पर पिता, माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है[1] । आर्यसमाज का दृष्टिकोण बिलकुल राष्ट्रीय है ।

आर्यसमाज ने सभवर्गों के साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित किया । उन्होंने वेदों का अध्ययन जनसाधारण केलिए सुगम बनाया[2] । इसके अतिरिक्त जनसाधारण में शिक्षा प्रचार का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण और राष्ट्रीय समझा ।

---

1. सत्यार्थ प्रकाश - दयानन्द सरस्वती - पृ.165 प्रथम संस्करण
2. He literally brought down the vedas fromthe skies, from the cloud land of stilled Sanskrit to the market place to the m in the streets. The vedas were no longer a sealed book for the elect. Swami Dayananda Saraswathi - Mr.A.K. Mukerji Contributed to the D.A.V. College Jubilee Commemmoration Volume - 1936 p.53

वस्तुत: हिन्दू धर्म में नई राष्ट्रीय चेतना को जागरित करने में राजा राममोहन राय के बौद्धिक आन्दोलन की अपेक्षा आर्यसमाज ने अधिक सहयोग दिया ।[1] आर्यसमाज की सुधारवादी दृष्टि ने वर्तमान राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया ।

<u>रामकृष्ण मिशन</u>

सांस्कृतिक नवोत्थान को गतिशील करने में रामकृष्ण परमहंस की देन बिलकुल अतुल्य है । मानवीय गौरव के प्रति वे बहुत ही सचेत थे । मानव-पीड़ा को धर्मनिरपेक्ष मानते हुए दरिद्र नारायण की सेवा में उन्होंने मानव जीवन की सार्थकता देखी ।

परमहंस के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1898 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । विवेकानन्द ने भारतीय मानस में स्वाभिमान की भावना भरी और राष्ट्र की परमुखापेक्षी प्रवृत्ति का विरोध किया । उन्होंने रामकृष्ण के सिद्धान्तों की व्यावहारिक धरातल पर व्याख्या की । उन्होंने भारतीय मस्तिष्क को दासता की मनोवृत्ति, कर्मकाण्ड तथा पुरोहितवाद से मुक्ति का सन्देश दिया । उन्होंने वेदान्त को गुफाओं, कन्दराओं और जटाधारी साधुओं के हाथ से छीनकर जन जीवन के मध्य लाकर और उसकी प्रामाणिक एवं व्यावहारिक समीक्षा की । वस्तुत: उनका धार्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन मनुष्य मात्र के सही विकास को दृष्टि में रखकर सम्पन्न हुआ था ।

---

1. It cannot be denied that the movement of Dayananda Saraswathi, as organised in the Aryasamaj has contributed more than the rational movement of the Raja's Brahma samaj to the developmen of a new national consciousness in the modern Hindu, particularly in the Punjab. This was really the bigining of that relegious and social revival amogg the Hindus of India to which we owe so largely the birth of our present national consciousness. Memoirs of My Life and Times - Pal.B.C. Vol.II, p.426

थियोसाफिकल सोसाइटी

आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्ति की प्रचुरता में आसक्त भारतीयों की राजनीतिक एवं मानसिक मुक्ति केलिए ऐनी बसेन्ट ने बड़ा सहयोग दिया है । "ब्रह्मविद्यासमाज" की स्थापना के द्वारा उन्होंने परमुखापेक्षी भारतीयों को स्वकीय संस्कृति एवं साहित्य से परिचित कराया । अखण्ड हिन्दुत्व को सुरक्षित रखने केलिए उन्होंने अपनी अद्भुत वक्तृता से जनता को जागरित किया । हिन्दुत्व के पुनर्जागरण केलिए शिक्षा-प्रचार पर ज़ोर दिया गया । विश्व-बन्धुत्व और सर्वधर्म समन्वय की स्थापना केलिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति सौंप दी ।

भारत की राष्ट्रीयता को बल देने केलिए ऐनी बेसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन का समर्थन किया ।

उपरोक्त सांस्कृतिक संस्थाएं भारतीय नवजागरण की नींव तैयार कर रही थीं । राष्ट्रीय चेतना का विकास भी इसी का फल है क्योंकि इन संस्थाओं ने तथा इनके प्रवर्तकों ने सामाजिक प्रतिबन्ध पर अपना विरोध प्रकट किया था ।

राजनीतिक परिस्थिति

शताब्दियों की पराधीनता से गुज़रते - गुज़रते भारत की विद्रोही चेतना का विस्फोट सन् 1857 में एक सैनिक विद्रोह[1] के रूप में प्रकट हुआ ।

---

1. The insurrection is essentially a military insurrection. It is the revolt of a lakhof sepoys...... It has nothing of the popular element in it. The proportion of those who have joined the rebels sinks into nothingness when compared with those whose sympathies are enlisted with the Government while the former may be counted by thousands, the latter may be counted by millious - The Mutinies - The Government and th the people - Kishore Chand Mithra.
Quoted from The History of Freedom movement in India
- R.C. Majumdar p.242

कतिपय इतिहासकारों ने उसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में देखा है।[1] किन्तु सच्चाई यह है कि प्रस्तुत विद्रोह के द्वारा भारतीयों को यथार्थ स्वतंत्रता आंदोलन चलाने की शक्ति प्राप्त हुई।

सन् 1857 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार समाप्त हो जाने पर भारत का शासन भार ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ग्रहण किया। भारतीय जनता में सरकार के प्रति विश्वास जगाने के लिए महारानी विक्टोरिया ने उसी वर्ष में ही यह घोषणा की कि सरकार के द्वारा सभी जाति तथा धर्मों का संरक्षण होगा और जन कल्याण ही सरकार का लक्ष्य रहा है। महारानी विक्टोरिया की घोषणाएं भारत वासियों के विक्षुब्ध मन को थोड़े समय के लिए शान्त करने में सफल हुई। उन्हें यह विश्वास होने लगा था कि अब उनपर कम्पनी-राज्य के अन्याय और अत्याचार नहीं होंगे। परन्तु भारतीय जनता की आशाओं पर तुषारपात हो गया। थोड़े समय के भीतर उनकी कल्पनाएं टूक-टूक हो गयीं।

1857 की असफल क्रान्ति से उत्पन्न विद्रोह एवं अविश्वास को संगठित शक्ति 1885 में "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना से प्राप्त हुई। इसके पहले ही ऐसी कई राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी जिनका कार्यक्रम जनता में उत्साह पैदा करने में सफल हुए थे। 1886 में कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने अपने भाषणों द्वारा जनता में विद्रोह की भावना जागरित किया। किन्तु फिर भी बीसवीं शती तक वह जनसाधारण का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती थी। वह तो केवल शिक्षित वर्ग का संगठन मात्र था।

---

1. What began as a fight for religion ended as a war of independence for there is not the slightest doubt that the rebels wanted to get rid of the alien Government and restore the old order of which the King of Delhi was the rightful representative.
Eighteen Fifty Seven - Surendranath Sen - p.411

सामाजिक परिस्थिति

अंग्रेज़ों ने अपनी कूटनीति के द्वारा भारत के जनजीवन को अशक्त और असहाय बना दिया था । उनके द्वारा दी गयी नवीन शिक्षा ने सामाजिक जीवन को अधिक दूषित कर दिया था । उनकी शिक्षा-नीति भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बिलकुल विरुद्ध थी । औद्योगीकरण और आर्थिक विपत्तियों के कारण श्रमिक वर्ग की अवस्था भी शोचनीय हो रही थी । उन्हें अपनी उदर-पूर्ति के लिए अनेक दुर्गुणों का आश्रय लेना पड़ा । बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, जातिपाँति, छूआछूत अन्धविश्वास आदि रूढ़ियों ने सामाजिक जीवन को अन्धकारपूर्ण बनाया । नैतिक पतन हो जाने पर ईर्ष्या, द्वेष, भोग विलास आदि अनेक व्यसनों से समाज अधःपतन की ओर जा रहा था । अब नेताओं को यह महसूस होने लगा कि राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार समाज को परिवर्तित करना राष्ट्रीय उत्थान केलिए अनिवार्य है । इस केलिए ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज, रामकृष्ण-मिशन आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं ने भारत में सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान का आन्दोलन शुरू किया । वस्तुतः ये आन्दोलन भारतीय जनता को राजनैतिक स्तर पर एकता के सूत्र में पिरोने तथा भारत की राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करने में सहायक सिद्ध हुए ।

भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय चेतना

अंग्रेज़ी शिक्षा एवं सभ्यता के प्रभाव से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवचेतना जाग रही थी । विदेशी संपर्क से जनता के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण में विकासोन्मुख परिवर्तन होता गया । साहित्यकारों में पुनरुद्धार की रुचि बढ़ी ।

कविता वर्धिनी सभा, हिन्दी वर्द्धिनी सभा, रसिक समाज, नागरी प्रचारिणी सभा आदि साहित्यिक संस्थाओं के द्वारा साहित्य को प्रोत्साहन मिलने लगा । इन सभाओं द्वारा साहित्य विस्तार के साथ राष्ट्रीय भावों का भी प्रचार हुआ ।

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का बीजवपन [1] भारतेन्दु युग में भारतेन्दु द्वारा सम्पन्न हुआ । उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा किया । उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा साहित्य में नए क्षितिजों को उद्घाटित किया । वे अनीति, देश की सामान्य दुरवस्था, अकाल और महामारी के प्रकोप, उर्दू के प्रति सरकार का पक्षपात, अंग्रेजी शासन के आर्थिक शोषण आदि के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करके पाठकों को समसामयिक प्रश्नों के प्रति जागरूक बना रहे थे । इस युग के अन्य प्रमुख कवियों में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायणमिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक आदि का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । प्रस्तुत युग की राष्ट्रीय कविता में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं ।

स्वर्णिम अतीत तथा जन्मभूमि के प्रतिप्रेम·

वर्तमान दुःख को भुला कर स्वर्णिम भविष्य के निर्माण केलिए प्रेरणा देने के उद्देश्य से कवियों ने जन्मभूमि को माता के रूप में चित्रित किया और स्वर्णिम अतीत के चित्रण द्वारा जनता को उत्साहित किया । भारत की प्राचीन महत्ता की ओर आकर्षित होकर भारतेन्दु ने एक स्थान पर लिखा है -

---

1· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ·429
16 वाँ संस्करण

ये कृष्ण बरन जब मधुर तान
करते थे अमृतोपम वेदगान
तब मोहित सब नारी वृन्द, सुनि मधुर बरन सज्जित छंद ।
इन्हीं के क्रोध किए प्रकाश, कांपत सब भूमंडल आकाश ।
इन्हीं के हुंकृति शब्द घोर गिरि कांपत है सुनि चारु ओर[1] ।

राधाकृष्णदास के "पृथ्वीराज प्रयाण तथा प्रताप-विसर्जन", "आनन्द-अरुणोदय" आदि में मातृभूमि के प्रति सहज स्नेह का सुन्दर चित्र मिलता है । देश वन्दना में श्रीधरपाठक का स्थान विशेष उल्लेखनीय है । उनके गीतों में भारत की स्वर्णिम अतीत की वन्दना के साथ स्वाधीनता की जय घोषणा और स्वतंत्र होने की कामना भी है ।

जय जयति सदा स्वाधीन हिन्द
जय जयति जयति प्राचीन हिन्द[2] ।

उनके "श्रान्त पथिक" की "भारतस्तव" नामक कविता में देश प्रेम का चित्रण और भी बेजोड़ रहा है । इनकी शैली बंकिम के "वन्देमातरम" की गरिमा लिए हुए है -

बंदि मातरम् देशमुदारम्
सुषमा-सदन-सकल सुख सारम्
भालविशाल हिमाचल भाजम् चरण विराजित अर्णवराजम् ।
लप-कूल सहस कोटि करवालम्, दलन-दुराप प्रताप विशालम् ।
जय जय प्यारा भारत देश

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली - दूसरा खण्ड - पृ.632-33 प्रथम संस्करण
2. हिन्द वन्दना - श्रीधर पाठक

जग में कोटि कोटि जुग जीवे, जीवन सुलभ अमीरस पीवे,
सुखदवितान सुकृत का तीवे, रहे स्वतंत्र हमेशा।[1]

भारतेन्दु मण्डल के तथा उस युग के अन्य कवियों ने देश प्रेम तथा स्वर्णिम अतीत के सम्बन्ध में बहुत लिखे जिनके द्वारा जनता में राष्ट्रीय चेतना जागरित हुई।

जातीयता के उद्गार

भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता धर्म पर अधिष्ठित थी। उसमें हिन्दू, हिन्दुस्तान की आवाज़ बुलन्द थी। कवियों ने हिन्दू धर्म और हिन्दू राष्ट्र के रक्षकों का नामस्मरण कई स्थानों पर किया है। वास्तव में उनकी राष्ट्रीयता म्लेच्छों के प्रति तिरस्कार की भावना लिये हुई थी। पं० प्रताप नारायणमिश्र ने हिन्दू जातीयता के उद्गारों का वर्णन खूब किया और युग की माँग को पूरा किया उन्होंने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान का नारा बुलंद कर हिन्दू जाति को जागृत करने का प्रयत्न किया।

चहहु जो सांचहु निज कल्यान, तो सब मिलि भारत संतान।
जपो निरन्तर एक जबान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।[2]

भारतेन्दु, प्रेमघन जैसे कतिपय कवियों ने व्यक्तिगत रूप से हिन्दू जाति पर व्यंग्य किया है और मुसलमानों की प्रशंसा भी की है। भारतेन्दु के शब्दों में देखिए -

---

1. श्रान्त पथिक - श्रीधर पाठक
2. तृप्यन्ताम - प्रतापनारायणमिश्र

जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदासहु नाहिं
जदपि जवन गजराज कियो इनहीं बलिके सत साज ।
पेमिन को मित करि नहिं जान्यो कबहु हिन्दु समाज ।
अकबर करिके बुद्धिमत्ता कहु सो मेटयो सन्देह ।[1]

विदेशी शासन की स्तुति

भारतेन्दु युग के राष्ट्रीय काव्य की प्रमुख विशेषता है - विदेशी शासन की प्रशंसा और उसके प्रति भक्ति । कवियों ने अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता, प्रजातंत्र पद्धति, ऊंची शिक्षा, प्रेस कानून आदि की प्रशंसा की । किन्तु फिर भी अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीति की भर्त्सना करने में वे कभी हिचके नहीं । सरकार की उदार नीति ने समकालीन कवियों में शासन के प्रति उदार-भाव पैदा किया । प्रेमघन जी ने महारानी विक्टोरिया के न्याय, दया, शासन प्रबन्ध आदि की मुक्तकंठ से प्रशंसा की तथा अंग्रेज़ों के शत्रु को अपना शत्रु समझा ।

शुद्ध नीति को राजाज्ञा स्वच्छंद बनायो ।
सो तो न्याय भवन में खरो न्याय दिखरायो ।
देश प्रबन्ध चतुर दयालु, न्याई दुखहारी ।
विद्या विनय विवेक मान शासन अधिकारी ।[2]

देश के वैतानिक कवि भारतेन्दु ने भी अंग्रेज़ों के शासन की कतिपय अच्छे कार्यों की प्रशंसा की है -

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड - पृ॰699
2. प्रेमघन सर्वस्व - भाग - 1 - पृ॰273

परम मोक्ष फल राजपद, परसत जीवन मांहिं ।
कृष्ण देवता राज सुत पद पर मनु चित मांहि ।

अधिकांश कवियों का लक्ष्य देशवासियों को वर्तमान दुर्दशा तथा पतन की ओर आकर्षित करते हुए उनमें सुधार लाने की आवश्यकता पर बल देना रहा है । किन्तु सुधार के माध्यम के बारे में वे चिन्तित थे । देश को समृद्धिशाली और उन्नत बनाने केलिए स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर दिया । प्रतापनारायण मिश्र जी कट्टर देश भक्त थे और स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करते थे । इन्होंने "तृप्यताम" कविता में बड़ी चित्ताकर्षक शैली द्वारा देश की महंगाई, अकाल और हीनावस्था का चित्र उपस्थित किया है -

महंगी और टिकस के मारे हमहि क्षुधा पीड़ित तन छाम,
साग पात लौं मिले न जिय भर ले लो वृथा दूध को नाम,
तुमहि कहा प्यावैं, जब हमरो करत रहत गोवंश तमाम,
केवल सुमृति अंक उपमा महि नाग देवता तृप्यताम[2] ।

अंग्रेज़ी शासन के दोषों को दिखाने के इस प्रयास ने जनता में चेतना उद्दीप्त करने में प्रेरणा दी है ।

मातृभाषा के प्रति प्रेम

भारतेन्दु में जो भाषा प्रेम है वह संकुचित नहीं है ।
और सामाजिक सदुद्देश्य भी है ।

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली - पृ॰702
2. तृप्यताम - प्रतापनारायणमिश्र - पृ॰16

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल[1] ।

भारतेन्दु जी से प्रेरणा पाकर आजकल कवियों जैसे प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, जगमोहन सिंह और प्रेमघन ने समाज सुधार, स्वदेशी आन्दोलन तथा भारतीय संस्कृति के उत्थान के लिए अनेक ग्रामगीत लिखे और लिखवाए । उनके इस लघु प्रयास का इतना बड़ा व्यापक प्रभाव हुआ कि एक ओर यह अशिक्षित जनता तक राष्ट्रीय भाव-भागीरथी बहा सका तो दूसरी ओर अपनी देशी भाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ा पाया । हिन्दी भाषा के भंडार की वृद्धि के लिए भारतेन्दु ने बहुत से ग्रन्थ नाटक, काव्य, प्रहसन आदि की रचना की तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी भाषा के प्रचार का आन्दोलन चलाया । वे हिन्दी को ही राज-भाषा व राष्ट्र-भाषा के रूप में समस्त भारत में प्रसारित होते हुए देखना चाहते थे -

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जत्न,
राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ।
भाषा सोधहु आपनी, होई सबै एकत्र,
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र
करहु विलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल[2] ।

निष्कर्ष

वस्तुतः भारतेन्दु युग में विदेशी शासन की स्तुति से आरम्भ होकर देशानुराग से युक्त कविताओं का सृजन हुआ । इस युग की राष्ट्रीयता समन्वय, समझौता, प्रतिक्रिया, विक्षोभ आदि रूपों में मुखरित हो रही थी । राष्ट्रीय

---

1. भारतेन्दु ग्रन्थावली - पृ.781
2. वही - पृ.738

भावना से मुखरित होते हुए भी इन कवियों में निम्नलिखित दोष बहुत अखरते हैं। उनमें आशावादी स्वर का नितान्त अभाव था। उन्होंने न्यूनाधिक मात्रा में पूर्वार्जित भक्ति और श्रृंगार की परम्परा से सम्बद्ध रहें। उन्होंने सरकार के प्रति खुलकर विद्रोह करने में हमेशा पीछे रहें। वे एक साथ राजभक्त कवि और जनता के प्रिय बनना चाहते थे। आत्मविश्वास इस युग के कवियों में अनुपलब्ध है।

द्विवेदी युग की राष्ट्रीय चेतना

बीसवीं शताब्दी का प्रारंभ जिसे द्विवेदी युग कहा जाता है राष्ट्रीय जागरण का चेतन काल है। पाश्चात्य संपर्क के फलस्वरूप भारतीय जीवन और साहित्य के विविध क्षेत्रों में नवोन्मेष की अपूर्व दिशाएं उद्घाटित हुई।

स्वराज्य की राजनीतिक क्रान्ति तथा कांग्रेस

बीसवीं शती में प्रवेश करते ही समस्त देशों में राष्ट्रीय चेतना ज़ोर पकड़ गयी थी और देश के स्वतंत्रता आन्दोलन एक देशव्यापी पुनरुत्थान का आन्दोलन बन चुका था। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को सुगठित करने एवं जनमानस में राष्ट्रीय भावना जागृत करने में कांग्रेस का बड़ा हाथ रहा है। कांग्रेस ने अपने सुगठित कार्य-क्रमों द्वारा भारतवासियों की बिखरी हुई राजनीतिक आकांक्षाओं को संगठित रूप प्रदान किया और भारतीय राजनीति को गतिशील बनाया। किन्तु सच यह है कि 1885 से 1905 तक क्रियात्मक रूप में कांग्रेस कुछ नहीं कर सका। इस कालावधि में कांग्रेसियों की नीति अनुनय विनय की थी। उनका कार्यक्षेत्र वैध आन्दोलनों तक सीमित रहा। उन्होंने बराबर राजभक्ति संबन्धी प्रस्ताव पास किए हैं।

सन् 1905 ई॰ भारतीय राजनैतिक इतिहास में चिरस्मरणीय है । इस काल से होकर कांग्रेस के कार्यक्षेत्र में विशेषकर भारत की राष्ट्रीय-चेतना में एक क्रियात्मक परिवर्तन आया । राष्ट्रीय-चेतना अधिक प्रखर रूप से राजनीतिक गगन में व्याप्त हो गयी थी । इसके कई कारण थे । जापान की रूस के ऊपर विजय ने एशियाई जातियों में आत्मविश्वास के भाव भर दिए थे । अलावा इसके 1905 ई॰ के पहले के कुछ वर्ष लार्ड कर्जन के दमन पूर्ण शासन के थे । कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारों में कमी, सरकारी गुप्त समितियों का कानून, विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में लाना, भारतीयों के चरित्र को "असत्यमय" बताना, तिब्बत आक्रमण (जिसे पीछे तिब्बत मिशन का नाम दिया गया) और अन्त में बंग-विच्छेद ये सब लार्ड कर्जन के ऐसे कार्य थे जिनसे देश की कमर टूट गयी और सारे देश में एक नयी स्पिरिट पैदा हो गयी[1] । इनमें सबसे बढ़कर बंग-भंग था, जिसने संपूर्ण भारत को विदेशी शासन का विरोधी बना दिया । बंग-भंग आन्दोलन के परिणाम स्वरूप जनता में एक व्यापक और जबरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ । बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया में कांग्रेस ने 1905 के अपने बनारसी अधिवेशन में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा की । गोखले की यह घोषणा स्वदेशी आन्दोलन की मूल सिद्ध हुई । यह स्वदेशी आन्दोलन देश प्रेम और भारतीयता के पुनरुत्थान का सहायक बन चुका । राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावनाएं अब वर्ग विशेष से बढ़कर जन सामान्य में प्रविष्ट होने लगी । मुसलमान भी, विशेषतः बंग-भंग के दिनों से ही राष्ट्रीय आदर्शों से दूर रहे थे 1913 ई॰ में ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन को अपना ध्येय मान लिया । मुसलमानों की स्वशासन प्रियता दोनों जातियों के सहयोग के लिए सहायक बन गये । 1914 ई॰ के प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों ने सक्रिया सहयोग दिया और इससे भारतीयों में आत्मविश्वास की भावना दृढ़ हुई । किन्तु फिर भी 1915 ई॰ तक भारतीयों की राजभक्ति की भावना में कमी नहीं हुई थी । इसलिए राजभक्ति की भावना द्विवेदी युगीन साहित्य में भी अभिव्यक्त हुई है ।

---

1. कांग्रेस का इतिहास - प्रथम भाग - सं॰ हरिभाऊ उपाध्याय - पृ॰ 64

1916 ई० में० तिलक तथा श्रीमती बेसेण्ट की होमरूल लीग की स्थापना हुई । इसी वर्ष दो प्रमुख घटनाएं हो गयीं । कांग्रेस-लीग योजना और कांग्रेस के दोनों दलों {1907 ई० की सूरत अधिवेशन में कांग्रेस नरम और गरम दो दल हो गए थे} में मेल स्थापित हो गया । इस पुनः संगठन ने भारतीयों में जान फूंक दी ।

1918 को कांग्रेस की तीसरी बैठक में यह मांग प्रस्तुत की कि सरकार की ओर से यह अधिकार की पूर्ण घोषणा कर दी जानी चाहिए कि लड़ाई समाप्त हो जाने पर भारत को उत्तरदायी-शासन-प्रणाली दी जाएगी ।

1915 में अफ्रीका से गांधीजी की वापसी भारतीय राजनीति में नवजागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को अधिक प्रेरणादायक सिद्ध हुए । गांधीजी के आगमन से भारत में उग्रवादी प्रवृत्तियों को अधिक प्रश्रय मिला । 1916 में फ़िजी की गिरमिट प्रथाको बन्द करने केलिए वे सचेत हुए । सन् 1917 में दूसरा दूसरी बार चम्पारन में सत्याग्रह किया गया । सन् 1918 में उन्होंने गुजरात के खेडा तथा अहमदाबाद में सत्याग्रह का प्रबल शस्त्र ग्रहणकिया ।

11 नवम्बर 1918 की अस्थायी सन्धी के अनुसार महायुद्ध का अन्त हो गया । किन्तु यह सच है कि युद्ध के पूर्व अंग्रेज़ों ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने केलिए जो सहानुभूतिपूर्ण नीति बनायी थी उसपर तुषारपात हो गया । युद्धोपरान्त भारत को उपहार रूप में रौलट एक्ट की प्राप्ति हुई जिस के अनुसार सरकार किसी को भी बिना मुकदमा चलाए गिरफ्तार कर सकती थी । 1819 के जालियानवाला बाग के हत्याकाण्ड ने भारतीय-राजनीति के इतिहास को एक नई दिशा दे दी । द्विवेदी युग के साहित्य में इन सब का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

साहित्यिक प्रतिक्रिया

बीसवीं शताब्दी के नवजागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी "सरस्वती" पत्रिका का बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने "सरस्वती" पत्रिका के द्वारा साहित्य-जगत में युगान्तर उपस्थित किया। "सरस्वती" के संपादन द्वारा द्विवेदी जी ने साहित्य-सृजन की अपेक्षा निर्माण, और व्यवस्था को अधिक महत्व दिया। "सरस्वती" ने साहित्य के शिल्प में एक नई भूमिका निभाई। सरस्वती के द्वारा खड़ी बोली एक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। प्रारंभ में यह भाषा अव्यवस्थित और भावों को वहन करने में अक्षम थी, पर धीरे धीरे द्विवेदीजी के प्रयत्नों से इसका परिष्कार हुआ। यह पत्रिकाओं के माध्यम से जब खड़ी बोली का विस्तार हुआ तो काव्य के साथ साथ गद्य की भी निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना जैसी विधाएं साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने लगीं। वास्तव में "सरस्वती" खड़ी बोली को काव्यभाव की महत्ता दिलाने के साथ ही गद्यविधाओं के उन्नयन का भी कार्य कर रही थी।[1]

द्विवेदीजी ने सरस्वती के द्वारा बहुत से कलाकारों को खड़ी बोली में काव्य-सृजन करने की प्रेरणा दी। द्विवेदी तथा उनके साथियों ने विचारों के क्षेत्र में नयी और बहुमुखी सामग्री का चयन किया। उन्होंने ऐतिहासिक और पुरातत्व विषयक लेखों में विदेशी सभ्यता और संस्कृति से अभिभूत भारतीयों के हीनताबोध को दूर करने और उनमें आत्म-गौरव की भावना जगाने का स्तुत्य कार्य किया। सच्चे मातृ भाषा प्रेमी के रूप में हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार केलिए अपना जीवन अर्पित कर दिया।

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - नवम भाग - संपादक - सुधाकर पाण्डेय पृ.32।

साहित्य के क्षेत्र में इस युग में व्यापक परिवर्तन आया । समाज के पीड़ित, प्रताड़ित और उपेक्षितों के प्रति स्नेह एवं सहानुभूति प्रकट की गई । साहित्य स्वतंत्रता एवं मानवतावाद का सन्देशवाहक बन गया । इस युग के कवियों ने परम्परा प्रथित विषयों को नवीन दृष्टि से देखा और उपेक्षित समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया । महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, ठाकुर गोपाल सिंह, गया प्रसाद शुक्ल सनेही त्रिशूल, रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, आदि इस युग के प्रमुख कवि हैं ।

सांस्कृतिक जागरण

देश प्रेम की भावना जो द्विवेदी युग के पूर्व की कविताओं में परिलक्षित होती है उसमें सांस्कृतिक पक्ष स्वस्थ नहीं है । उस युग की राष्ट्रीयता जातीयता, धार्मिकता तथा साम्प्रदायिकता से दबी हुई थी, इसलिए राष्ट्रीय कविताओं का सृजन स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ था । द्विवेदी युग में इन कमियों की पूर्ति हुई ।

द्विवेदी युगीन कविता की सबसे बड़ी खूबी सांस्कृतिक जागरण का स्वर है । सांस्कृतिक नेताओं तथा समाज सुधारकों ने जनता को जाति, देश तथा धर्म पर अभिमान करना सिखाया । उज्ज्वल अतीत के आलोक में वे अपना खोया हुआ बल, बुद्धि तथा ऐश्वर्य फिर से प्राप्त करने केलिए उत्सुक होने लगे । इस युग के कवियों ने जन-मानस में प्राचीन भारतीय संस्कृति की झांकियाँ प्रस्तुत करते हुए उसमें स्वतंत्रता की लगन पैदा कर दी । द्विवेदी युगीन कवि देश का कल्याण देश में पनपनेवाली भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन में देखते हैं । गुप्तजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका नमूना है ।

भारत माता का मन्दिर यह, समता का संवाद जहाँ,
सब का शिव-कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ ।
जाति, धर्म, या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ,
सब का स्वागत, सब का आदर, सबका सम सम्मान यहाँ ।[1]

समन्वयवाद भारतीय संस्कृति का एक अंग है । सांस्कृतिक सन्देश देने वाले द्विवेदीयुगीन कवियों ने मातृभाषा हिन्दी के प्रति भी अपना मोह प्रकट किया है । हिन्दी भाषा को पढना और पढाना, वे अपना धर्म समझते थे । रामचरित उपाध्याय की निम्नलिखित पंक्तियों में "हिन्दी", "हिन्दु" और "हिन्द" का जयगीत प्रवाहित होता है । उसमें सांस्कृतिक चेतना प्रतिध्वनित होती है -

जय जय हिन्दी, जय जय हिन्द ।
जय जय हिन्दू, जय गोविन्द ।।
निज भाषा की सेवा करिए, जन्मभूमि के दुःख को हरिए
भारत मन में तनिक न डरिए, कुछ कर सकते नहीं घृणिन्द ।[2]

सांस्कृतिक चेतना को जागरित करने केलिए कवियों ने निजी भाषा के अलावा संस्कृति के मूलस्रोत वेद तथा वेद विद्या के प्रति भी विशेष आग्रह प्रकट किया है । देश में शांति स्थापित करने केलिए वेद के उपदेश को परम उपाय समझते थे । विश्व कल्याण की शुभ कामना प्रकट करते हुए गुप्तजी लिखते हैं -

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
सौहार्द और मतैक्य हो, अविरुद्ध मन का भाव हो ।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा,
निजयज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा ।।[3]

---

1. मातृमन्दिर - मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्त - पृ.262-263
2. राष्ट्रीयवीणा-रामचरित उपाध्याय - पृ. 81 प्रथम भाग
3. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त - पृ.182

पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति

नवजागरण के परिणाम स्वरूप साहित्य में समाज के पिछड़े वर्गों को अधिक महत्व प्राप्त हुआ । उन्हें कवियों ने अपना वर्ण्य विषय बनाया । उनकी सहानुभूति के प्रमुख पात्र अछूत, किसान, मजदूर, विधवाएं, भिक्षु आदि थे । उनको मालूम था कि राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए सामाजिक जीवन की उन्नति ही प्रथम सोपान है । "भारत भारती" में गुप्तजी किसानों की दयनीय दशा की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं -

पानी बनाकर रक्त का कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते हैं यहाँ ।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय है,
बस चार पैसे से अधिक पड़ती न दैनिक आय है ।"[1]

कृषकों के समान समाज में बाल-विधवाओं की दशा भी बहुत घृणित थी । भारतीय नारी पुरुषों के क्रूर हाथ से ताड़ित होकर अपना महत्व खो चुकी थी । "बाल-विधवा-विलाप" में महावीर प्रसाद द्विवेदी उनकी आर्तध्वनि सुनाते हैं -

उच्छिष्ट, रूखा, अरु नीरस अन्न लेवौं,
कण्ठाग्निनीत मुख बाहर भूमि देवौं ।
शान्ति-प्रदान शिशिराम्बर नित्य पेवौं,
हा हन्त ! दुःखमय जीवन यों बिते हों ।"[2]

---

1. भारत-भारती - मैथिलीशरण गुप्त - पृ.103
2. द्विवेदी काव्य माला - पृ.113-114 प्रथम संस्करण

देश के सांस्कृतिक पुनरुत्थान, सामाजिक सुधार तथा धर्म प्रचार के लिए कवियों ने उपदेशात्मक प्रवृत्ति को ग्रहण किया । गुप्त जी ने "भारत-भारती" में समस्त जातियों को अपनी हीन दशा से उन्मुक्त होने का उपदेश दिया । अपने साथियों को भी अपने युग सापेक्ष कर्तव्य का ज्ञान कराया -

करते रहोगे पिष्ट पेषण और कब तक कविवरो,
कच, कुच कटाक्षों पर अहो अब तो न जीते जी मरो ।
अब तो विषय की ओर से मन की सुरति को फेर दो ।
जिस ओर गति हो समय की उस ओर मति को फेर दो ।[1]

मानवतावादी दृष्टिकोण

भारतेन्दु युग के कवियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों का वर्णन तो किया है फिर भी उनकी सुधारवादी दृष्टि सीमित थी । द्विवेदी काल में मानव को गौरव प्राप्त हुआ । युगों के बाद साहित्य में मानव को सच्ची प्रतिष्ठा पहली बार प्राप्त हुई । मानव मानव के बीच गढ़ी गयी दीवारें शनैः शनैः ढहने लगी ।

सुधारात्मक दृष्टि से पौराणिक कथानकों को युगीन सन्दर्भ दिया गया । पौराणिक पात्रों को सुधारवादी, लोक सेवक, तथा शीलवान का रूप देते हुए नव-जागरण का कार्य संपन्न किया गया । गुप्त जी का "साकेत" यशोधरा" और "विष्णुप्रिया" बदलती हुई सामाजिक चेतना और नए मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करती हैं । गुप्तजी ने "साकेत" और "पंचवटी" में राम को ईश्वर का अवतार मानते हुए भी मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया । साकेत के राम को जनवादी और क्रान्तिकारी समाज सुधारक के रूप में अंकित करते हुए कवि उनके मुख से नर के ऐश्वर्य का सन्देश सुनाते हैं । देखिए -

---

1. भारत - भारती - मैथिली शरण गुप्त - पृ. 171

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख-शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया[1]।

प्रिय प्रवास के कृष्ण अवतार होते हुए भी लोकाराधन में संलग्न श्रेष्ठ पुरुषों के रूप में चित्रित किए गए हैं[2]।

नर को ईश्वरता प्रदान करने वाले राम और कृष्ण युग-चेतना की मांग हुए। समकालीन कवियों ने भक्तों के समान नायिकाओं के देवी रूप पर मानवीय आवरण चढ़ाकर उन्हें श्रेय नारियों के रूप में अंकित किया है। प्रिय प्रवास की राधिका को कवि ने एक समाज सेविका के रूप में वर्णित किया है। वह कृष्ण के वियोग में व्यथित होने पर भी संपूर्ण गोप समाज को उनके लोकोत्थान सम्बन्धी आदर्श के लिए प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देती है -

जी से जो आप सब करते प्यार प्राणेश को हैं।
तो पा भू में पुरुष तन को, खिन्न होके न बैठें।
उद्योग ही परम रुचि से कीजिए कार्य ऐसे।
जो प्यारे हैं परम प्रिय के सब विश्व के प्रेमियों के[3]।

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 166-167
2. प्रियप्रवास - हरिऔध - पृ. 82 सर्ग - 5
3. वही - पृ. 67

राधिका का व्यक्तिगत प्रेम विश्वप्रेम में परिणत हो जाता है -

वे छाया थीं सुजन-शिर की शासिका थीं खलों की ।
कंगालों की परम निधि थीं औषधी पीड़ितों की ।
दीनों की थीं बहिन, जननी थीं अनाथाश्रितों की ।
आराध्या थीं ब्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं ।

साकेत की सीता और प्रियप्रवास की राधा के द्वारा जन-सेवा और श्रम के आदर्श का महत्त्व गुप्त और हरिऔध प्रतिपादन करते हैं । साकेत की सीता गाँधीवादी जीवन दर्शन से परिचालित है । चर्खा आन्दोलन तथा स्वावलम्बन उनके प्रमुख आदर्श हैं -

तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में
आओ, हम कातें बुनें गान की लय में[2] ।

जागरण, सेवा-कार्य, सद्भाव आदि से युक्त मानवतावादी दृष्टिकोण उपरोक्त कविताओं के द्वारा विकसित कराने का प्रयत्न किया गया है ।

वीर पूजा

देश के उद्धारकों और नेताओं के प्रति आदर राष्ट्रीय चेतना का एक विशेष पहलू है । वीर पूजा की प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में अधिक प्रकट होती है । वर्तमान पीढ़ी को प्रेरणा देने में यह प्रवृत्ति अधिक सहायक थी

---

1. प्रियप्रवास - हरिऔध - पृ.49
2. साकेत - मैथिलीशरणगुप्त - पृ.161

साहित्य में राजनीतिक चेतना के विकास के साथ साथ वीर पूजा की प्रवृत्ति भी बढ़ती गयी । राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, प्रताप आदि अनेक पौराणिक तथा ऐतिहासिक वीर पुरुषों का यशोगान किया है -

ये भीम तुल्य महाबली, अर्जुन समान महारथी,
श्रीकृष्ण लीलामय हुए थे आज जिन के सारथी
ये सूर्यवंशी चन्द्रवंशी वीर थे कैसे बली,
जो थे अकेले ही मचाते शत्रुदल में खलबली ।[1]

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के वैतानिक महात्मा गांधी से प्रेरणा लेते हुए उन्होंने लिखा -

संसार की समर स्थली हैं वीरता धारण करो
जीवन समस्याएं जटिल हों, किन्तु उनसे मत डरो ।
पर वीर बनकर आज अपनी विघ्न बाधाएं हरो ।[2]

"हल्दी घाटी" महाकाव्य में श्याम सुन्दर पाण्डेय ने स्वतंत्रता के अमर पुजारी महाराणा प्रताप के बलिदान होने की वर्णना की है । प्रताप की एक आवाज ने जनता को बलिदान करने की प्रेरणा दी -

उनके इस इशारे पर वीरों ने ले तलवारें
पर्वत पथ रंग दिए रक्त से करवारों पर वारें ।
निकल रही जिसकी समाधि से स्वतंत्रता की आगी
यही जहाँ पर छिड़ा हुआ है वह स्वतंत्र वैरागी ।[3]

---

1. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त - पृ. 49
2. कर्मवीर बनो - मैथिलीशरण गुप्त
3. हल्दी घाटी - श्यामसुन्दर पाण्डेय - पृ. 5

इस प्रकार द्विवेदी युग के कवियों ने वीर पूजा के नाते राष्ट्र के वीर सेनानियों तथा महान नेताओं के जीवन के विभिन्न चित्र उपस्थित करते हुए उनके प्रति श्रद्धांजली अर्पित की । तिलक की मृत्यु पर बहुत से कवियों ने शोक प्रकट करते हुए उनके उज्ज्वल कीर्ति व देश सेवा के व्रत का वर्णन किया । इस अवसर पर सिद्धी सनेही की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

कैसा वज्रपात हाय भारत मही में हुआ
परम प्रशस्त कीर्तिपुंज ध्वस्त हो गया ।
फट गया भाग्य आज स्वदेश का स्वतंत्रता का
जीवन का एकमात्र वही तो सहारा था
टूट गया भारत गगन का सितारा,
बूढ़ा माता का लकुट और मुकुट हमारा[1] ।

वीरपूजा के द्वारा कवियों ने देशवासियों में उग्र राष्ट्रीयता का बीज बोया । इसके द्वारा राष्ट्रीयता की व्यापकता एवं संगठन शक्ति की वृद्धि हुई ।

निष्कर्ष

वस्तुत: द्विवेदी युगीन कविता पूर्णत: समष्टि पर आधारित है । इस युग में भाव के समान भाषा तथा शैली में भी परिवर्तन तथा नवीन प्रयोग हुए । द्विवेदी मंडल के कवियों ने खड़ी बोली को अभिव्यंजना शक्ति प्रदान की । नई आस्था, नए विश्वास तथा लोक मंगल की भावना ने काव्य में नए मूल्यों की स्थापना की । कविता में समतावादी दृष्टि की झलक पहले पहल इस युग की कविता में मिलती है । उन्होंने जनता को समझा दिया कि स्वराज्य की प्राप्ति केवल याचना और

---

1. वज्रपात - तिलकनिधन पर ' पृ० 1920

प्रार्थना द्वारा नहीं हो सकती । इसके लिए त्याग, बल तथा प्राण की बलि देना है । इस युग की कविता में आत्मविश्वास, कर्मबल और जागरण की अनुगूंज सुनाई पड़ती है । इन महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद उसकी अपनी सीमाएं भी हैं । उसकी देश भक्ति में शासन पद्धति के प्रति असंतोष तो व्यक्त हुआ है पर कर्म, आत्मत्याग, जोश और उत्साह का अभाव था ।

द्विवेदीयुगोत्तर राष्ट्रीय चेतना की राजनीतिक भूमिका

1920 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग करने का निश्चय किया । इस आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रमों में देशवासियों ने पूरा सहयोग दिया । अनेकों वकीलों ने वकालत छोड़ दी तथा नवयुवकों ने स्कूल कालेजों को छोड़कर नए विद्यापीठ आदि में जाकर अध्ययन करना प्रारंभ किया । मद्यनिषेध, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तथा खादी प्रचार में राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी । उन्होंने नए आत्मविश्वास और सम्मान की भावना से सरकार के अत्याचारों का सामना किया और स्वराज्य प्राप्ति केलिए दृढ़ प्रतिज्ञ हुए । 1922 में गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया । किन्तु स्वराज्य प्राप्ति का रचनात्मक कार्यक्रम-असहयोग, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि नियमित रूप में चलता गया । सन् 1923 में नागपुर पुलिस ने जुलूस को झंडे सहित सिविल लाइन्स में जाने से रोक दिया । इस घटना ने उग्र रूप धारण कर लिया और नागपुर झंडा सत्याग्रह प्रारंभ हुआ । आगे चलकर एक अखिल भारतीय आन्दोलन का रूप धारण किया । इसमें सत्याग्रहियों की विजय हुई ।

1924 में गांधीजी जेल से बाहर आए । इस समय [1923-24] देश के राजनैतिक वातावरण में मतभेद होते रहे और पंजाब तथा मद्रास में कई उपद्रव भी हुए । सन् 1924 में गांधीजी कांग्रेस के अध्यक्ष हुए । स्वराज्य पार्टी ने गांधीजी के नेतृत्व में कई सुधारवादी चर्चाएं कीं । मताधिकार केलिए शारीरिक श्रम,

सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, तानाशाही का अन्त, धार्मिक स्वतंत्रता, प्रान्तों की भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, देशी भाषाओं द्वारा सरकारी कामकाज तथा हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा मानना आदि विषयों पर बल दिया। इस केलिए कांग्रेस ने सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की में कार्यरत रहे।

सन् 1925 और 1926 में दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद में हिन्दू-मुस्लीम दंगे बहुत हुए। कलकत्ते में बड़ा भयानक साम्प्रदायिक दंगा हो गया। इसकेलिए कांग्रेस महासमिति ने हिन्दू-मुस्लीम एकता पर ज़ोर दिया। एक एकता सम्मेलन संगठित किया गया और एकता का प्रचार करने केलिए हर प्रान्त में एक कमेटी नियुक्त की गयी। 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में भारतीय जनता के पूर्ण स्वराज्यस्वतंत्रता की घोषणा की। सन् 1928 में दिल्ली में सर्वदल सम्मेलन संगठित की गयी। उसमें श्री० मोतीलाल नेहरू ने भारतीय शासन सम्बन्धी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि यदि ब्रिटिश सरकार इसे नहीं स्वीकार करेगी तो अहिंसात्मक असहयोग का संगठन शुरू किया जाएगा। 1928 में भारतीय शासन सुधारों पर रिपोर्ट देने केलिए सरकार की ओर से "सायमन कमीशन" की नियुक्ति हुई। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत केलिए औपनिवेशिक स्वराज्य व केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित किए जाने का कोई प्रस्ताव नहीं था। इस पर देश में बड़ी विद्रोहात प्रतिक्रियाएं हुई। 1929 में लार्ड इर्विन ने औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत करने की आशा दिखाई। किन्तु कांग्रेस विधान में स्वराज्य का अर्थ, पूर्ण स्वराज्य माना गया।

सन् 1930 में स्वराज्य की प्राप्ति केलिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। 1930 की गांधीजी की दण्डी यात्रा विशेष स्मरणीय है। 5, अप्रैल 1930 को गांधीजी अपने सब साथियों के साथ दंडी पहुँचे और समुद्रतट से नमक बनाकर नमक कानून तोड़ निकाले। इस प्रकार देश में कई जगह सविनय अवज्ञा आन्दोलन ज़ोर-शोर से प्रारंभ हो गया।

सन् 1932 में मि॰मैक डोनेल्ड ने हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक प्रतिनिधित्व देकर साम्प्रदायिक भावना को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इसके विरोध में गांधीजी ने पूना में उपवास आरंभ कर दिया। अन्त में समझौते के अनुसार उपवास छोड़ दिया और उच्च जातियों के हिन्दुओं ने हरिजनों को महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किये।

सन् 1939 को द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। कांग्रेस की इच्छा के विरुद्ध उन्हें युद्ध में सम्मिलित कर लिया गया। इसलिए कांग्रेस कार्य समिति ने युद्ध में भाग न लेने का आग्रह किया। वे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तैयारियाँ करने लगी। चर्खे, खादी तथा साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम संगठन आदि पर ज़ोर देने लगी। 1940 में कांग्रेस कार्य समिति ने एक प्रस्ताव रखा कि भारत की स्वाधीनता की घोषणा की जाय तो वे युद्ध में सहायता देंगी।

सन् 1942 को बम्बई में एक ऐतिहासिक प्रस्ताव पास हुआ। गांधी जी ने घोषित किया कि अंग्रेज़ भारत छोड़ दें। 1942 की मार्च की बैठक में उसने सामूहिक आन्दोलन की योजना बनाई। "करो" या "मरो" का मंत्र देकर गांधीजी ने स्वतंत्रता के संघर्ष में सर्वस्व बलिदान करने का आह्वान किया। सरकार ने इन शान्तिपूर्ण जुलूसों को तोड़ने के लिए लाठी चार्ज किया, गैस छोड़ी जिससे जनता का दबा हुआ क्रोध उग्ररूप धारण करने लगा। कई जगहों में हिंसात्मक कार्य हुए। किन्तु फिर भी अंग्रेज़ों ने इस पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया। 1942 के आन्दोलन में कांग्रेस को जिम्मेदार बनाया गया।

1945 को लार्ड वेवेल लंदन से वापस आए। तुरन्त ही केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं के लिए चुनाव हुए उनमें कांग्रेस और लीग का बहुमत रहा। सन् 1946 में विधान-निर्माण-कारिणी सभा के लिये चुनाव हुआ। चुनाव में अधिकांश

वोट कांग्रेस को मिले । किन्तु लीग योजना केलिए तैयार नहीं था । उन्होंने पाकिस्तान का विधान बनाने केलिए अलग सभा की मांग की । फिर अगस्त 1946 को लार्ड वेवेल ने कांग्रेस के सभापति नेहरू से सरकार को संगठित करने का अनुरोध किया । नेहरू ने सात नामों की एक सूची भेजी और तत्कालीन सरकार बन गई ।

16 अगस्त 1946 को मुस्लीम लीग द्वारा "डायरक्ट एक्शन" का दिन नियत हुआ था । उस दिन भयानक हिन्दू-मुस्लीम दंगे हुए । समस्त देश में अशान्ति छा गयी । अब जिन्ना ने तत्कालीन सरकार में सहयोग देने का निश्चय किया । मुस्लीम लीग की पांच सदस्य सरकार में सम्मिलित हो गए ।

3, जून 1947 को भारत में बंटवारा केलिए तत्कालीन गवर्नर माउंट बेटन ने एक योजना की घोषणा की । इसके अनुसार इन्डियन इन्डिपेन्डेन्स एक्ट जुलाई में बना और अगस्त 15 को भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र हो गए ।

तत्कालीन साहित्य में इन सब राजनीतिक गतिविधियों का अंकन बहुत कम ही मिलता है । इन घटनाओं का चित्रण स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में अधिक हुआ है ।

साहित्यिक प्रतिक्रिया

तृतीय उत्थान के प्रथम चरण में अर्थात् छायावाद युग में कवियों का प्रधान लक्ष्य वस्तु-विधान की अपेक्षा काव्य शैली की ओर था । काव्य की अर्थभूमि का संकोच हो गया । युगीन सच्चाईयों का वस्तुगत उद्घाटन कविता में बहुत कम हुआ । छायावादी काव्येतर साहित्यिक विधाओं तथा अन्य कुछ रचनाकारों की अभिव्यक्तियों में राजनीतिक हलचलों की झांकी देखी जा सकती है ।

छायावादी कवियों में प्रसाद, पन्त और निराला ने राष्ट्रीय सांस्कृ दृष्टि से काव्य रचना की ओर ध्यान दिया । प्रसाद ने "स्कन्दगुप्त" (1928) और "चन्द्रगुप्त" (1931) के कुछ गीतों और "लहर" (1933) की शेरसिंह का शस्त्र समर्पण शीर्षक कविता में राष्ट्रीय भावनाओं का ओजस्वी प्रतिपादन किया है । इस युग के राष्ट्रीय चेतना के दो प्रमुख पक्ष होते हैं । एक तो कांग्रेस की नीति को मानकर चलनेवाले अहिंसावादी अर्थात् गांधीवादी राष्ट्रीयता और दूसरे मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित प्रगतिवादी राष्ट्रीयता। अहिंसात्मक नीति को माननेवाले कवियों में प्रमुख है - राष्ट्रकवि मैथिली शरणगुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और सोहन लाल द्विवेदी । प्रगतिवादी राष्ट्रीय कवियों में दिनकर, नवीन, भगवतीचरणवर्मा, नरेन्द्र शर्मा आदि मुख्य है । विवेच्य युग की राष्ट्रीय चेतना के कतिपय मुख्य पक्षों पर नीचे विचार किया जाता है ।

आस्था बोध का विकास

कवियों ने अतीत की अपेक्षा वर्तमान के प्रति अधिक आस्था प्रकट की है । देश में व्याप्त विषमताओं और विशृंखलताओं का मूल कारण विदेशी सत्ता का आधिपत्य ही है, यह धारणा देशवासियों में परिपक्व हो चुकी थी । अब विदेशी शासन से मुक्ति पाने की उत्कट आकांक्षा उनमें उत्पन्न हो गयी । फलत: उनमें राजनैतिक चेतना का उत्तरोत्तर विकास हो रहा था । देशवासियों को सत्य के प्रति जागरूक बनाने के लिए कवियों ने विदेशी शासन के अन्याय, अत्याचारों और दमन का नंगा चित्र उपस्थित किया । सरकार के नृशंसतापूर्ण अत्याचारों एवं अंग्रेज जाति के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी "कैदी और कोकिला" शीर्षक कविता में लिखते हैं -

काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली ।[1]

सत्याग्रहियों के बंदी जीवन के दु:खद दशा के वर्णन के साथ नवीनजी और विदेशी शासन को भी दूर करने की आशा व्यक्त करते हैं -

तेरी चक्की के ये गेहूं पिसते हैं पिस जाने दो
चक्की पिसवानेवालों को मिट्टी में मिल जाने दो ।[2]

"हुंकार" में दिनकर अपनी पराधीनता के कुरूप धब्बे को मिटाने केलिए उत्तेजित हो उठते हैं -

नहीं जीते जी सकता देख
विश्व में झुका तुम्हारा भाल,
वेदना-मधु का भी कर पान
आज उगलूंगा गरल कराल ।[3]

इस प्रकार राजनैतिक दासता का बोध वर्तमान युग के कवियों की रचनाओं में मिलता है । इसके द्वारा राष्ट्र की स्वाधीनता केलिए संघर्ष करने की प्रेरणा प्राप्त होती है ।

---

1. हिमकिरीटिनी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ. 18
2. कुंकुम - बालकृष्ण शर्मा नवीन - पृ. 2
3. हुंकार - दिनकर - पृ. 10

क्रान्ति का स्वर

द्विवेदी युगोत्तर राष्ट्रीय काव्य को नवगति की ओर उन्मुख करने में प्रथम महायुद्ध से प्रसूत परिस्थितियाँ विशेष सहायक सिद्ध हुई हैं। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप जनता में तर्कमयी बुद्धि का विकास हुआ और उनमें नवीन प्रवृत्तियों और युगानुकूल भावनाओं का विकास हुआ। परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध में हुए विज्ञान के विनाशकारी दुष्परिणामों से मानव-जीवन निराशा-सा हो चुका था। फलस्वरूप, एक ओर जनता में असन्तोष तथा निराशा छा गयी तो दूसरी ओर विद्रोह तथा परिवर्तन की भावना भी जागृत होने लगी। इन दोनों विचार धाराओं का प्रभाव युगीन साहित्य में भी पड़ा। कुछ वेदनामयी भावना ने छायावाद को पुष्ट किया। राजनीतिक तथा आर्थिक पराभव से उद्भूत विद्रोही चेतना ने काव्य में क्रान्ति तथा विनाश का रूप ग्रहण किया। प्रारंभ में यह विद्रोही चेतना वैयक्तिक रूप में अभिव्यक्त हुई थी। परन्तु कहीं - कहीं यह विद्रोही चेतना आत्मा की संकुचित दायरे से बाहर निकल कर संपूर्ण ब्रह्माण्ड में उथल-पुथल की भावना मचाने लगी। इस समष्टिगत क्रान्ति की सही अभिव्यक्ति वर्तमान काव्य में मिलती है। बालकृष्ण शर्मा नवीन की "विप्लव-गान" नामक कविता में प्रलयंकारी भावना व्यक्त होती है -

> कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए,
> एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
> प्राणों के लाले पड़ जाएं, त्राहि त्राहि रव नभ में छाए
> बरसे आग, जलद जल जाएं, भस्मसात भूधर हो जाएं[1]।

---

1. कुंकुम - बालकृष्ण शर्मा नवीन - पृ. 11

कविवर दिनकर ने भी सामाजिक तथा राजनीतिक मुक्ति केलिए भारतीय युवकों को हिंसात्मक संघर्ष करने की प्रेरणा दी । उनके 'हुंकार' ने नया स्वर फूंका -

कह दे शंकर से आज करें, वे प्रलय नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूंज उठे हर हर बम का महोच्चार ।
ले अंगड़ाई उठ हिले धरा कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैल राट ! हुंकार भरे फट जाय कुहा, भागे प्रमाद[1] ।

विवेच्य युग के कतिपय कवियों ने हिंसात्मक क्रान्ति की अपेक्षा गांधीजी द्वारा गठित सत्याग्रह व अहिंसात्मक क्रान्ति को आज़ादी की प्राप्ति के लिए अधिक उपादेय समझा था । माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने आपको आज़ादी का सैनिक माना है तथा सत्याग्रह व अहिंसक क्रान्ति केलिए आशा प्रकट की है -

हूँ राष्ट्रीय सभा का सैनिक, छोटा सा अनुगामी हूँ
उसकी ध्वनि पर मर मिटने में खुद अपना स्वामी हूँ ।
बाकी एक उपाय बचा था जिस की कि गांधी ने याद
तीव्र अहिंसक असहयोग से मातृभूमि हो वे आज़ाद[2] ।

बलिदान की भावना

बलिदान की उमंग समकालीन राष्ट्रीय कविताओं की प्रमुख विशेषता है । अंग्रेज़ी शासन के कठोर दण्ड से देशवासियों में क्रान्ति की भावना तीव्रतर होने लगी । राजनैतिक मुक्ति की तीव्र वांछा से देश प्रेमियों ने अपने प्राणों की बलि चढ़ाने लगी । 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक कविता में माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वदेश केलिए आत्म त्याग एवं आत्म बलिदान की भावना को अभिव्यक्त किया है -

---

1. हुंकार - दिनकर - पृ.74
2. हिमकिरीटिनी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.25

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक[1]।

अपनी जननी मातृभूमि के दर्शनार्थ सुभद्राकुमारी चौहान प्राणों का उपहार लेकर मातृमंदिर में उपस्थित हो जाती है। आत्म बलिदान की मार्मिक अनुभूति उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाती है -

न होने दूँगी अत्याचार
चलो, मैं हो जाऊँ बलिदान।
मातृ मंदिर में हुई पुकार
चढ़ा दो मुझको भगवान[2]।

<u>वीर नायकों की परिकल्पना</u>

वर्तमान राष्ट्रीय काव्य में वीरपूजा की प्रवृत्ति अधिक गोचर होती है राष्ट्रानुराग की तीव्रता के साथ ही साथ कवियों ने वीर पुरुषों तथा राष्ट्र नेताओं की पूजा में अधिक जागरूक हो गए। वीर पूजा में कवियों ने उनके त्याग, बलिदान एवं उनके मार्ग दर्शन को काव्य विषय के रूप में ग्रहणकिया। स्वतंत्रता आन्दोलन युग में युगावतार के रूप में गांधीजी अवतरित हुए। उनके त्यागपूर्ण जीवन पर अनेक प्रेरणाप्रद कविताएँ लिखी गयीं। गांधीवादी कवि सियारामशरण गुप्त ने महात्मा के त्यागमय जीवन में मानव के कल्याण की कामना प्रकट की है -

---

1. त्रिधारा - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.13
2. मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान- पृ.101-103

हाथ में तुम्हारे प्रेम मंजु फूल, शोणित अस्तफूल
देखकर नूतन उदय में, आशा बंधी चिरहृदय में
मोह युत मोह का अंकुर मन पुंजीभूत दूर हो
पवित्रता हो स्फुरित, जीवन रुचिर हो
मानव का युग में चिरजन्म फिर हो[1]।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'झाँसी की रानी' शीर्षक कविता में भारतीय विप्लव की उल्का झाँसी की रानी की जीवन गाथा का सजीव एवं प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है -

जाओ रानी याद रखेंगे हम कृतज्ञ भारत वासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी[2]।

यों कवियों ने अतीत रणवीरों तथा भक्तवीरों का आदर्श प्रस्तुत करते हुए वर्तमान अवनति के प्रति विद्रोह की भावना जागृत करने का प्रयास किया है।

<u>अन्तर्राष्ट्रीय स्वर</u>

1930-31 के राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलताओं से देशवासियों की आशा-आकांक्षाओं पर तुषारपात हो गया। साम्राज्यवादी शासन की शोषण नीति भारतीय जनता पर अब भी चली आ रही थी। इस जगत् व्यापी वेदना ने कवियों क

---

1. बापू - सियाराम शरण गुप्त - पृ.12
2. मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान - पृ.79

विश्व के उत्थान के लिए प्रेरित किया । उन्होंने समता पर अधिष्ठित मानव साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखा । वर्ग भावना से ऊपर उठकर एक व्यापक क्रान्ति की कल्पना की गयी । "देवताओं" नामक कविता में नरेन्द्र शर्मा ने साम्राज्य वाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी भावों की अभिव्यक्ति की है -

जन-बच्चे बन गये, वंशे वीरों के, वीर सिपाही !
देश देश में जनता जागी, सहमी नौकरशाही ।
पूँजीशाही के प्रति मन में बढ़ती थी आग-सी,
हुई शुरू जन-जी भेद जनता की लापरवाही ।
लगे तड़कने माज़ी मकड़ी के लोहे के जाले ।"[1]

वर्तमान आर्थिक विषमता पर निराला का मन तप्त हो उठता है कवि निर्धनता के साकार मूर्ति "भिखारी" का चित्रण करते हैं -

वह आता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को,
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाती -
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।[2]

निराला की "कुकुरमुत्ता", "नए पत्ते" आदि कविताओं में इसी प्रकार के भाव व्यंजित हुए हैं । आशान्त तथा आलोड़ित वातावरण में नूतन समाज की सृष्टि के लिए कवि जाति, वर्ण तथा कुल के भेद को मिटाना चाहते हैं । पन्त इन सबको विनष्ट होते देखना चाहते हैं -

1. हंसमाला - नरेन्द्र शर्मा - पृ.40
2. अनामिका - निराला - पृ.133

मरें जाति कुल वर्ग पर्ण घन,
अंध नीड़-से रूढ़ रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्र-गत-राग-द्वेष-रण,
मरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण ।
गा, कोकिल गा, - कर मत चिंतन ।[1]

चिरकाल से विवशता एवं पराधीनता का जीवन बिताने वाली नारी को कवि पुरुषों के समान समाज में उसी आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं । पन्त ने नारी को विविध रूपों में चित्रित करते हुए उसकी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हैं -

पुरुष वासना की सीमा से
पीड़ित नारी-जीवन
नर नारी का तुच्छ भेद है
केवल युग्म विभाजन ।
उसे मानवी का गौरव दे
पूर्ण सत्व दो नूतन,
उसका मुख जग का प्रकाश हो
उठे अन्ध अवगुंठन ।[2]

इस प्रकार समकालीन कवि सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता की स्थापना करना चाहते हैं । कवियों ने पूंजीवाद, साम्राज्यवाद तथा सामाजिक रूढ़ियों को विनष्ट करने का गीत गाया है । उनकी रचनाओं में जाति, वर्ग तथा वर्ण के भेद-भाव का अतिक्रमण तथा निम्न वर्ग के दलित वर्ग के उत्थान का भाव अभिव्यक्त हुआ है ।

---

1. युगान्त - पन्त - पृ॰228
2. युगवाणी - पन्त - पृ॰62 तृतीय संस्करण

इस अन्ताराष्ट्रीयता के मूल में व्यापक मानव-प्रेम की भावना निहित है । यह मानवतावादी दृष्टिकोण द्विवेदीयुगीन कविता में अभिव्यक्त किए जाने लगे थे । परन्तु द्विवेदी युगोत्तर काव्य में उस मानव-प्रेम को विश्व-व्यापी मानव-प्रेम के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

निष्कर्ष

सोहनलाल द्विवेदी की पूर्ववर्ती कविता में राष्ट्रीय चेतना को उजागर करने में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आन्दोलनों का योगदान निश्चय तुल्य है राजनीतिक क्षेत्र में इन्डियन नेशनल कांग्रेस तथा महात्मा गांधी और सामाजिक क्षेत्र में आर्य समाज, ब्रह्मसमाज थियोसाफिकल सोसायटी आदि के युगान्तकारी कार्यक्रमों द्वारा हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना का उत्तरोत्तर विकास होने लगा । यह जातीयता तथा भूमिगत राष्ट्रीयता की संकुचित दायरे से ऊपर उठकर विश्व मानवतावाद की व्यापक भूमिका को ग्रहण किया ।

****

अध्याय - दो

सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय चेतना

अध्याय - दो

सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीयता की परिभाषा

राष्ट्रीयता एक ऐसा भाव विशेष है जिसकी निश्चित् व्याख्या प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है । राष्ट्रीयता आन्तरिक चेतना है । यह निराकार होते हुए भी केवल अनुभूत्य है[1] । एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार राष्ट्रीयता समभावना और संगठित तत्त्व पर आधारित है[2] ।

---

1. An instinct and cannot be exactly defined..... It is a Union of hearts, once made, never unmade..... It is a spiritual conception unconquerable, in destructible.
J. Holland Rose - Nationality in History p.147

2. A some what vague term, used strictly in International Law for the status of membership in a nation or state and in a more extended sense in political discussion to denote an aggregation of persons claiming to represent a racial, territorial or some other bond of unity, though not necessary, recognised as an independant political entity. In this latter sense, the word has often been applied to such people as the Irish, the Americans and the Czechs. A 'Nationality' in this connection represents a common feeling and an organised claim rather than distinct attributes which can be comprised in a strict defenition.
Encyclopeadia Britinica.

मानव मूलतः ममत्व-प्रेमी है । उसे अपनी निजी वस्तुओं के प्रति विशेष लगाव होता है । वह अपनी वस्तुओं की सुरक्षा केलिए अपने को भी न्योछावर करने को तैयार रहता है । प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान यह मूलभूत अनुभूति परस्पर की अनेक समानताओं के सान्दर्भ में विकास पाकर व्यापक राष्ट्रानुराग में परिणत हो जाता है । परस्पर की अनेक समानताओं के कारण उनमें एकसूत्रता की चेतना उत्पन्न होती है और उन्हीं में राष्ट्रीयता का विकास होता है । अर्थात् राष्ट्रीयता या देशभक्ति में मनुष्य के राग-वृत्त का विस्तार होता है । वास्तव में वह "स्व" का विस्तार ही है । मानव का वैयक्तिक राग-वृत्त व्यक्ति से परिवार, परिवार से ग्राम-नगर फिर प्रदेश देश और इसके आगे विश्व तक व्याप्त हो जाता है ।

वस्तुतः राष्ट्रीयता एक मनोवैज्ञानिक भावना है । वह राष्ट्र जन के अन्तस् में उद्भूत एक पुनरुत्थानवादी भावना है । उसके फलस्वरूप वैयक्तिक स्वार्थ तथा सुख को राष्ट्र हित केलिए न्योछावर कर देना प्रत्येक राष्ट्रवासी का अपना कर्तव्य हो जाता है ।

साहित्य की सप्राणता और उसकी सार्वभौमिकता राष्ट्रीय और जातीय चेतना के विशिष्ट स्वरूप को सुचारु रूप में साकार करने में है । अन्यथा साहित्य की जीवनी-शक्तिहीन और निष्प्राण रहेगी ।

राष्ट्रीय कविता तथा राष्ट्रीय कवि के सम्बन्ध में राममूर्ति त्रिपाठी का कथन यहाँ उल्लेखनीय है। साहित्य में राष्ट्रीय भावना की प्रशस्त अभिव्यंजना वही कर सकता है जिसने अपने व्यक्तित्व का इतना विकास कर लिया हो कि वह राष्ट्र के संघटक तत्वों की सत्ता से स्वयं को अभिन्न समझे, उसकी स्थिति में स्वयं की स्थिति माने और अनवरत अपनी प्रकृति के अनुरूप उसके विकास में तत्पर रहे । इस प्रकार राष्ट्र के उत्थान पतन के साथ स्वयं का उत्थान-पतन अनुभव करनेवाला सर्जक ही साहित्य में राष्ट्रीय भावना को मुखर कर सकता है । यानी राष्ट्र की प्रकृति और उसके नागरिकों के निसर्गसिद्ध गुण-धर्म को भी व्यक्त करनेवाली कविता अथवा कृतिविशेष सफलता भी राष्ट्रीय कविता का सम्भूविद मानदण्ड है[1] ।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य कला और दर्शन - राममूर्ति त्रिपाठी - पृ.266

भारत में राष्ट्रीय चेतना का समुचित विकास भारतीयों की दासता में हुआ । इसके पूर्व की राष्ट्रीयता या तो प्रादेशिकता या धार्मिकता से प्रेरित थी । "आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रारम्भिक स्वरूप भारतेन्दु तथा द्विवेदी काल में दिखाई देता है । इसके पश्चात भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर गांधीजी के सक्रिय नेतृत्व में जाति-धर्मातीत राष्ट्रीयता का विकास हुआ । समकालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों ने राष्ट्रीयता को विकसित करने में सहायता दी । इसलिए हमारी राष्ट्रीय भावना को स्वतंत्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में आंकना अधिक समीचीन होगा । समकालीन राष्ट्रीय कवियों ने भी स्वतंत्रता आन्दोलन के सभी भावों पर कविताएं लिखीं ।

सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा भूमि

सोहनलाल द्विवेदी भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय के प्रमुख कवि है । स्वतंत्रता आन्दोलन के गाढे समय पर अर्थात् सन् 1906 में उनका जन्म हुआ था । इसलिए सामयिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में सहज रूप से उनका व्यक्तित्व एकमेक हो जाता है ।

सच है कि वैष्णव संस्कारों में जन्मे, संपन्नता में पले और क्रान्तियुग में खिले बाल, युवा और वृद्ध सोहनलाल द्विवेदी को राष्ट्रीय भावभूमि बपौती के रूप में नहीं मिली थी । परिवार और मुहल्ले का वातावरण भी राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करने में सक्षम नहीं था । उनको अभिनव राष्ट्रीय विचार धारा प्रदान करने का श्रेय उन दुबले-पतले लंगोटीवाले बुड्ढे गांधीजी को था जिनके वक्तव्य, भाषण और करीम में द्विवेदी सुना और पढ़ा करता था ।

विद्यार्थी जीवन से ही उनमें भारतीय स्वतंत्रता की बलवती आकांक्षा थी । फतेहपुर ऐंग्लो-संस्कृत विद्यालय में पढ़ते समय की एक घटना यहाँ उल्लेखनीय है

एक बार प्रिंस आफ वेल्स भारत में पदार्पण कर रहे थे । उनके आगमन की खुशी में लड़कों को मिठाईयाँ बाँटी गयीं । इस समय बालक द्विवेदी ने मास्टर साहब से कहा "मास्टर साहब, गुलामी के लड्डू खाने से आज़ादी के चने चबाना बेहतर है" । बालक द्विवेदी का यह देश प्रेम समय पाकर चिनगारी में अंगार बन गया ।

द्विवेदी जी में राष्ट्रीय भावभूमि उत्पन्न देने का श्रेय श्रद्धेय मालवीय जी को है । महात्मा मालवीय जी ने उनमें राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का बीज बोया तो यतीन्द्रनाथ दास और चन्द्रशेखर आज़ाद के बलिदानों ने उस बीज को सींचा । गांधीविचारधारा के प्रचण्ड सूर्य ने उस अंकुर को श्यामलता, मसृणता एवं प्रगतिशीलता दी । किन्तु युवक कवि सोहन लाल के हृदय में जो भावनाएं उठीं उन्हें मर्यादित परिष्कृत एवं सुसंस्कृत करने का संपूर्ण श्रेय गवर्नमेंट स्कूल फतेहपुर के हिन्दी प्राध्यापक पं॰रामदेव प्रसाद शुक्ल को है । उपर्युक्त तीन महापुरुषों के प्रभावस्वरूप उनकी राष्ट्रीय भावभूमि अधिक प्रज्वलित हो उठी ।

द्विवेदी की प्रथम कविता फतेहपुर के जनप्रिय नेता श्री॰वंशगोपाल जी के जेल से छूटने पर लिखी गयी थी । उस समय द्विवेदी जी केवल क्षेत्रीय कवि थे । सन् 1927 के हिन्दू विश्व-विद्यालय के छात्र जीवन में उन्हें अपने में पल्लवित राष्ट्रीय भावना को पोषित करने का उचित वातावरण मिला । यहाँ आकर त्यागभूमि में उनकी सर्वप्रथम कविता "राणाप्रताप" छप गयी । उनकी यह प्रथम रचना पाठकों में वीरपूजा के भाव जगाने में सफल हुई । उनकी कुछ वीरोत्तेजक पंक्तियाँ देखिए -

---

1॰ काव्य के इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी - अमरबहादुर सिंह अमरेश - पृ॰4

जागो प्रताप, मेवाड़ देश के -
लक्ष्य भेद हैं जगा रहे ।
जागो प्रताप । मतवालों के
मतवाले सेना सजा रहे ।
जागो प्रताप । हल्दी घाटी में -
वैरी भेरी बजा रहे ।

मेरे प्रताप ! तुम बिखर पड़ो
मेरे उत्पीड़न भारों से ।
मेरे प्रताप । तुम निखर उठो -
मेरे बलि के उपहारों से ।

इक्कीस वर्ष की आयु में लिखी प्रस्तुत कविता के द्वारा द्विवेदी को राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । इस रचना का देश व्यापी प्रचार हुआ । आगे बढ़कर उनके हृदय में राष्ट्रीय कविताओं की आग धधक उठी । इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से ही द्विवेदी जी हिन्दी जगत में यशस्वी कवि के रूप में सम्मान प्राप्त करने लगे थे ।

काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में दीक्षा प्राप्त कर द्विवेदी जी कई वर्षों तक लखनऊ के दैनिक पत्र "अधिकार" के सम्पादक रहे और इस पत्र के द्वारा देश प्रेम तथा बलिदान की भावना जागृत करते रहे । यह वह युग था कि खड़ी-बोली हिन्दी कविता आचार्य द्विवेदी की तपस्या से विकसित होनेवाली थी । राष्ट्रीय कवियों के रूप में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, माधवशुक्ल, हरिऔध, नवीन, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी आदि लोकप्रिय कवियों का प्राणोदय हो चुका था । इस काल-खण्ड में युग-धर्म को पहचाननेवाले तथा सशक्त एवं जीवन्त कवि के रूप में द्विवेदीजी हमारे सामने आए ।

द्विवेदी जी के राष्ट्रीय कवि का प्रौढ़ रूप छायावाद युग में उभर आया है । इस युग की राष्ट्रीय चेतना पर प्रकाश डालें तो सन् 1920-21 के देशव्यापी असहयोग आन्दोलन से राष्ट्रीय चेतना ने एक नयी करवट लेकर विद्रोह भावना को गौरव का विषय बना दिया । भारत के मजदूर किसानों एवं युवकों के संगठित हो इस मुक्ति संघर्ष में द्विवेदी जी ने प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय सहयोग दिया और उसी प्रेरणा से राष्ट्रीय कविताएं लिखीं । उन्होंने राष्ट्रीयता को अपने रंगों का रक्तप्रवाह मान लिया, राष्ट्रानुराग को अपनी रागात्मक संवेदना का विषय बना लिया ।

सोहनलाल द्विवेदी छायावाद में छिपे गांधीवादी राष्ट्रीय कवि हैं । छायावाद युग के कवि होने की वजह से उनकी राष्ट्रीय कविता में कहीं कहीं गेय शैली का प्रयोग एवं प्रकृति का थोड़ा प्रभाव परिलक्षित होता है । किन्तु उसमें छायावादी कलाबाजियां ढूंढ निकालना बिलकुल व्यर्थ है । 'प्रभाती' की भूमिका में कवि ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है - जानबूझकर मैं कल्पना के पंखों पर चढ़कर हिमश्रृंगों पर नहीं उड़ा, क्योंकि उतनी दूर मेरा पाठक न जा सकता था, काव्य की लक्षणा एवं व्यंजना का मोह भी मुझे छोड़ना पड़ा । अभिधा से ही मैंने अपना काम चलाया । कविता न लिखकर मैंने तुकबंदी लिखना स्वीकृत की[1] । उक्त उद्धरण से स्पष्ट व्यंजित होता है कि यथार्थ जगत की ओर द्विवेदी में विशेष आग्रह है । एक प्रतिबद्ध कलाकार का व्यक्तित्व यहाँ उभर आता है ।

विषय की दृष्टि से वे मूलतः द्विवेदी युगीन कवि हैं । या वे द्विवेदी युग में पले छायावाद युग में छिपे राष्ट्रीय कवि हैं । उनकी रचनाओं में द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय कविता की अनुभूति की तीव्रता सुरक्षित है जिसका छायावादी राष्ट्रीय कविता में अभाव है । वस्तुतः द्विवेदी जी की राष्ट्रीय सेवा का एकमात्र लक्ष्य मृतप्राय भारत राष्ट्र को देश प्रेम से अनुप्राणित करना था । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने इसका समर्थन किया है -

---

1. प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी

मुझे न चाहिए साथी संगी
मुझे न चाहिए अतुलित धन
साथ रहे पेड़ों पत्तों का
शीतल बहती रहे पवन
किन्तु कर्म वीरों की गाथा
कैसे वे होते बलिदान
और फूंक दूं मृतक जाति में
नूतन जीवन नूतन प्राण ।

द्विवेदीजी के लिए देशभक्ति ही सर्वोपरि है । मातृभूमि की आराधना में उन्होंने अपनी पूरी कवित्व शक्ति सौंप दी । श्री· हरिवंश प्रसाद शुक्ल मधुकर को एक पत्र में इस विषय पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - गांधीवाद की अपेक्षा, निश्चित ही, भारत माता मेरे समक्ष प्रथम है । मैं किसी वाद के घेरे में बंधना नहीं चाहता । यह बात और है कि गांधीजी की नीति, रीति मुझे एकमेव ऐसी लगी जिस से राष्ट्र का कल्याण-अभ्युदय भारतीय पद्धति से सुगम है[2] ।

द्विवेदीजी ने मुख्यत: दो प्रकार की राष्ट्रीय कविताएं लिखी हैं । एक तो आधुनिक राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करनेवाली फुटकल कविताओं के रूप में - भैरवी, प्रभाती, पूजागीत, चेतना, युगाधार, मुक्ति गंधा, जयभारत जय आदि । "विषपान" भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के आधार पर प्रणीत उनका अकेला खण्ड काव्य है । दूसरे प्रकार की रचनाएं भारत की अतीत सांस्कृतिक गरिमा को व्यक्त करनेवाले प्रबन्ध काव्य हैं - 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'तुलसीदास' आदि[3] ।

1· एक कवि एक देश - ठाकुर श्रीनाथ सिंह के स्वनामधन्य कवि - लेख - पृ·96
2· वही - पृ·150
3· उसका विशेष अध्ययन - सांस्कृतिक चेतना अध्याय में किया है ।

कालक्रम की दृष्टि से एक अलग वर्गीकरण भी वांछित है । क्योंकि उनकी रचनाएं अलग अलग धरातल का समर्थन करती हैं ।[1] भैरवी, विषपान, प्रभाती, युगाधार आदि स्वतंत्रता के पूर्व की राष्ट्रीय रचनाएं है । इनमें देशभक्ति की आकांक्षा, बलिदान और क्रान्ति का प्रबल स्वर अभिव्यक्त है ।

स्वतंत्रता के पूर्व की राष्ट्रीय चेतना

भैरवी के कवि का कथन है कि "इस समय हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न बन्धन से मुक्त होने का है - उसके पश्चात और चाहे कुछ भी हो । सब देशों में जब आज़ादी की लड़ाईयां छिड़ी है, तब वहां के कलाकारों और साहित्यकारों ने जाति तथा जाति के उद्धार में अपना स्वर मिलाया है । भारत वर्ष के कलाकार यदि पीछे रहता है, तब वह या तो मरा है या जीवित नहीं । इसलिए द्विवेदी की स्वाधीनता-पूर्व की रचनाओं में स्वतंत्रता की तीव्र अनुभूति मुखरित हुआ है । स्वतंत्रता प्राप्ति की अदम्य आकांक्षा से द्विवेदी के अन्तस से यह गीत फूट पड़ा कि-

वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो ।
वंदिनी मां को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्न कण में, एक कण मेरा मिला लो ।
जब हृदय का तार बोले,
श्रृंखला के बंद खोले,
हो जहां बलिशीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो[2] ।"

1· वासवदत्ता के आमुख - सोहनलाल द्विवेदी
2· भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ· ।

द्विवेदी जी ने ऐसी रचनाओं के द्वारा देशवासियों को स्वतंत्रता संग्राम में अदम्य निष्ठा से भाग लेने केलिए प्रेरित किया । देश मुक्ति की उत्कट वांछा से फूटी द्विवेदी की राष्ट्रीयता निम्नलिखित श्रेणियों में दर्शाते हैं ।

स्वर्णिम अतीत का वर्णन

एक पराधीन राष्ट्र केलिए गौरव की बात है कि उसका अतीत महान हो । अपने स्वर्णिम अतीत का वर्णन एक अवनत राष्ट्र को उन्नति की ओर अग्रसर करने एवं उन्हें प्रेरणा देने में अधिक उपयोगी रहता है।अतीत के चित्रण की आवश्यकता पर मैथिलीशरण गुप्त का कथन यहाँ उल्लेखनीय है - "भगवान् की कृपा से हम भारतवासियों में कुछ कुछ स्वदेशानुराग की जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं । किन्तु हमारी वर्तमान दशा ऐसी नहीं कि उसपर विशेष अभिमान किया जा सके । ऐसी दशा में अपने अतीत के गौरव की ओर ध्यान होना आवश्यक ही है । यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान कर सके तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है । पतित जातियों को, इनके उत्थान में, उनके अतीत गौरव का स्मरण बड़ा सहायक होता है, आत्मविस्मृति ही अवनति का मुख्य कारण है और आत्म स्मृति ही उन्नति का।"[1] युग कवि अतीत की उपेक्षा नहीं करता, मूल रस वह वहीं से खींचता है । वर्तमान को उससे सींचता है और भविष्य को अपनी कल्पना द्वारा देखता है ताकि पूर्ववर्ति राष्ट्रीय कवियों के समान सोहनलाल द्विवेदी ने भारत के गौरवपूर्ण अतीत का उल्लेख स्थान स्थान पर किया है । उन्होंने 'प्रभाती' में महाभारत के वीर योद्धाओं कालिदास आदि महान कवियों तथा राम, अशोक, चन्द्रगुप्त आदि महापुरुषों का स्मरण करते हुए लिखा है कि -

---

1. मौर्यविजय की भूमिका

जब प्रणय बना जग में विलास
तब तो अपना ही बना काल
जब तुम्हें ज्ञात था पृथ्वीराज
तब क्यों न चले पथ पर संभाल ।
जग जाती तुम भी संयोगिते
मत सोती यों बेसुध रानी ।
तो क्यों हम होते पराधीन ?
होते अपने कुल का पानी ।[1]

इस में पराधीनता के प्रतिरोध भी प्रकट हुआ है ।

जब सारी दुनिया सोती थी
तुमने ही तो उसे जगाया
दिव्य ज्ञान के दीप जलाकर
तुम ने ही तो उसे जगाया
*　　　*　　　*
तुमने वेद उपनिषद रचकर
जग जीवन का मर्म बताया
ज्ञान शक्ति है ज्ञान मुक्ति है
तुमने ही तो गाना सुनाया ।[2]

यहाँ कवि प्राचीन भारत के वेद तपस्या, भक्ति, विद्वत्ता और न्याय का उल्लेख करते हुए हमारे स्वर्ण अतीत का परिचय देते हैं । विक्रमादित्य शीर्षक कविता में भी भारत के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं कि -

---

1. प्रभाती - पृ. 11-12
2. भैरवी - पृ. 110

कवि कालिदास की वरवाणी,
गाती थी गौरव कल्याण
नव मेघदूत के छन्दों मे
मकरन्द मेघ था बरसाया ।

x x x

उज्जैन अवंती का वैभव,
दिशि-दिशि करता फिरता कलरव,
उस दिन, दरिद्रता बनी, बनी सब
मे ही था सब कुछ पाया । [1]

यहाँ कवि विक्रमादित्य के समय के वैभवपूर्ण भारत का यशोगान करते हुए पराधीन देश की मुक्ति केलिए आह्वान करते हैं । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

जागो फिर एक बार विक्रम ।
नवजीवन का हो नव उपक्रम ।
फिर कोटि कोटि कंठों ने मिल,
जननी का विजय गान गाया । [2]

मातृभाषा के महत्व के सम्बन्ध में विचार

जनमानस में राष्ट्रीय चेतना बनाए रखने को निमित्त भाषा की उन्नति नितान्त आवश्यक है । भाषा का स्वरूप देश की एकता का प्रतीक है । भाषा देश के संगठित रूप का बोध कराती है । वह हमारी संस्कृति का एक अंग है । हमारी गौरव पूर्ण संस्कृति, हमारे आदर्श और विश्वासों की प्रतिष्ठा देशी भाषा के

1. प्रभाती - पृ.80
2. वही - पृ.81

माध्यम से ही संभव है। इसलिए राष्ट्रीय चेतना को उजागर करने में राष्ट्र भाषा का महत्व बड़ा है। ताकि हिन्दी के सभी राष्ट्रीय कवियों ने हिन्दी भाषा की उन्नति का आग्रह किया है। राजनीतिक में भी हिन्दी को आसीन करने में वे प्रयत्नशील रहे। सोहनलाल द्विवेदी की लेखनी ने इसीलिए महत्वपूर्ण योग दिया है। सूरदास की जयन्ति के अवसर पर "स्वागत गान" कविता में भाषा के प्रति प्रेम इस प्रकार प्रकट किया है - जाता है

मंगलमय हो घड़ी आज, यह
मंगल बने आशा,
उठे मातृभाषा का मन्दिर
फूले मन की अभिलाषा
रहे अलंकृत रत्नाभरण
धर संस्कृत सुहाग-बिंदी
कोटि कोटि कंठों से गूंजे
मधुर मातृभाषा हिन्दी।[1]

फिर "पुण्य प्रयाण" में कवि जनता से अनुरोध करते हैं कि जिनको अपने देश, वेश, भाषा का मान नहीं वह देश का सच्चा प्रतिनिधि नहीं। इसलिए -

आग लगा दो ऐसे कानूने
कृत्रिम कुटिल विधान में।
राज विदेशी भाषा का
अब रहे न हिन्दुस्तान में।[2]

---

1. प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.7।
2. मुक्तिगाथा- " - पृ.18

अभिनन्दन कविता में कवि ने हिन्दी भाषा के कवियों के प्रति सुन्दर भाव प्रकट किए हैं -

तुम जननी के श्रृंगार हार ।
तुम हिन्दी के श्रृंगारकार
मैं मधुमय शब्दों की गागर, तुम भरते अर्थों का सागर
ऋषि, शिल्पी, कलाकार, नागर
वीणा वाणी के मधुरतार, तुम जननी के श्रृंगार हार ।
खुला हिन्दी मन्दिर का द्वार
हुआ है नव उद्‌भुत श्रृंगार
आ रहे पत्र पुष्प ले भक्त
चढ़ाते हैं सुन्दर उपहार ।

द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के बड़े बड़े महारथियों के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की है । तुलसीदास, प्रेमचन्द, निराला, पंत आदि का यशोगान उनके भाषा प्रेम को ही प्रकट करता है ।

वर्तमान दुर्दशा का वर्णन

विदेशी शासन के अधीन देश का सामाजिक जीवन बहुत दुष्कर हो गया । सामाजिक कुरीतियों तथा संकीर्णताओं के विरुद्ध साहित्यकारों ने लेखनी चलाई । द्विवेदी जी ने उन संकीर्णताओं का यथार्थ चित्रण ही नहीं किया, उनका उचित संशोधन करने की ओर भी ध्यान दिया । वे अपने जीर्ण शीर्ण समाज को नूतन जीवन प्रदान कर उसे फिर से सशक्त तथा सुसंस्कृत देखने के इच्छुक थे ।

---

1. प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰38

"भैरवी" की अधिकांश रचनाएं वर्तमान दुर्दशा का सुधार आह्वान है । "गांवों में" शीर्षक कविता में कवि ने कृषकों के करुण क्रन्दन को वाणी दी है । निम्नलिखित पंक्तियां देखिए -

हड्डी-हड्डी पसली पसली निकली जिसकी एक एक
पड़ो मानव किस दानव में ये नर हत्या के लिये भेस
पी गया रक्त खा गया मांस रे कौन स्वार्थ के दावों में ।
आजीवन श्रम करते रहना मुंह से कुछ न कहना
नित विपदा पर विपदा सहना मन की मन में साधे रहना,
ये आंसू हैं, ये आहें हैं, जो मिले न कहीं किताबों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहां वह बसा हमारे गांवों में ।[1]

विदेशी शासन की दमनपूर्ण नीति के कारण भारतीय कृषक वर्ग को जितनी कठिनाइयां भोगनी पड़ी हैं उनकी सही पहचान प्रस्तुत पंक्तियों में मिलती है । आर्थिक विषमता को मिटाने और धरती में उजड़े वृन्दावन बसाने के लिए कवि क्रान्ति को स्वर दे रहे हैं । यह प्रगतिशीलता के नाम पर सिर्फ नारे नहीं द्विवेदी की प्रतिबद्धता का फल है । पुरवधुओं का शृंगार महलों में युग-युग से बन्द है । युग का यह कटु सत्य कवि के निम्न लिखित शब्दों में मूर्त रूप लेता है । देखिए -

है जिनके पास एक धोती, है वही दरी, उनकी चादर
जिससे वह लाज संभाल सदा निकला करतीं घर से बाहर
पुरवधुओं का क्या हो शृंगार ? जो बिका रईसों रावों में ।[2]

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰15
2. वही - पृ॰11

कवि ने फटे चिथड़ों में लिपटे हलधर में नर नारायण की छवि देखी । उनके आँसुओं से रिश्ता जोड़ा जिनके खेत काट लिये जाते हैं, जिनकी फसलें नीलाम चढ़ा दी जाती हैं, जिनके खलिहानों में आग लगा दी जाती है, घर आने से पहले जिनके हाथों से अनाज लूट लिया जाता है -

ऋण भार चढ़ा जिसके सिर पर बढ़ता ही जाता सूद ब्याज
घर लाने के पहले कर से छिन जाता है जिसका अनाज ।[1]

भारत के शोषित, पददलित ग्रामवासी शोषण के पहिए के नीचे कुचल रहे हैं आंसू और आहें लेकर मौन । यथार्थ को कवि ने लुप्त होने नहीं दिया, भूखे और प्यासे तथा निरावरण शोषण ग्रस्त कृषकों के लिए कवि का करुणाभाव फूट पड़ा । कवि ललकारते हैं -

दो कौर न मुँह में अन्न पड़े तो फूट जाय सारी शानें
कवि पहचानेंगी रूप परी नर कंकालों की क्या जानें ।[2]

ग्राम्य संस्कृति के अभावों का ऐसा सशक्त चित्र शायद ही विश्व के किसी कवि के पास हो -

उन रात रात भर दिन दिन भर खेतों में चलते दोनों में
दुपहर की घना अकेली में विरहा के सूखे बोलों में,
" " " "
खुरपी ले ले छीलते घास करते कोड़ों की कोरों में
लकड़ी का बोझ लदा सिर पर जो बंधा की मूंज की डोरों में ।[3]

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 12
2. वही - पृ. 15
3. वही - पृ. 10-13

सामाजिक दुर्दशा पर कवि इतना क्रुद्ध दिखाई देता है कि वे भारत के उन दलित अंचलों से निखिल सृष्टि को भस्म करने का आह्वान करते हैं। सामन्तवादी युग में भी उनकी चेतना में यह स्पष्ट था कि क्रान्ति की चिनगारियाँ भारत के ग्रामीण कुटीरों में छिपी हैं। आज़ादी की तृष्णा से कवि कहते हैं -

बढ़ जायें चाहिल करोड़ फिर
बल के मधुमय फूलों पर
मेरी माँ भी चले विहँसती
आजादी के फूलों पर।[1]

कवि स्वतंत्रता का दृढ़ संकल्प किये हुए हैं। जब जनता जागी, जुझ पड़ी, दमन चक्र तेज़ी से चल पड़ा तो उन्होंने ललकारा -

जंजीरों से चले बाँधने आज़ादी की चाह,
घी से आग बुझाने की सोची है सीधी राह।
हाथ पाँव जकड़ो जो चाहो है अधिकार तुम्हारा,
जंजीरों से कैद नहीं हो सकता हृदय हमारा।[2]

"प्रभाती" में वे लिखते हैं कि संयोगिता रानी, यदि तुम ही जग जातीं तो हम पराधीन क्यों होते ? आज़ादी का दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं -

या तो स्वतंत्र हो जायेंगे
या तो हम मर मिट जायेंगे।[3]

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.38
2. एक कवि एक देश - पृ.67
3. प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी- पृ.37

समकालीन घटनाओं का चित्रण

द्विवेदी की सूक्ष्म दृष्टि समकालीन राजनीतिक गतिविधियों के प्रति हमेशा सजग रही है । द्विवेदी के युग बोध ने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना की तीव्र अनुभूति उत्पन्न की । अपनी लेखनी के द्वारा समकालीन राजनीतिक गतिविधियों को सही अभिव्यक्ति देने में वे कभी नहीं झिझकते थे । गांधी-इरविन समझौते के तुरन्त पश्चात उन्होंने कहा था -

इस क्षणिक संधि-सन्देश, झिलमिलातीसी पथ में छाया है
इसके जीवन में मत सोना, यह छलना है यह माया है[1] ।

"भैरवी" की दांडी-यात्रा[2] में कवि ने महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों की अंग्रेजों के नमक कानून तोड़ने की यात्रा का वर्णन किया है और 'प्रभाती' के "उपवास" तथा "व्रत समाप्ति" कविताओं में गांधीजी के उपवास तथा उसकी सफल समाप्ति की झांकी उपस्थित की है । "प्रार्थना" में हरिजनों के लिए मन्दिर खोलने की प्रार्थना की ओर संकेत किया गया है । बंगाल के अकाल से भी जनता के हृदय में क्षोभ की लहर दौड़ गयी । "बुभुक्षित बंगाल" शीर्षक कविता में इसकी झांकी मिलती है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

वह देखो पथ पर कितने ही
हाथ उठ रहे हैं ऊपर,
रोटी एक सामने है
सैकड़ों खड़े हैं नारी-नर,
:: : ::
यह अपना बंगाल बुभुक्षित है
जिसने पोषण भरण किया
यह अपना बंगाल व्यथित है
जिसने नित धन धान्य दिया[3] ।

1. एक कवि एक देश - पृ.15, [2] भैरवी - सो.द्विवेदी-पृ.69 [3] वही-पृ.77-78

इसके अलावा गांधीविचारधारा से प्रभावित 'प्रभाती' की "अहिंसा अवतरण", "सेवाग्राम", "प्रभात फेरी" आदि में स्थान स्थान पर गांधीवादी विचारों का प्रतिपादन किया गया है । कवि ने खादी और स्वराज्य का भी उल्लेख किया है । इसके बारे में 'प्रभात फेरी' में वे लिखते हैं -

खादी का बाना पहन लिया
आज़ादी ध्येय हमारा है ।[1]

'अखण्ड भारत' शीर्षक कविता में युग-व्याप्त हिन्दू मुस्लिम संघर्ष की ओर संकेत किया गया है । युगाधार की "चेतना का सत्याग्रह"[2] शीर्षक कविता में कवि ने सत्याग्रह का वर्णन किया है ।

इस प्रकार द्विवेदी ने अतीत और वर्तमान के चित्रण द्वारा देशवासियों में स्वाधीन होने की ललकती आकांक्षा उत्पन्न की है । उनमें उद्बोधन का अनगूंज भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है जो राष्ट्रीय कवियों की सामान्य विशेषता है । उसका विवेचन बाद में किया जायगा । क्योंकि यह उद्बोधन और वीरपूजा की प्रवृत्ति उनके स्वतंत्रता के पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर कालीन रचनाओं में समान रूप में प्राप्त होता है । दोनों का लक्ष्य भिन्न होने पर भी उनके स्वरूप में भेद नहीं । स्वाधीनता के पूर्व के उद्बोधन और वीर पूजा का लक्ष्य स्वराष्ट्र की स्थापना था तो स्वाधीनता के बाद उनका लक्ष्य सुराष्ट्र की स्थापना रहा ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी की परतंत्रताकालीन रचनाओं में राष्ट्रीयता का रुझान अंग्रेज़ों के साम्राज्य के विरुद्ध संपूर्ण राज्य की स्थापना की ओर रहा ।

1· प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·36
2· युगाधार- ,, - पृ·63-86

स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय चेतना

मोहनलाल द्विवेदी की स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रचनाएं पुनर्निर्माण के उन्नायक तत्वों के अन्वेषण का परिचायक है। "चेतना", "युगगीत", "मुक्ति गंधा" एवं "जय भारत जय" द्विवेदी की स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय रचनाएं हैं। इन रचनाओं में स्वाधीनताजन्य हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति के साथ नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा गणतंत्र के स्वागत द्वारा जनता को उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रधर्मी यानी समाज धर्मी कवि अब जनवादी कलाकार बन जाते हैं। "मुक्ति गंधा" के पुरोवाक् में अपना ध्येय उद्घाटित करते हुए मोहनलाल द्विवेदी ने लिखा है कि "स्वातंत्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड़ से गुजरा है, जनता पर जो उसकी प्रतिक्रिया हुई है उसकी मानसिक आशा, निराशा, आकांक्षा, आक्रोश के भाव साकार होकर आप से साक्षात्कार करना चाहते हैं। इन रचनाओं में कवि के व्यक्तिगत नहीं, जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति है, जिसका वह प्रतिनिधि है, जिसका वह प्रवक्ता है, जिसका वह पुजारी है[1]। द्विवेदी की स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय चेतना का निम्नलिखित 10 प्रवृत्तियों द्वारा मूल्यांकन किया जा सकता है।

स्वाधीनता जन्य हर्षोल्लास

स्वाधीनता जन्य हर्षोल्लास द्विवेदी जी के नवीन राष्ट्रीय काव्य का प्रमुख स्वर है। देश की स्वाधीनता का स्वागत करते हुए कवि स्वतंत्रता के पुण्य पर्व पर अपना हर्षोल्लास अभिव्यक्त करते हैं कि -

पग-पग जागरण अपार, आ रही स्वतंत्रता
साज लो सिंगार सार, आ रही स्वतंत्रता

---

1. मुक्तिगंधा - मोहनलाल द्विवेदी

दिन है बन्धन विहीन, रजनी बन्धन विहीन,
आज मनी कार्यकला अपनी बन्धन विहीन,
जननी बन्धन विहीन, धरणी बन्धन विहीन,
यह रही स्वतंत्रता समीर देश में नवीन,
उमड़ी मकरन्दधार, आ रही स्वतंत्रता,
साज लो सिंगार सार, आ रही स्वतंत्रता[1]।

स्वतंत्रता के पुण्य पर्व पर स्वाधीनता जन्य गौरव का मूल्यांकन करते हुए कवि उसका पूजन और अर्चना करते हैं कि -

युगों की सुलझी समस्या,
यह शहीदों की तपस्या,
यह स्वाराज्य शिखर
उन्हीं की नींव पर उठकर तना है।
मुक्ति के मंगल विहान की
आज पूजन अर्चना है।
राष्ट्र के अभिमान जागो,
राष्ट्र के अभियान जागो,
आज पुण्य प्रयाण की फिर
उठ रही जय गर्जना है[2]।

द्विवेदी ने स्वतंत्रता का मंगल गीत गाते हुए स्वतंत्र भारत की पताका का भी अभिनन्दन किया है। तिरंगे ध्वज का अभिवादन करते हुए कवि कहते हैं कि

---

1. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.28
2. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.35

लहरे तिरङ्गा ध्वज अपना ।
जिसने सत्य बना दिखाया
आज़ादी का सपना ।
जिस जय ध्वज को पाकर जागे,
सोये भाग्य हमारे जागे,
दूर हुए सदियों के बन्धन,
रोना और कलपना ।
लहरे तिरङ्गा ध्वज अपना ।[1]

हमारी स्वतंत्रता के प्रतीक तिरङ्गा ध्वज का गौरवगान करते हुए कवि मातृ भूमि की गरिमा की ओर भी इशारा करते हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि की राष्ट्रीय चेतना ने नवीन रूप ग्रहण किया है -

फहरा, फिर जय केतन फहरा ।
धरा हँसी, अम्बर मुसकाया,
दिग दिगन्त मे सुरभि लुटाया,
कंचन किरणों ने जननी का
हेमकिरीट रच दिया गहरा ।
फहरा, फिर जय केतन फहरा ।[2]

स्वाधीनता जन्य गौरव की अभिव्यक्ति के साथ कवि ने गणतंत्र का स्वागत भी किया है । द्विवेदी का विचार है कि गणतंत्र के द्वारा ही जनता में वैचारिक परिवर्तन संभव होगा और उन्हें उच्चतम धरातल पर *विश्व* प्रतिष्ठा मिलेगी । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि गणतंत्र का अभिवादन करते हैं कि -

---

1. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 1
2. वही - पृ.36-37

अपनी जननी के हित फिर सर्वस्व आज बलिदान करो ।
बढ़ो, देश के युवक-युवतियो, आज पुण्य प्रस्थान करो ।
सिंहासन पर आज लोक सत्ता
को तुम आसीन करो,
आज जियो या आज मरो तुम
किन्तु विजय आसीन करो[1] ।

स्वाधीनता और गणतंत्र के अभिवादन के साथ ही साथ कवि नए मानव का भी स्वागत करते हैं । राष्ट्र का नव निर्माण प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति पर निर्भर रहता है । इसलिए कवि कहते हैं कि -

व्यक्ति व्यक्ति बन जाय देश की
भक्ति स्वर्ण बन दमक उठे ।
व्यक्ति व्यक्ति बन जाय देश की
शक्ति किरण बन चमक उठे ।
आज तुम्हारी भी स्वर लहरी,
गूंज ऐसी गमक उठे,
सकल राष्ट्र की रचना में
प्राणों का पौरुष समक उठे[2] ।

गणतंत्र राष्ट्र की सफलता वहाँ की जनता की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता पर आश्रित रहती है ।

इस स्वतंत्रता की अमर ज्योति
की ज्वाला मन्द न हो ।

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.10
2. वही - पृ.7-8

प्राणों का स्नेह चढ़ाने की
यह धारा बन्द न हो ।

:: :: ::

घिर रही आँधियाँ दसों दिशा से
इसे बुझाने को,
चल रहा दुश्मन जोर शोर से
इसे मिटाने को,
हम लोहे की चट्टान खड़े हों
इसे बचाने को[1] ।

नूतन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

द्विवेदी की नूतन राष्ट्रीय चेतना में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना का स्वर मुखर हुआ है । उन्होंने अन्त मूल्यों के प्रसार और नव चेतना को ग्रहण करने का सन्देश दिया है । निम्नलिखित पंक्तियों में उसका आभास मिलता है -

तो आओ बन्धु एक बार
अपने को जाने हम
अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति
पहचानें हम ।
एक-एक बिन्दु-बिन्दु कड़ी-कड़ी
जोड़ें हम
श्रुतियों स्मृतियों से अमृत
निचोड़ें हम
प्रेयस ही नहीं, श्रेयस का ले विजय केतु
चलो पार करें बन्धु, दुस्तर भव सिंधु सेतु[2] ।

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.20-21
2. वही - पृ.112

द्विवेदी ने सत्य और त्याग के प्रसार की आकांक्षा प्रकट की है। उनका विश्वास है कि सत्य और त्याग के द्वारा सुसंस्कृत एवं सुदृढ देश का निर्माण हो सकता है। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा उन्होंने उस महत्तम आदर्श को अभिव्यक्त किया है।

चलो सत्य को लेकर सम्मुख,
दुख भी चमक उठेंगे बन सुख,
तुम पर जीत ज्योति की होगी,
" " "
त्याग वहीं, अनुराग जहाँ है
त्याग जहाँ, विसर्जन निधि है,
सौ पातों की एक बात यह
सौ बातों की एक बात यह[1]।

शक्ति के प्रसार की आकांक्षा प्रकट करते हुए वे लिखते हैं कि -

जागो हे पांचाल निवासी
जागो हे गुर्जर, मद्रासी
जागो अंग बंग के द्रोही
जागो मध्य देश के वासी,
जागो क्षत्रिय, सिक्ख, मराठे
जागो रण कला के अभ्यासी।
कोटि शत्रु के कोटि वक्ष में,
चमके अभ्युत्थान हमारा,
विजयोत्सव के पुण्य पर्व में,[2]
जागो हिन्दुस्तान हमारा।

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.56
2. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.58

इस प्रकार कवि की दृष्टि नूतन मूल्यों और आदर्शों के प्रसार की ओर अधिक उन्मुख है ।

नए उत्तर-दायित्वों के संवहन की प्रेरणा

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी देश में विघटनकारी प्रवृत्तियां चलती रहीं । एक प्रतिबद्ध कलाकार के नाते द्विवेदी की उस घुटन और पीड़ा से अप्रभावित रहना संभव नहीं था । श्री·लल्लन प्रसाद व्यास को लिखे एक पत्र से द्विवेदी के जागरूक कलाकार का आभास मिलता है । "आज तो राष्ट्र कवि हमारे राज कवि बन गए हैं । राजाश्रय पाने से उनकी वाणी भी मौन है । वे जनता को मार्ग दर्शन कराने में असमर्थ हो रहे हैं तब हमारा आपका सबका कर्तव्य क्या है ? क्या इस घुटन में ही हम दम तोड़ते रहेंगे, उसे अभिव्यक्ति देकर राष्ट्र को दिशा-दर्शन कराने के कर्तव्य से वंचित हो जायेंगे । वे युवकों को राष्ट्र के [illegible] नवनिर्माण केलिए हमेशा सचेत करते रहे । स्वतंत्र भारत की समस्याओं की अभिव्यक्ति के साथ साथ जनता में देश भक्ति, कर्तव्य निष्ठा, अनुशासन प्रियता तथा चरित्र की पवित्रता के विकास केलिए प्रेरणा देते रहे । निम्नलिखित पंक्तियों में द्विवेदी की प्रतिबद्धता का स्वर मुखरित होता है -

अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूँ ।
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूँगा,
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ ।
::   ::   ::

1· एक कवि एक देश - पृ·119

तुम उठो, धरती उठे, नभ शिर उठाये
तुम चलो गति में, नयी गति झनझनाये,
विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूँगा
प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूँ।
दासता उन्मान की करनी नहीं है
दासता अपमान की करनी नहीं है,
वन्दना में मैं तुम्हें झुकने न दूँगा
वन्दनीय तुम्हें बनाने आ रहा हूँ।[1]

देशवासियों को नए उत्तरदायित्वों के प्रति आस्थावान बनाने के लिए द्विवेदी ने समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों की अनेक झाँकियाँ उपस्थित की हैं। युग के कोरे यथार्थ को झुककर चित्रित करने में वे कभी नहीं झिझकते थे। राजनैतिक नेताओं को चेतावनी देते हुए कवि अप्रत्यक्ष रूप से युवकों को अपने उत्तरदायित्वों की ओर सचेत करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में उसकी झाँकी मिलती है।

ओ गणतन्त्र मनानेवालो,
ओ जनतंत्र गीत के गायक,
पीछे हटो, बढ़ो मत आगे
तब जनता के उन्नायक,
स्वयं सुधारो तुम अपने को
ओ सुधारवादी नेता,
कथनी ओर, और करनी है
आज रहे तुम किस लायक ?[2]

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.3-4
2. वही - पृ.33

निम्नलिखित पंक्तियों में हमारे अभिशप्त गणतंत्र का जैसा नग्नचित्र कवि उभारते हैं, उसे देखिए -

जन जन को दे सके न अब तक
नीड़ा एक निवास रे ।
झोंपड़ियाँ रो रही आज भी
हँसते हैं रनिवास रे ।
यह कैसा समाज जिसमें है
दीनों का उपहास रे,
जो मेहनत करते, पाते भर
पेट न मुख का ग्रास रे[1] ।

इस प्रकार एक जागरूक कवि की तरह से राष्ट्रधर्म के निर्वाह केलिए उन्होंने हमेशा अपनी लेखनी को संभाला है । उनका धर्म था कि वह जन नायकों को दिग्भ्रमित न होने दे । उन्होंने लोगों को समझाया कि हिन्दुस्तान हमारा है और हम सब हिन्दुस्तान के हैं -

इतने बड़े, इतने नारे, इतने दल-बल,
तुम सभी अलग से, लेकर के क्यों जाते हो ?
:: :: :: ::
अपना झंडा है एक, देश है एक, कहो चाहे जो तुम
हम आज तुम्हारी बात न बिलकुल मानेंगे ।
जो शक्ति देश को खंडित करना चाहेगी
हम उसे देश का पहला दुश्मन जानेंगे[2] ।

1· मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·113
2· जयभारत जय - सोहनलाल द्विवेदी-पृ·122

द्विवेदीजी की युग के प्रति वफादारी प्रस्तुत पंक्तियों में प्रकट हुई है । देश की शक्ति एवं भावात्मक एकता को खण्डित करनेवाला भले ही वह क्यों न हो, उसे कवि देश के पहले दुश्मन के रूप में ललकार[1] रहे हैं ।

स्वतंत्र भारत के अभिशाप्त युग-बोध का परिचय देते हुए कवि देशवासियों को युग-धर्म की सुरक्षा की ओर प्रेरित करते हैं । वे कहते हैं कि -

-और हम घर में परदेशी हैं,
धर्महीन आस्था हीन, भटके मवेशी हैं,
x x x x x x
मनुज हम नहीं रहे
लगता सब मवेशी हैं
भौतिकता के डण्डे से हाँके सभी जा रहे
x x x x x x
इस का भी कारण कभी सोचा बन्धु क्या है
आत्मबोध शून्य ......
युगबोध अभिशाप्त हम ।

इसलिए आत्मनिर्भर एवं सुसंस्कृत राष्ट्र की स्थापना के लिए कवि देशवासियों का आह्वान करते हैं । युग-चेता कवि की प्रतिबद्धता की झलक निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा अभिव्यक्त होती है ।

तो आओ बन्धु एक बार
अपने को जानें हम
अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति
पहचानें हम ।

---

1. मुक्तिगाथा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 112

एक-एक बिन्दु-बिन्दु कड़ी-कड़ी
जोड़ें हम
श्रुतियों स्मृतियों से अमृत
निचोड़ें हम
प्रेयस ही नहीं, श्रेयस का ले विजय केतु
चलो पार करें बन्धु, दुस्तर भव सिन्धु सेतु[1]।

कुर्सी की छीना-झपटी पर कवि दुःखी है। देश में व्याप्त पद लोलुपता, स्वार्थपरता, काला बाजारी आदि अनैतिक कार्यों पर वे कटु आक्षेप करते हैं। आत्मबलिदान के सम्मान में प्राप्त भारत की स्वतंत्रता को अपने स्वार्थ की चुनौती हेतु बरबाद न करके ठीक समय पर राष्ट्र का नवनिर्माण करने केलिए कवि आह्वान करते हैं -

भारत का सौभाग्य।
मिली जननी को बेटी मरदानी,
जिसने किसी चुनौती में हो
जानी नहीं हार मानी,
अवसर बारम्बार न आता,
ओ अवसर के सम्मानी।
घर-घर मंगलदीप जल उठें,
करें तुम्हारी अगवानी[2]।

इस प्रकार राष्ट्र के नवनिर्माण केलिए द्विवेदी का जागरूक कवि निरन्तर प्रयत्न करते रहें। टूटते हुए जनमानस को उन्होंने सम्भाल दिया और अपनी जागरूक लेखनी से युग के कोरे यथार्थ को पुकारकों के सम्मुख निर्भय होकर रख दिया।

1· मुक्तिगाधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·112
2· वही - पृ·117

"मुझे भरोसा रहा नहीं अब दिल्ली के दरबार का" तथा "ओ लाल किले पर झंडा फहरानेवालो" जैसे उद्बोधनात्मक और क्रान्ति युक्त गीतों द्वारा द्विवेदी ने समय समय पर शासन की आलोचना और प्रत्यालोचना करते रहें । यह विशेष उल्लेखनीय है कि राष्ट्र के चतुर्दिक अभावानों और उससे उत्पन्न कर्तव्य निरपेक्षता तथा आत्म विस्मृति की स्थिति में भी कवि कहीं भी दिग्भ्रमित और निराश नहीं है । उनको विश्वास है -

> मायूस न हो, फिर भी मेरे हम ख्याल दोस्त
> दिन दूर नहीं, जब इन्कलाब फिर आएगा ।
> वह क्रान्ति उठेगी इसी देश के जन जन में
> सूरज निकलेगा, अन्धकार टल जाएगा[1] ।

इस प्रकार द्विवेदी जी की स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों तथा विचार धाराओं की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है । जीवन के प्रति आस्तिक दृष्टिकोण रखनेवाले कवि में घनीभूत युग चेतना के कारण ही आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने उन्हें "उशना कवि[2]" नाम दिया । ओजस्वी यानी राष्ट्रकवि-सदा-समर काव्य ही नहीं देता रहता, वह राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार समय समय पर सब कुछ देता रहता है ।

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी
2. श्रीकृष्ण ने उशन को संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि कहा है : कवीनामुशना: कवि: । उशन शुक्र कवि का नाम है । वे असुर कवि थे । जब देवासुर संग्राम हो रहा था तब शुक्र कवि [उशना] ने असुरों को बार बार विजय दिलायी । प्रसिद्ध है कि शुक्र को संजीवनी विद्या आती थी, जिससे वे मरे हुए असुरों को जीवित कर देते थे । यह संजीवनी विद्या कवि की वह अमृत वाणी ही थी जो मरे हुए अस् को भी जीवित कर देती थी - कायर से कायर को समर रसिक बना देती थी कवि ने उसी वाणी की प्रशंसा की है । उसी ओजस्वी सम्प्रदाय के कवि है सोहनलाल द्विवेदी - एक कवि एक देश - पृ.56

जागरणगीत

द्विवेदी ने ऐसी कविताएं भी लिखी हैं जिनमें प्रकट रूप से राष्ट्रीयता का स्वर सुरक्षित नहीं है । लेकिन ऐसी कविताएं एक जागरूक कवि की प्रतिबद्धता का फलक भी है । परतंत्रता को सहन करनेवाली जनता को जागरित करने के हेतु तथा जनता को एकान्तिकता से मुक्त करने केलिए ऐसे गीतों की सार्थकता हमेशा बनी रहती है । अतः हमने यह भाव व्यक्त किया है । 'भैरवी' के बारे में जैनेन्द्र कुमार का कथन यहाँ उल्लेखनीय है - 'भैरवी' की कविताएं भारतीय राष्ट्रीयता के ताल पर रची गयी हैं । उनमें सामयिकता है । व्यथा जगाने से ऊपर वे प्रभाव भी देना जानती हैं । आत्म संस्कार से अधिक प्रवृत्ति-जागरण उनका लक्ष्य है ।[1] अन्य राष्ट्रीय कवियों की अपेक्षा उनमें उद्बोधन का स्वर अधिक मात्रा में है । 'सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी' शीर्षक कविता में द्विवेदी ने भारत के प्राचीन वैभव का वर्णन करते हुए भारतीयों को जगाने का आह्वान किया है -

जागो हे पांचाल निवासी
जागो हे गुर्जर मद्रासी
जागो हिन्दू मुगल मराठे
जागो मेरे भारतवासी
जननी की जंजीरें बजतीं
जगा रहे कड़ियों की छाले ।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी,
जागो मेरे सोनेवाले ।[1]

---

1. भैरवी के सम्मति पत्र - जैनेन्द्र

"प्रभाती" की "प्रस्तावना" शीर्षक कविता में कवि युग-व्याप्त रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, जड़ जीवन एवं अन्याय के वितान को अग्निज्वाला में जला देना चाहते हैं । इसीलिए वे अपने साथी कवियों को आह्वान करते हैं कि -

जलमें जिसकी ज्वालाओं में
अगणित अन्यायों के वितान ।
रूढ़ियाँ, अंध-विश्वास और
जड़ जीवन का रे तिमिर चीर
आलोक सत्य का फैला दे
वह चले मुक्त जीवन-समीर ।
ओ नव वसि की छवि ! जागजाग ।
ओ नव युग के कवि ! जागजाग[1] ।

"युगगीत" की अधिकांश कविताएं उद्बोधन की हैं । उन्होंने पिक से भी युग का राग गाने का आह्वान किया है -

आज युग का राग गा पिक ।
वहाँ पीले पत्र तरु के
आज जागें भाग्य भव के
जीर्ण जग, इस भव पुरातन में
नवल निर्माण ला पिक[2] ।

1· प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·5
2· ~~प्रति~~ - प्र· युगगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·9

भावावेश की परम्परा में कवि कहीं प्रयाण गीत गाते हैं तो कहीं नवीनजी के विप्लव गायन के जोड़ तोड़ पर विप्लव गीत गाते हैं । दोनों के उद्गारों के मूल में एक ही आग, हुंकार और तूफान उमड़ रहा है । नवीन जी के "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ" - कविता से बहुत मिलती जुलती है द्विवेदी की निम्नलिखित पंक्तियाँ -

रवि गिरने दे, शशि गिरने दे
गिरने दे, तारक सारे,
अचल हिमांचल चल होने दे
जलधि खौलकर फुंकारे,
×× ×× ××
खंड खंड भूखंड, खंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोलें,
मेरे मृत्युंजय की टोली
जब माँ की जय-जय बोलें ।[1]

कवि को विश्वास है कि भारत की सामूहिक शक्ति में अन्याय और दुराचार, विदेशी सत्ता के अत्याचार और बलात्कार को भस्मीभूत करने की शक्ति निहित है । विप्लवगीत में कवि की जिज्ञासा दर्शनीय है । आज़ादी की लड़ाई में दीवानों की जो टोलियाँ जा रही हैं, लगता है उन की अजेय पौरुष के सामने सारी दुनिया झुक जायेगी । द्विवेदी जी की वाणी में यह सब इतने सजीव रूप में साकार हो गया है कि युग विशेष का इतिहास और सच्चाई इसके समानान्तर भुला नहीं जा सकता । द्विवेदी के उद्बोधनात्मक गीतों में भी अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है । श्रमिक वर्ग का आह्वान करते हुए वे कहते हैं कि -

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.130

हमारी लाल ध्वजा फहरे तुम्हारी लाल ध्वजा फहरे
लाल ध्वजा यह मजदूरों की लाल ध्वजा यह मजूरों की
लाल ध्वजा यह शूरों की, छू सके साम्राज्य न इसको
.... भीख देख फहरे[1] ।

यहाँ कवि मानवतावाद को स्थापित करना चाहते हैं । वे मातृभूमिगत पारतंत्र्य से पीड़ित नहीं, वरन् यहाँ की कोटि दुर्भाग्यग्रस्त जनता की विकासरोधी स्थितियों से भी दुखित और विकल हैं । इस दृष्टि से उन्हें प्रगतिवादी कहना ठीक नहीं । उनका विद्रोही स्वर ध्वनियों में गर्माहट लेते हैं, किन्तु हाथ में मार्क्स का रिवाल्वर नहीं, जनता को झंडा पकड़ा देते हैं । द्विवेदी जी ने केवल जनता को ही नहीं जगाया, अपने युग के साथी कवियों को भी ललकार उन्होंने पुकार कर कहा -

ओ नव युग के कवि जाग जाग ।
है एक ओर पीड़ित जनता,
है एक ओर साम्राज्यवाद
गा जन गण के जागरण गीत,
टूटे जिससे युग का प्रमाद[2] ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उद्बोधन गीतों में भी यही आत्मीयता दिखाई पड़ती है । कवि ने भारत के नवनिर्माण के साथ ही यह परम आवश्यक समझा कि पतन की दुनिया में नवजात स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तैयार पहले होना चाहिए । इसलिए कवि कहते हैं -

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 119
2. वही - पृ. 125

नव निर्माणों के निर्माता, सर्जन में ही न रहो तत्पर
कब विध्वंसों के आटम बम, आ गिरे अचानक ही सिर पर
इससे कहता हूँ कान खोलकर सुनो आज मेरी पुकार,
भारत के नेता सावधान भारत के शासक होशियार ।[1]

इतना आत्मीयतापूर्ण उद्बोधन परिवार के एक मुखिया का ही होता है जितना कि पं० सोहनलाल जी का है । किसी अन्य कवि की वाणी में परिवार के मुखिया जैसी आत्मीयतापूर्ण ताड़ना का स्वर इतना यथार्थ है, सहज और हृदय स्पर्शी नहीं दिखायी देता । स्वतंत्र भारत के देशवासियों को उद्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि -

सावधान भारत, चीनी,
को सेना बम का गर्व है,
सावधान एशिया, निगलना
तुझे चाहता सर्प है,
सावधान संसार, न अब तक
दुर्मद का मद खर्व है,
युद्ध न होगा बन्द, युद्ध ही अब उसका पैगाम है ।
सावधान ओ देशवासियो, अभी न युद्ध विराम है ।[2]

स्वाधीन भारत के शक्ति केन्द्र किसानों को जागरित करते हुए कवि कहते हैं कि -

नहीं हम चन्द टुकड़ों
केलिए सम्मान बेचेंगे,

1• युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी
2• मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ•7।

नहीं हम चन्द टुकड़ों
केलिए निज प्राण देंगे;
:: :: ::
किया संकल्प जो हमने, नहीं संकल्प देंगे।
किसानो, राष्ट्र के संकल्प को तुमको निभाना है।[1]

इस प्रकार द्विवेदी जी हमेशा जनसमूह को प्रेरित करते रहे हैं। क्योंकि उनकी वाणी में उतनी उग्रता है कि वे जनमानस को हठात् आकर्षित करती हैं। उनके राष्ट्रीय काव्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्होंने कविता केलिए कविता का मार्ग न ग्रहण कर देश केलिए कविता को ग्रहण किया है। वस्तुत: देश प्रेम और कविता में उन्होंने कोई भेद नहीं समझा।

वीर पूजा

वर्तमान के जननायक और महापुरुष के गुण कीर्तन एवं इतिहास के शूर वीरों का स्मरण भी राष्ट्रीयता का प्रबल पक्ष है। जब किसी देश पर संकट छाया हो, निराशा एवं खिन्नता के वातावरण से वह घिरा हो तब उसे अपने स्वर्णिम अतीत से ही आशा की किरण मिलती है और वह वर्तमान से मुड़कर अतीत की ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है। अतीत की वीरोत्तेजक स्मृतियाँ देश की सूखी धमनियों में उष्ण रक्त का संचार कर जनता को आत्मोत्सर्ग करने की प्रेरणा देती है। द्विवेदी जी ने राष्ट्रपिता गांधी के तपोमय जीवन और विराट व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक सूक्तियाँ प्रस्तुत की है।[2] बापू के अलावा राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य महान नेताओं पर श्रद्धांजली एवं आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने जनमानस में राष्ट्रीय चेतना जागरित की है। 'राणा प्रताप के प्रति' कविता में अमर सेनानी प्रताप की स्फूर्तिदायक मधुर स्मृतियों के द्वारा जनमानस में ओज-गुण उत्पन्न किया गया है -

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 75
2. विशद अध्ययन 'गांधीवादी विचारधारा' अध्याय में किया है।

जागो प्रताप, मतवालों के मतवाले सेना सजा रहे
जागो प्रताप हल्दी घाटी से तेरी भेरी बजा रहे ।
मेरे प्रताप तुम फूट पड़ो, मेरे आंसू की धारों से,
मेरे प्रताप तुम गूंज उठो मेरी संतप्त पुकारों से ।[1]

आसुरी शक्ति से पदाक्रान्त भारत में नवनिर्माण की शक्ति उड़ेल देने केलिए कवि शिव का अभिवादन करते हैं । शिव के जैसे दृढ संकल्पी वीर नेता के द्वारा भारत का नवनिर्माण संभव हो सकता है । इसलिए कवि कहते हैं कि -

मेरे जननी के जनजन में
फिर एक बार
जागो मेरे तेजस ओजस
फिर दुर्निवार ।
तेरे अखण्ड भारत का फिर
हो स्वप्न पूर्ण ।
दम्भी कायर क्लीवों का हो
अभिमान चूर्ण ।[2]

सम्राट अशोक के प्रति श्रद्धांजली अर्पित करते हुए उनके वीर पौरुष, क्षमा, अहिंसा आदि का भी कवि परिचय देते हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये कैसे कवि अशोक का पुन: जन्म लेने की वांछा अभिव्यक्त करते हैं -

फिर अशोक का नया जन्म
होगा उन्मद तरुणाई में,

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.34
2. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.93

जिसके आगे टिका न कोई
भृकुटि अंक परछाई में ।
तक्षशिला नालन्दा अब फिर
कभी न जलने पायेंगी
चले भस्म करने जो तुमको
स्वयं भस्म हो जायेंगी[1] ।

राष्ट्र के उन्नायकों के प्रतिनिधि पं॰ मदनमोहन मालवीय की त्याग शीलता और साधना को लक्ष्य करके कवि उनके प्रति भी श्रद्धा प्रकट करते हैं -

मिले तुम्हारी भक्ति देश को, हम जननी-जय-गान करें,
मिले तुम्हारी शक्ति देश को, हम नित नव उत्थान करें ।
मिले तुम्हारी आग देश को, आज़ादी आह्वान करें,
मिले तुम्हारा त्याग देश को, आज़ादी आह्वान करें,
मिले तुम्हारा त्याग देश को, तन-मन-धन बलिदान करें[2] ।

अलावा इसके द्विवेदी जी ने भगतसिंह, सुभाषचन्द्र बोस, रविशंकर शास्त्री, सीमांत गांधी आदि का कीर्तिगान गाया है । जिन वीरों ने अतीत में दु:खियों पर दया करके अत्याचार का प्रतिकार किया है, मानवता को संस्थापित करने के लिए आत्मोत्सर्ग किया है उन अतीत वीरों का कवि ने प्रणाम किया है -

जिनकी आत्मा सदा सत्य का करती शोध,
जिनको है अपनी गौरव गरिमा का बोध,
जिन्हें दु:खी पर दया, क्रूर पर आता क्रोध
अत्याचारों का अभीष्ट जिनको प्रतिशोध ।
उन्हें प्रणाम । सतत प्रणाम[3] ।

---

1. मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰90
2. वही - पृ॰34
3. वही - पृ॰75

इस प्रकार द्विवेदी ने ऐसे अनेक व्यक्तित्वों का आवाहन किया है जिनके द्वारा नई संस्कृति का शिलान्यास हो सकता है ।

निष्कर्ष

वस्तुत: द्विवेदी जी ने अपनी राष्ट्रीय रचनाओं द्वारा विशाल भारतीय जीवन के अनेक शब्द चित्र उपस्थित किये हैं । उनकी राष्ट्रीय रचनाएं जन साधारण के भाव बोध को सुसंस्कृत एवं युग सापेक्ष बनाने के लिए लिखी गयी हैं, वे उन्हीं की सांसों और सुरों से उठाई गयी हैं और उन्हीं को समर्पित हुई है । इसलिए उन्होंने उक्तियों को संवारने की चिन्ता कभी नहीं की । उनकी व्यथा का उद्गम व्यक्तिगत नहीं समाज से होता है और उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक और विधायक होती है । उनकी राष्ट्रीय चेतना संकीर्णताओं और सीमाओं से ऊपर उठकर एक व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित की गयी है । आडम्बर हीनता का यह प्रतिफलन द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व का उत्स है जोकि उन्हें हमेशा एक राष्ट्रीय कवि का रूप दे देता है । अत: उनका उद्बोधनात्मक स्वर हो या वीर पूजा के प्रति आग्रह, सीमित दायरे में प्राणवंत नहीं रहते । क्योंकि सरलता और सच्चाई उनकी कविताओं की ऊर्जा है जो सतत प्रवाहमयी है ।

****

अध्याय - तीन

मोहनलाल द्विवेदी पर गांधी विचारधारा का प्रभाव

अध्याय - तीन

मोहनलाल द्विवेदी पर गांधी विचार धारा का प्रभाव

भारतीय राजनीति और महात्मा गांधी

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी का आगमन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है । दक्षिण आफ्रिका से वापस आने के पश्चात् ही भारत में गांधीजी का राजनीतिक कार्य-क्रम शुरू होता है[1] । कम समय के अन्तर्गत उनका कार्य-क्रम इतना व्यापक होता है कि गांधीजी के व्यक्तित्व के प्रभाव से कोई भी मुक्त न था[2] । यह अवश्य है कि गांधीजी के राजनीतिक विचारों से सभी सहमत नहीं थे । लेकिन वे मात्र राजनीतिज्ञ नहीं थे वे एक प्रबल मानवतावादी के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में आए हुए थे ।

---

1. Gandhi's activity may be devided into two periods. From 1893 to 1914 its field was South Africa, from 1914 to 1922 India
   Mahatma Gandhi - Roman Rollands - p.6

2. What Gandhi said and did was not for an age or for the people of India alone, his message has relevance for all time and for all mankind.
   Mahathma Gandhi - Roman Rollands p.62

जैसे गांधीजी ने समाज की गतिविधियों पर दृष्टि डाली और जो कुछ उन्हें असंगत लगा उनपर उन्होंने टिप्पणी की । लेकिन उन असंगतियों को सुधारना ही उनका उद्देश्य था । इसलिए सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित उनकी जो विचार पद्धति है, उनकी बुनियादी स्तर पर कमी के रहते हुए भी आज भी वह सार्थक प्रतीत होती है । बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवतरित गांधीजी का व्यक्तित्व विराट था । वे समाज-सेवा, मानवता, त्याग, तपश्चर्या और कर्मठता की सजीव प्रतिमा थे । उनके तपपूत जीवन और पवित्र विचारधाराएं समकालीन जीवन और साहित्य के सभी क्षेत्रों को आन्दोलित कर रही थीं । पं॰ जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में गांधीजी ने लाखों भारतवासियों को विविध मात्रा में प्रभावित किया, कुछ लोगों ने उस प्रभाव से अपने जीवन के समूचे ढांचे को बदल दिया, दूसरे अंशतः प्रभावित हुए, या यही कहा जा सकता है कि अधिकांशतः वह प्रभाव अस्तंगत हो गया और फिर भी कुछ अंश कदापि प्रभावहीन नहीं हुआ[1] ।

गांधी विचारधारा, गांधीवाद अथवा गांधी दर्शन

महात्मा गांधी जैसे विराट व्यक्तित्व के महद् विचारों को किस प्रकार किन शब्दों में प्रकटकिया जाय ? यह एक जटिल प्रश्न है । गांधीजी के विचार गांधीवाद, गांधीदर्शन आदि शब्दों से जाने जाते हैं । किन्तु गांधी-विचारधारा का सम्बन्ध किसी "वाद" या दर्शन से नहीं[2] । गांधी विचारधारा केलिए "गांधीवाद" शब्द इसलिए उपयुक्त नहीं कि गांधीजी हमेशा वादों से मुक्त रहना चाहते

---

1. Gandhi influenced millions of people in India in varying degrees, some changed the whole texture of their lives, others only partly effected or the effect wore off and yet not quite for some part of it could not be wholly shaken off.
   The Discovery of India - Jawaharlal Nehru. p.300

2. Gandhian value system cannot be defined as either a priori or through logic, as for example, in plato, or in relation to a given social structure, as for example in Marx or in relation to method or language alone, as for example in the modern philosophies of Theoretical Empericism, ligical positivism, Rationalism, Humanism etc.
   Gandhian Values and 20th centuary Challenges - J.D. Sethi, p.6

मार्च 1936 में गांधी सेवा संघ के सदस्यों के सामने गांधी ने स्पष्ट किया था कि "गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, और न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैं ने कोई नए तत्व सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैं ने तो केवल जो शाश्वत सत्य है, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है। मुझे दुनिया को कोई नयी चीज़ नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आ रहे हैं। ऊपर मैं ने जो कुछ कहा है, उसमें मेरा सारा तत्वज्ञान यदि मेरे विचारों को इतना बड़ा नाम दिया जा सकता है, समा जाता है। आप इसे गांधीवाद न कहिए इसमें वाद नाम की कोई वस्तु नहीं है[1]।

गांधी विचारधारा के लिए "गांधीदर्शन" शब्द भी उपयुक्त नहीं। क्योंकि गांधीजी का कोई मौलिक दर्शन नहीं। उनका जीवन ही उनका दर्शन है। जिन सिद्धान्तों या विचारों को गांधी ने अपने जीवन में ग्रहण किया था उसका प्रतिपादन हमारे पौराणिक ग्रन्थों में पहले ही हो चुका है। वास्तव में गांधी-विचारधारा से मतलब उन सिद्धान्तों या तत्वों से है जिनको गांधीजी ने अपने जीवन में ग्रहण किया था। अर्थात् गांधी विचारधारा का सम्बन्ध किसी "वाद" या "दर्शन" से नहीं बल्कि संपूर्ण जीवन की एक पद्धति से है। यह जीवन का एक स्वस्थ दृष्टिकोण है जिसका लक्ष्य व्यक्ति तथा समाज का हित है[2]। इसका आधार विश्वास एवं संस्कार है।

---

1. हरिजन बन्धु - 1936 - मार्च 26

2. What Gandhi was looking for was not a system but a frame work concepts and values, as well as a method to arrive at them so that many a system could be built upon them for the immediate present, and for the may future stages of development in the unfolding or ful-filling of human destiny - Gandhian Values and 20th Centuary Challenges - Dr.J.D. Sethi p.4

सत्य और अहिंसा गांधीविचारधारा की दो धुरी हैं। गांधीजी का कथन है कि "मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्तव्य नहीं है .... इस कर्तव्य को करते करते ही आदमी सत्य की पूजा कर सकता है। सत्य की पूजा का कोई दूसरा साधन नहीं है, यदि मेरा कोई सिद्धांत कहा जाय तो केवल इतना ही है।[1] अहिंसा की व्यापकता का उल्लेख करते हुए गांधी जी ने लिखा है कि बाहरी हिंसा से कोई भी पूर्णतः मुक्त नहीं रह सकता। अहिंसा एक आन्तरिक तत्व है[2]। सत्य और अहिंसा के माध्यम से भारत में रामराज्य की स्थापना करना गांधी जी का परम लक्ष्य था। रामराज्य से उनका मतलब सबों के लिए समान सुविधा तथा अधिकार प्राप्ति है जो आधुनिक शब्दावली में समाजवाद है।

आधुनिक हिन्दी काव्य और गांधी विचारधारा

गांधीवाद का विशद अध्ययन यहाँ वांछित नहीं है। हमारा ध्येय यह है कि गांधीवाद के किन किन पक्षों का प्रभाव किस प्रकार साहित्य पर पड़ा और उसकी अभिव्यक्ति सोहनलाल द्विवेदी ने कैसे दी है।

---

1. गांधी ग्रन्थमाला का दसवाँ खण्ड - 3 मार्च 1937 को गांधी सेवा संघ सम्मेलन के अवसर पर दिए गए भाषण से उद्धृत।

2. Ahimsa has a comprehensive principle. We are helpless mortals in the conflagration of himsa. The saying that life lives in life has a deep meaning in it. Man cannot for a moment live without consciously or unconsciously committing outward himsa. The very fact of his living-eating, drinking and moving about necessarily involves some himsa, distruction of life, be it ever so minute. A votary of himsa therefore remains true to his faith if the spring of all his actions is compassion, if he shuns to the best of his ability the distruction of the tiniest creature, tries to save it, and thus incessantly strives to be free from the deadly coil of himsa. He will be constantly growing in self-restraint and compassion, but he can never become entirely free from outward himsa.
An Autobiography or the story of My Experiments with Truth Part IV, p.264

भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के उन्नायक के रूप में अवतरित गांधीजी के पवित्र विचारों ने युगीन हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं को आप्लावित किया । गांधी विचारधारा से प्रभावित काव्य युग की सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है । वस्तुतः आधुनिक हिन्दी साहित्य की क्षिप्र गति एवं विकास में गांधी विचारधारा का योगदान महत्वपूर्ण है ।

हिन्दी कविता में गांधी विचार धारा के प्रभाव का आरम्भ द्विवेदी युग के अन्तिम चरण में ही होता है । भारतीय रंगमंच पर गांधीजी का अवतरण द्विवेदी युग में ही हुआ । राष्ट्र के लिए मर मिटने की भावना, गांधीविचारधारा से प्रेरित अहिंसात्मक राष्ट्रीय भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण आदि नए क्षितिजों का उद्घाटन द्विवेदी युग में ही हुआ है । गांधीजी के नेतृत्व में असंख्य देशवासियों ने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर आत्म समर्पण किया था । इस अपूर्व क्रान्ति ने तद्युगीन कवियों को भी क्रियात्मक क्षेत्र की ओर प्रेरित किया । गांधी विचार-धारा से प्रभावित इस युग के प्रमुख कवि हैं मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि । इन कवियों ने अपने युग के असन्तोष, क्षोभ तथा आतुरता का स्वयं अनुभव किया और अपनी लेखनी के द्वारा उन्हें वाणीबद्ध किया । अधिकांश कवियों ने जनता के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया । गुप्त जी ने "साकेत" में उर्मिला के द्वारा समाज में उपेक्षित नारी की प्रतिष्ठा की । "विश्ववेदना" में कवि ने अन्तराष्ट्रीय स्तर पर विश्व की करुण परिस्थिति का अंकन किया है । यहाँ उनकी रामराज्य की कल्पना पंख फैला रही है -

आज के योग्य एक अविभाज्य
विश्व को मिले राम का राज्य[1] ।

---

1. विश्ववेदना - मैथिलीशरण गुप्त - पृ.1

"पंचवटी" में भी गांधी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है । राम, लक्ष्मण तथा सीता के जीवन में स्वावलम्बन और श्रम की प्रतिष्ठा तथा "यशोधरा" में यशोधरा का नारी चित्रण आदि गांधीनीति के अनुसार हुआ है । "जय भारत" में सत्य और अहिंसापूर्ण सात्त्विक मानवता को युधिष्ठिर के व्यक्तित्व में चरितार्थ किया गया है । वस्तुतः गुप्तजी की कविता में गांधीजी के तपःपूत जीवन और दर्शन का पूर्ण विकास परिलक्षित होता है ।

गांधीविचारधारा से प्रभावित हिन्दी का एक लब्धप्रतिष्ठ कवि है सियारामशरण गुप्त । गुप्त जी के काव्य की सबसे बड़ी खूबी सात्त्विकता है जो उस पर होनेवाली गांधी विचार धारा के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है । गुप्तजी ने "नो अखाली" में राजनीति के घात प्रतिघातों की सात्त्विक प्रतिक्रिया का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । गांधी जी की अहिंसा नीति से प्रभावित होकर लिखी गयी कविता में "उन्मुक्त" का प्रमुख स्थान है । वस्तुतः हिन्दी में गांधीजी के तत्व चिन्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति उन्हीं में मिलती है और उन्होंने अपनी साधना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना लिया है । भारतीय चिन्तन धारा की एक विशेष महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के वे अकेले कवि हैं[1] ।

माखनलाल चतुर्वेदी मूलतः गांधी विचारधारा के कवि हैं । गांधीजी के अहिंसा, सत्याग्रह सिद्धान्त, बलिदान की भावना आदि उनकी रचनाओं में यत्रतत्र परिलक्षित होता है । अहिंसक क्रान्ति तथा चर्खा आन्दोलन का समर्थन करते हुए कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है -

ले कृषक सदेश, कर बलि वंदना,
&चक्रधारी की करो सब अर्चना

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ. नगेन्द्र

झूमता चरखा लिए गिरी पर चढो
ले अहिंसा-शस्त्र आगे ही बढो[1] ।

वस्तुत: द्विवेदीयुगीन कविता में गांधी जी के विचारों एवं सिद्धांतों का समुचित विकास हुआ है ।

छायावाद युग में गांधी विचारधारा का प्रभाव अधिक व्यापक हो गया । गांधीविचारधारा के प्रभाव स्वरूप छायावाद युग की राष्ट्रीय भावना ने विश्व मानवता वाद की भूमिका को ग्रहण किया । गांधीजी के दर्शन से इस युग की राष्ट्रीयता अधिक गहरी और गंभीर होती गयी । इस पृष्ठभूमि में कवि सोहनलाल द्विवेदी का प्रवेश होता है जो गांधी दर्शन से प्रभावित साहित्य एवं साहित्यकारों के सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक घटना है ।

सोहनलाल द्विवेदी और गांधी विचार धारा

सोहनलाल द्विवेदी द्विवेदीयुग में आए, छायावाद युग में पले, प्रगतियुग में लिखे किन्तु रहे गांधीयुग के कवि । गांधीयुग से तात्पर्य है उनके काव्य में गांधीयुगीन भावना एवं चिंतन का अधिकाधिक समावेश । उनकी दूसरी विशेषता है गांधीयुगीन सादगी एवं शालीनता का निष्पक्ष स्वीकार । इस सन्दर्भ में हरिभाऊ उपाध्याय का मत द्रष्टव्य है :- "द्विवेदी जी का कवि युग के प्रति वफादार हैं । जो कवि अपने आपके प्रति सच्चा रहता है वह सबके प्रति सच्चा रह सकता है । सोहनलाल जी को मैं युग कवि मानता हूं । गांधीजी ने युग की आत्मा को प्रकाशित किया इसलिए वे युगावतार हैं । सोहनलाल जी ने युग के स्वर में स्वर मिलाया है अत: वे युग कवि हुए । गांधीवाद में बाह्य कम आन्तर अधिक है,

---

1. हिम किरीटिनी - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ.67

वह साधना चाहता है, सामापूरी नहीं । वाणी नहीं, मौन उनके ज्यादा निकट है । सोहनलाल जी ने जितने गांधी प्रभाव को ग्रहणकिया है उतना ज्यादा प्रकाश को नहीं[1] । गांधीजी के आदर्शों को उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उतारा है[2] । अत: वे सच्चे अर्थ में गांधीवादी हैं । उनका रचना व्यक्तित्व भी इसी आदर्शवादी परिवेश में विकसित हुआ दीखता है । द्विवेदीजी के जीवन पर गांधी जी की देश-सेवा की भावना और सद् साहित्य सृजन का विशिष्ट प्रभाव विद्यमान है । उनकी कविताओं में गांधीविचार धारा के तात्त्विक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का प्रभाव परिलक्षित होता है । फिर भी कवि गांधीजी की विराटता को अपनी वाणी में समेटने में असमर्थ समझते हैं । गांधी जी के व्यक्तित्व से वे इतना अभिभूत हो जाते हैं कि उनकी भाषा मौन हो जाती है -

किस भाषा में करूं आज मैं
देव तुम्हारा वंदन ?
शब्द नहीं कर पाते हैं
समुचित सम्मान तुम्हारा,

---

1. भैरवी की सम्मतियां - हरिभाऊ उपाध्याय

2. अपने विवाह के समय में भी द्विवेदी जी खादी का वस्त्र पहनते थे । उनका अग्रज मोहनलाल ने भाई के विवाह केलिए कीमती रेशमी वस्त्र खरीदे । किंतु सोहनलाल द्विवेदी ने राजसी पोशाक पहनने से इनकार कर दिए । उन्होंने अपने जिद्द पर अड़ा था - गांधीजी विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर रहे हैं । होली जला रहे हैं । ये विदेशी वस्त्र हमारी पराधीनता के प्रतीक हैं । आज जब हमारे हजारों देशवासी फटे - पिथडे पहने घूम रहे हैं तो हम रेशमी और जरी पर के वस्त्र पहनने के अधिकारी नहीं । चाहे विवाह हो या राष्ट्रीय संस्कार कपडे वही पहनने चाहिए जिनमें अपनेपन का अभिमान हो । मैं अपने लिए खादी का वस्त्र लाया हूं वही पहनूंगा । आप लोग क्षमा करें -

"काव्य के इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी" - अमर बहादुरसिंह अमरेश

- पृ.10

भाव मूक हो जाते हैं
गाते गुण गान तुम्हारा,
छन्द मन्द पड़ जाते हैं
रुक जाती है स्वर धारा
उठ उठकर रुक रुक जाता,
मेरी, वीणा का कंपन[1]।

गांधीविचारधारा से प्रभावित द्विवेदी जी की रचनाओं को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

गांधी पर लिखी कविताएं

इसके अन्तर्गत गांधीजी के बाह्य और आन्तरिक स्वरूप का वर्णन, उनके महत्त्व का गुणगान आदि पर लिखी कविताएं आती है। द्विवेदी जी ने गांधी पर अनेक कविताएं लिखी हैं। जैसे "युगाधार" के बापू के प्रति, रेखाचित्र, बापू, गांधी, सेवाग्राम की आत्मकथा, सेवाग्राम, बेतवा का सत्याग्रह। "गांधायन" संकलन की युगावतार गांधी, वह आया, दांडी यात्रा, सेगांव का सन्त, अर्ध-नग्न, उपवास, व्रत समाप्ति, नोआखाली में गांधी, वज्रपात, राष्ट्रदेवता, श्रीद्धांजलि और "चेतना" संकलन की महानिर्वाण, श्रद्धांजलि और मुक्ति गंधा संकलन की गांधी दर्शन, संकल्प आदि रचनाएं इस कोटि में आती हैं।

गांधीजी को चरित नायक के रूप में अंकित करते हुए उनके बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्त्व का रूपांकन "रेखा चित्र" में (उभारा) किया है।

---

1. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰7

उन्नत ललाट पर चिंता की
कतिपय रेखाएं लिए हुए,
विस्तृत भौहें, विशाल नेत्रों में
ममता का मधु पिए हुए,
xx xx xx
अनमोल सृष्टि की रचना यह
दो अक्षर में हो गयी बद्ध,
बापू के लघु संबोधन में
सारा रहस्य युग का निबद्ध ।[1]

यहाँ कवि चरित नायक गांधी के विराट व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं । बापू कविता में युद्धवीर बापू के अहिंसक शक्ति की ओर संकेत है -

युग-युग का तमस फटता है
नव प्रकाश प्राणों में भरता,
युद्धवीर बापू वह आया
कोटि कोटि चरणों को धरता[2] ।

चरित पुरुष गांधीजी ने सत्य और करुणा के द्वारा जननी की परतंत्रता की कड़ियों को उखाड़ फेंक दिया । उपर्युक्त कविता में गांधीजी की उस शक्ति की ओर संकेत करते हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में द्विवेदी गांधी जी के विराट व्यक्तित्व की ओर ध्यान खींच लेते हैं -

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी
2. वही - पृ. 6-7

चल पडे जिधर दो डगमग में
चल पडे कोटि पग उसी ओर
पड गयी जिधर भी एक दृष्टि
गड गए कोटि दृग उसी ओर ।[1]

ये पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य की ही नहीं विश्व साहित्य की चीज़ है । गांधीजी के व्यापक व्यक्तित्व को कवि ने चार पंक्तियों के गागर में सागर भर दिया है । ऐसे विराट प्रभाववाले व्यक्तित्व को कवि युग परिवर्तक, युग संस्थापक, युग संचालक, युगाधार, युग निर्माता, युग मूर्ति आदि रूपों में दर्शाते हैं । "राष्ट्रदेवता" शीर्षक कविता में कवि ने बापू को एक ऐसे राष्ट्रदेवता के रूप में स्वीकार किया है जो सत्य और अहिंसा से सुसज्जित चक्रोंवाले रथ पर बैठे[2] हैं । उन्होंने एक बार ही नहीं अनेक बार जलती हुई जाति के संकट को अपनी बलि देकर दूर किया, स्वयं बलिदान होकर विश्व के प्राणों को अभयदान दिया, और जब जब उपवास किया तब तब बल से ही अपितु तप से इतिहास ही बदल दिया । ऐसे महान चरित नायक की वीर कथा लिखने में कौन समर्थ हुआ है ?

लिखे तुम्हारी कथा कौन जो
तुम सा महत बड़ा हो,
जो तुम सा ही ज्वाला-गिरि के
मुख पर हुआ खड़ा हो,
पल पल महाकाल से आगे
बढ़ बढ़ मगन मड़ा हो ।[2]

---

1. गान्धायन - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.14
2. वही - पृ.101-102

दुबले पतले गांधीजी में कितनी अपरिमित शक्ति थी उसको कवि स्वीकार करते हैं -

> हैं मुट्ठी भर हड्डीयाँ बने ही, कह लो तुम इसको शरीर ।
> संसार कांपता चलता है, यह भारत का नंगा फकीर ।[1]

राष्ट्रपिता गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कवि ने जो चित्र अंकित किया है, वह अत्यन्त मनोरम है -

> जिसका पावन आदेश लिए, देवों का अनुपम वेश लिए,
> यह कौन चला जाता पथ पर, नवयुग का नव संदेश लिए ?
> xx xx xx xx xx
> साम्राज्यवाद के दुर्ग ढहे
> शासन सत्ता के गर्त बहे
> जन सत्ता है जग पड़ी आज जिसका वरदान विशेष लिए ।
> xx xx xx
> वह मलय पवन, वह है गांधी
> वह मन मोहन वह है गांधी
> झुकता हिमाद्री जिसके पद-तल अपना गौरव निशेष लिए
> वह आज चला जाता पथ पर, नवयुग का नव संदेश लिए ।[2]

कवि का यह श्रद्धाभाव देश के नर नारियों में बन्धन-मुक्त होने की अदम्य लालसा उत्पन्न करने वाला है । "बापू के प्रति", "युगपात", "मीरांजना", "महानिर्वाण", 'श्रद्धांजलि' आदि कविताओं में गांधीजी को आराध्य पुरुष के रूप में

---

1. जय गांधी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.299
2. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.44-46

ग्रहण किया है । 'बापू के प्रति' कविता में गांधी जी को सत्य, अहिंसा, करुणा, समता, ममता एवं सत्संस्कृति के सत्र निधान के रूप में बताते हुए उसे अपना आराध्य पुरुष बना लिया है । "अमर्त्य संघर्ष" शीर्षक कविता में कवि विश्व वंद्य बापू पर नव अर्चना चढ़ाते हैं -

देवता नवराष्ट्र के नव राष्ट्र की नव अर्चना लो
विश्व वंद्य वरेण्य बापू । विश्व की नतवन्दना लो ।
था तुम्हारा स्नेह धागा,
यह अभागा देश जागा ।
जागरण के देवता, नव जागरण की गर्जना लो,
यह तुम्हारी ही तपस्या,
युगों की सुलझी समस्या
कोटि शीशों की अयाचित नत-समर्पण साधना लो[1] ।

यों द्विवेदी जी की रचनाओं में गांधी स्तवन का अनेक रूप उपलब्ध होता है ।

गांधीजी के दृष्टिकोण पर आधारित कविताएं

सत्य पर अटल विश्वास

गांधी विचारधारा का मूल मंत्र है सत्य । गांधीजी के लिए सत्य एक जीवित आदर्श है । गांधी जी का कथन है कि सत्य के बिना दूसरी किसी चीज़ की हस्ती ही नहीं[2] । सत्य के साक्षात्कार के लिए वे अहिंसा की साधना

---

1. गान्धायन - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.103
2. गांधी साहित्य - भाग - 5 - पृ.198

अनिवार्य मानते हैं । सत्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि अहिंसा को मैं जितना पहचान सका हूँ उसकी निस्बत मैं सत्य को अधिक पहचानता हूँ, ऐसा मेरा ख्याल है । और यदि मैं सत्य को छोड़ दूं तो अहिंसा की बड़ी उलझने मैं कभी न सुलझा सकूंगा ।[1] गांधीजी के अनुसार सत्य की अनुभूति केलिए मनुष्य जीवन का नीतिमय होना अनिवार्य है । गांधीजी के सत्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए मोहनलाल द्विवेदी ने इस प्रकार लिखा है कि -

प्रातस्मरामि वह आत्म-तत्व,
सच्चित्सुख जिसका है महत्व
हम उसी ब्रह्म के शुद्ध सत्व,
केवल न धूलिकणा में
उषा के मधुमय अंचल में ।
छाती है उर में महाशान्ति,
हटती है उर की महाभ्रान्ति
कटती युग युग की चिर भ्रान्ति[2] ।

मानव का कल्याण इसी में है कि वह सत्य के आदेशों का पालन करे और सत्य की स्थापना में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दे । इसलिए द्विवेदी जी कहते हैं कि विश्व में स्नेह की सुधा बरसाने केलिए सत्य और अहिंसा का वरण करो -

बलि हो जाओ स्वयं नहीं
अब मानव का बलिदान करो ।
करो सत्य का वरण अहिंसा
के पथ पर, प्रस्थान करो ।

---

1. आत्मकथा - पृ.506-507
2. गांधायन - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.61-62

तुम भी मृत्युंजय हो मानव,
तुम महात्मा की आत्मा ।
स्नेह सुधा बरसाओ जग में,
हसि धरा में परमात्मा ।[1]

गांधीजी की "दांडी-यात्रा" के सम्बन्ध में लिखी कविता इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है । अंग्रेजी राज्य के दूतों के अन्याय का अंत करने केलिए बापू ने रण-प्रण ठाना । "दांडी यात्रा" में कवि इस ओर संकेत करते हैं -

बरसाने की आ गई याद
सरसाने की उस यात्रा में
हो गया ध्वंस साम्राज्य बीज
जब लवण बना मधु माया में
नव युग का नव आरम्भ हुआ
कुछ नए नमक के टुकड़ों पर
आज़ादी का इतिहास लिखा
दांडीके कंकड़-पथरों पर ।[2]

"नोआखाली में गांधी" शीर्षक कविता में गांधीजी के सत्य और अहिंसा की जय यात्रा की ओर संकेत करते हैं -

यहाँ घाव है, वहाँ घाव है, कहाँ न पीड़ा प्राणों में ?
भीष्म बना अंगार पड़ा है, आज विष बुझे बाणों में ?

1• गांधायन - सोहनलाल द्विवेदी - 92
2• वही - पृ•49

अब तक दीख रहा है भीगा, शोणित से माँ का अंचल
तू निर्भीक बढ़ा जाता है, अपने प्रण में अडिग अचल ।
विधवाओं के पुछे हुए, सिन्दूर न अब देखे जाते,
इतने आँसू बहे, न अब तेरे दृग में आँसू आते[1] ।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने सत्य की महिमा को अपनी रचनाओं में स्वर दिया है ।

अहिंसात्मक दृष्टिकोण

अहिंसा गांधी दर्शन की आत्मा है । उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत रूप में सत्य और अहिंसा की साधना द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है और सामूहिक रूप से इन गुणों की साधना द्वारा मनुष्य-समाज में रामराज्य की की स्थापना हो सकती है[2] । उन्होंने कहा है कि सत्यमय होने केलिए अहिंसा ही एक मार्ग है, अथवा सत्य रूपी सूर्य का संपूर्ण दर्शन संपूर्ण अहिंसा के बिना असम्भव है[3] । गांधी विचारधारा की उदात्त प्रेरणा हिंसा से अहिंसा की ओर विकास है । "अहिंसा अवतरण" शीर्षक कविता में द्विवेदी जीने अहिंसा के आविर्भाव का कारण हिंसा का अतिरेक बताया है -

महाक्रान्ति हुंकार लिए जब करती नर-संहार
रक्तधार में उतारने लगता समस्त संसार,
सहम जाते हैं बढ़ विचार, तभी मैं लेती हूँ अवतार ।
:: :: :: ::

---

1. गान्धायन - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.85
2. अहिंसा-दर्शन - बलभद्रजैन - पृ.59
3. गांधीमार्ग - जुलाई 1968 - पृ.193

मैं अपने शीतल अंचल में,
लेकर अमला मोद,
चन्दन का अनुलेपन करती,
खिलते सुख के कोष,
न आती फिर दुःख भरी पुकार।[1]

कवि कहते हैं कि अहिंसा का जन्म ही मानव को सुख पहुंचाने के हेतु है। उपर्युक्त कविता में कवि ने अहिंसा की उपयोगिता की ओर भी संकेत किया है। "सेवा का सत्याग्रह" शीर्षक कविता में अहिंसा साधना के व्यावहारिक प्रयोग का सरल वर्णन किया गया है। वे मानते हैं कि यदि स्वातंत्र्य संग्राम में हिंसा का प्रयोग किया गया होता, तो देश हिंसा और प्रतिहिंसा की ज्वालाओं में कभी भस्मीभूत हो गया होता। कवि की मान्यता है कि अहिंसा ने ही मानव को बारंबार परास्त और विनष्ट होने से बचाया। कहता है कि विप्लव की अग्निधारा में जब वह अवगाहन करता है यह गाते हुए कि -

रवि गिरने दे शशि गिरने दे, गिरने दे तारक सारे
अचल हिमाचल चल होने दे जलधि खोलकर फुंकारें,
खंड खंड भूखंड खंड ब्रह्माण्ड पिंड नभ में डोलें
मेरे मृत्युंजय की टोली जब माँ की जय जय बोलें।[2]

तब इसके साथ ही तथागत पर उसकी दृष्टि स्थिर हो जाती है यह कह कर कि -

---

1. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी - पृ०163
2. भैरवी - पृ०130

मानव से दानव धरास्य, भर रहे रक्त से समरकूप,
दुबली धरा को लो उबार ! आओ फिर से कल्कावतार[1] ।

रक्तपात रहित क्रान्ति ही विश्व कल्याण केलिए उपयोगी है । परंतु यह तभी संभव है जब मनुष्य अहिंसा के मर्म को समझ लें -

एकता सब धर्मों का धर्म
अहिंसा हो जीवन का मर्म
सत्य की सेवा हो सत्कर्म
विश्व में हो मंगल कल्याण[2] ।

प्रार्थना की उपादेयता

गांधीजी अपने जीवन में प्रार्थना को अधिक महत्व देते थे । उनकी दृष्टि में प्रार्थना याचना नहीं है वह हमारी आकांक्षा का दूसरा नाम है । गांधी जी कहते हैं - मेरे पास एक रामनाम के सिवा और कोई ताकत नहीं है । वही एक आसरा है । असह्य वेदना में दु:खित आदमी को मैं कहता हूँ रामनाम लो[3] । गांधीजी का "राम" संपूर्ण सत्य का पर्याय है । सत्य रूप बनने की तीव्र इच्छा करना, उसकेलिए भगवान से विनती करना प्रार्थना है[4] । सोहनलाल द्विवेदी को प्रार्थना की उपादेयता में बड़ी आस्था है । प्रार्थना का उद्देश्य कभी कभी व्यक्तिगत होता है तो कभी कभी समष्टिगत । जो राम को भूलकर, अपने धर्म को भूलकर, पथ भ्रष्ट हो गया है, उसको राह दिखाने केलिए कवि ईश्वर की प्रार्थना करते हैं.-

---

1. भैरवी - पृ.37
2. पूजागीत पृ.89
3. हिन्दी नवजीवन - 28.9.24
4. गांधी विचार दोहन - पृ.22

उनको भी सद्बुद्धि राम दो, भूले है जो नाम तुम्हारा,
भूले है जो ग्राम तुम्हारा, उनको भी श्रद्धा अकाम दो ।
आत्मा भूले उनके काया में भटक रहे मिथ्या माया में,
उनको भी गति मति प्रकाश दो[1] ।

व्रत और उपवास का महत्व

गांधी विचार धारा में व्रत को अधिक महत्वपूर्ण स्थान है । गांधी जी का कथन है-"व्रत बन्धन नहीं स्वतंत्रता का द्वार है"[2]। यरवदा जेल में लिखे गए एक लेख में बापू ने व्रतों का विभाजन करते हुए लिखा है, सभी व्रत सत्य के गर्भ में स्थित हैं । वे इस प्रकार दिखाए जा सकते हैं - ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय[3] । ये पांच व्रत अहिंसा के उपासक केलिए आवश्यक हैं । जिस प्रकार अहिंसा के बिना सत्य की सिद्धि संभव नहीं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के बिना सत्य और अहिंसा दोनों की सिद्धि असंभव है[4] । गांधीजी के अनुसार मन, वचन और कर्म से इन्द्रियों का दमन ही ब्रह्मचर्य है[5] । गांधीजी के साथ साथ द्विवेदी जी ने भी ब्रह्मचर्य के पालन का आदेश दिया है । ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले ही अपने कर्तव्य का दृढतापूर्वक पालन कर सकता है । द्विवेदी जी कहते हैं,जिस समय देश में संकट की काली घटाएं उमड रही हों समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता हो उस समय ऐसे ही युवकों की आवश्यकता है जो ब्रह्मचारी हों -

ब्रह्मचर्य से मुख मंडल पर
चमक रहा हो तेज अपरिमित,

---

1. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.224
2. आत्मकथा - पृ.178
3. गांधीवाणी से उद्धृत -
4. गांधीविचार दोहन - पृ.9

जिनका हो सुगठित शरीर
दृढ भुज दंडों में बल हो शोभित,
जिनका हो उन्नत ललाट
हो निर्मल दृष्टि ज्ञान से विकसित
उर में हो उत्साह उज्ज्वलित
साहस शक्ति शौर्य हो संचित
हमको ऐसे युवक चाहिए[1]।

गांधी विचारधारा का एक अनिवार्य अंग है अपरिग्रह । यह प्रेम का निष्कर्ष है और इसका अर्थ है पूर्ण त्याग । किसी चीज़ की अनिवार्य आवश्यकता न होने पर व्यर्थ में न संचय करना अपरिग्रह है । गांधी जी का दृढ विश्वास है कि "यदि हम इस [कला की सिद्धि] के लिए प्रयत्नशील हों, तो हम संसार में समता की स्थापना में किसी भी दूसरी पद्धति की अपेक्षा आगे अधिक बढ सकेंगे[2] । मनुष्य को उतना धन संचय करना चाहिए जितना उसकेलिए आवश्यक हो, अर्थात् मानव जीवन में त्याग की भावना आवश्यक है । अपरिग्रह की कामना तथा पर दु:ख कातरता को वाणी देते हुए द्विवेदी जी युवकों से आशा करते हैं -

रस विलास के रहें न लोलुप जिन में हो विराग विभव का
अतुल त्याग हो जिनका देश हित जिन्हें गर्व हो निज गौरव का[3] ।

देश के कल्याण केलिए सेवाव्रती की आवश्यकता है। द्विवेदी जी ऐसे ही युवकों की मांग करते हैं ।

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰44
2. मार्डन रिव्यू - 1935 अक्तूबर - एन॰के॰ बासु का लेख [अरविन्द जोशी से उद्धृत]
3. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ॰45

सेवा व्रत में जो है दीक्षित दीन दुःखी के दुःख से कातर
पर संताप दूर करने को व्याकुल रहता हो जिसका अन्तर ।
बने देश का हित वैरागी जो अपना घरबार छोड़कर
हम को ऐसे युवक चाहिए मारें देश का संकट हर[1] ।

सेवाभाव और अपरिग्रह का अंगीकार करके गांधी जी का अनुयायी अर्थात् सत्याग्रही बन सकता है ।

गांधी चिन्तन में अभय का महत्वपूर्ण स्थान है । जो मनुष्य अपने मन के विकारों के अलावा दूसरी आपत्तियों से डरता है, वह अहिंसा का पालन नहीं कर सकता । वास्तव में सत्य तथा अहिंसा के विकास केलिए अभय अनिवार्य है । गांधीजी का विश्वास है कि 'सचमुच वह महान राष्ट्र है जहाँ के लोग मौत की तकिए पर अपना सिर टिकते हैं । जिसने मौत का डर छोड़ दिया है, उसे फिर कोई डर नहीं रहता है[2] । इसलिए धर्म क्षेत्र से मुंह चुराना सबसे बड़ी कायरता है । सोहनलाल द्विवेदी कहते हैं -

वीर व्रति है डटे समर में, भीरु वे जो भगकर चोंके,
अपने तन का मोह जिसे हो उसको रण का क्या आकर्षण ?
हम रण का कंगन पहने हैं, मरण हमें त्योहार पर्व है ।
पुरुष पराक्रम दिखलाते हैं क्रम विक्रम का जहाँ गर्व है[3] ।

इसलिए सत्य के पथ पर चलने केलिए पहली शर्त निर्भयता से प्रयाण है । सत्याग्रहियों से गांधीजी का आदेश है कि वे वीरतापूर्वक अधरों पर मुस्कान लिए अपने को बलि देते हुए गन्तव्य की ओर बढ़ें ।

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.45
2. वही
3. हिन्दी स्वराज्य - पृ.255

हम तो हैं इसके मतवाले
बलि पथ पर जो रक्त बहाते
विजय मिले या मिले पराजय
अपने शीशदान कर जाते ।[1]

आत्मसमर्पण सत्याग्रही का सबसे बड़ा गुण है । यह भावना द्विवेदी-जी की कविताओं में ओजस्वी रूप में अभिव्यक्त हुई है ।

धधक रही है यज्ञ कुण्ड में,
आत्माहुति की ज्वाला ।
होता मन्द न पड़े हुताशन
नव नव अभिनव आहुतियाँ डालो,
हो सहोम तन-मन-धन जीवन
अपने नर मुण्डों की माला
उठे लपट झुलसे गगनांगन
फटे कुहरा का उजियाला ।[2]

<u>सांप्रदायिकता के विरुद्ध</u>

गांधीजी के अनुसार समाज की स्थापना का आधार समानता की भूमि है । उनकी रामराज्य की कल्पना इसका आदर्श रूप है । अहिंसा की नींव पर एक सुन्दर समाज की स्थापना करना उनका ध्येय था । आदर्श भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा था, "मैं एक ऐसे विधान के निमित्त चेष्टा करूँगा

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.33
2. वही - पृ.97

जो भारत को हर तरह की गुलामी व पृकुता से मुक्त करेगी और जरूरत पड़ने पर उसे अपराध करने का अधिकार रहेगा, जिसे गरीब से गरीब अपना देश समझेगा.... जहाँ पर सब जातियों के लोग मिल जुल कर रह सकेंगी । ऐसे भारत में अस्पृश्यता तथा मादक द्रव्यों जैसे अभिशाप केलिए कोई स्थान नहीं रहेगा । स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान होंगे, चूंकि शेष विश्व के साथ न हम भिन्न भाव से रहेंगे न तो किसी का शोषण करेंगे । अत: हमें कम से कम सेना की आवश्यकता होगी[1] । वस्तुत: भारत सब की जन्म भूमि है और इस नाते मुसलमान, सिख, ईसाई सब भाई-भाई हैं । द्विवेदीजी आपसी भाई-चारा स्थापित करने का आदेश देते हुए लिखते हैं -

हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख ईसाई,
क्या न सभी है भाई-भाई
जन्मभूमि है सब की माई[2] ।

साम्प्रदायिकता के नाम पर देश में होनेवाले अनर्थों से गांधीजी अत्यन्त दु:खी थे । उनका दु:ख तब और बढ़ जाता था जब धर्म के नाम पर लोग खून बहाने केलिए तैयार हो जाते थे । कवियों ने भी इसी बुराई पर कलम चलाई है । उन्होंने जनता को जातीय अनैतिकता के दुष्परिणामों से अवगत किया उसे जातीय संगठन का सन्देश दिया । "युगाधार" के कवि देश के हिन्दू-मुसलमान दोनों से निवेदन करता है कि वे अपने को पहचानें और देश को बचा लें -

मेरे हिन्दू और मुसलमान, रे अपने को पहचान ।
हम लड़ते जाते हैं आपस में, मन्दिर, मस्जिद है ढह जाती

1· मेरे सपनों का भारत - गांधी - पृ·6
2· सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·168

हम गड़ जाते हैं धरती में मन्दिर-मस्जिद है गड़ जाती ।
मन्दिर मस्जिद से ऊपर हम हैं अपने को पहचान जान ।
हम यवन बताते हैं तुम को तब यवन बताते है पुराण,
तुम काफिर कहते हो हम को तब काफिर कहती है कुरान ।[1]

नारी उद्धार की भावना

गांधी विचारधारा में नारी-उद्धार की भावना का अत्यधिक महत्व है । प्राचीन भारत में स्त्रियों का बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान था । किन्तु मुगलों के शासन काल में मुसलमानों की वासनापूर्ण दृष्टि के आगे स्त्री का स्त्रीत्व सुरक्षित नहीं रहा । शिक्षा स्वास्थ्य और बहुत से अधिकारों से वंचित नारी का जीवन अत्यन्त ही दुःखमय हो गया । वह अज्ञान के अन्धकूप में गिरी जा रही थी । नारी की इसी गिरी हुई दशा को देखकर गांधीजी चिन्तित हुए । उन्होंने सामाजिक सुधारों में नारी उद्धार को प्राथमिकता दी । बापू की दृष्टि में नारीशील और सद्गुणों की मूर्ति होनी चाहिए[2] । उन्होंने अपने प्रिय को रणक्षेत्र में हंसते हंसते विदा देना चाहिए । उनका उत्साह बढ़ाना, उन्हें शक्ति देना उनका कर्तव्य है ।

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.114-115

2. He calls upon women to demand and inspire respect by ceasing to think of themselves as the objects of masculine desire only. Yet them forget their bodies and enter into public life assume risks, and suffer the consequences of their convictions. Women should not only renounce luxuary and throw a way or burn foreign goods, but they should also share mens problems and privations.
Mahatma Gandhi - Romian Rollandy, p.70

इस विचार को वाणी देते हुए द्विवेदी जी कहते हैं -

प्राण दो तुम भाल चन्दन
शिक्षा दो हो मातृवन्दन
शक्ति दो तुम भक्ति जागे,
मुक्ति पथ पर सिर चढाऊं
आज रण की ओर जाऊं[1] ।

अस्पृश्यता निवारण तथा हरिजनोद्धार

गांधीजी का मत है कि समाज में फैली छुआछूत भयंकर हिंसा वृत्ति है । अहिंसा के पुजारी ~~और~~ सत्याग्रहियों से उनका आदेश था कि वे हरिजनों को गले लगाएं । वे कहते हैं - अस्पृश्यता रूपी राक्षसी का नाश करने के प्रयत्न में मेरी अपनी हार्दिक कामना केवल यही नहीं है कि मानव मात्र में भ्रातृभाव स्थापित किया जाय-भले वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, पारसी हो या यहूदी हो[2] । अस्पृश्यता का भाव इतना गहरा चला गया है कि उसका जहर हमारी रगरग में घुस गया है । ब्राह्मण अब्राह्मण के भेद भाव की जड़ अस्पृश्यता में ही है । अस्पृश्यता का यह जहर क्यों रहना चाहिए[3] । गांधीजी के हरिजनोद्धार संबन्धी विचारों को द्विवेदी जी ने प्रार्थना नामक काव्य में व्यक्त किया है । उन्होंने अछूत तथा शूद्र कहे जानेवाले समाज के अंग को उठाकर मानव कोटि में लाने का प्रयत्न किया ।

1· पूजागीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·47
2· हरिजन सेवक - पृ·2
3· वही - 1934

खोलो मन्दिर द्वार पुजारी
मत ठुकराओ चरण धूलि
हूँ बार बार जाऊँ बलिहारी
क्यों तुमने शबरी निषाद की
अपने मन से बात बिसारी ?
मैं भी एक उन्हीं के कुल का,
प्रभु पद पूजन का अधिकारी ।[1]

ग्रामसेवा तथा ग्रामोन्नति की भावना

ग्रामसेवा और ग्रामोद्योग गांधी की समाज रचना की प्रमुख प्रवृत्ति है । ग्राम्य संस्कृति और ग्राम्य सभ्यता को ही वे अहिंसक सभ्यता समझते हैं । ग्रामों के महादेश भारत वर्ष के ग्रामों की ओर सब से पहले उन्होंने ही राजनीतिज्ञों का ध्येय ध्यान आकृष्ट किया । गांधीजी के ग्राम्यवाद के प्रति द्विवेदी जी की अतुलित श्रद्धा प्रवाहित हुई । उन्होंने किसान को जन-शक्ति के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया । किसानों की शक्ति का परिचय देते हुए वे लिखते हैं -

ये उच्च शिखर पर ध्वज निशान ड्योढ़ी पर शहनाई सुतान,
वह तेरी दौलत पर किसान ! वह तेरी मेहनत पर किसान
वह तेरी हिम्मत पर किसान ! वह तेरी ताकत पर किसान ।[2]

गांधीजी के ग्रामोद्धार के कार्यक्रमों में अनेक योग देते हुए सोहनलाल द्विवेदी ने ग्रामीणों की दुर्दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है ।

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 93
2. वही

हड्डी-हड्डी पसली-पसली निकली है जन की एक-एक
पढ़ लो मानव, किस दानव ने ये नरहत्या के लेख लिखे ।
पी गया रक्त, खा गया मांस रे कौन स्वार्थी के दावों ।[1]

कृषक वर्ग के लिए तो पग-पग पर संकट है । पग-पग पर अत्याचारों का डेरा है । उसकी सूनी आँखों में उसकी मुसीबतों की छाया दिखाई पड़ती है -

आओ नवजीवन के प्रभात,
आओ नवजीवन की किरणें ।
इन ग्रामों का भी भाग्य जगे
ये भी भी चरणों की शरणें ।[2]

गांधीजी की वाणी में स्वर जोड़कर द्विवेदी कहते हैं कि सच्चा भारत तो ग्रामों में बसा है -

पुरई पाखों खपरैलों में
रधिया रमुआ के भावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में ।[3]

कवि ने सेगाँव [सेवाग्राम] को जिस प्रकार एक आदर्श ग्राम बना दिखाया था - कवि की आकांक्षा है कि सभी गाँव वैसे ही बन जाए -

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.15
2. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी-पृ.44
3. वही

से गांव बने सब गांव आज हम में से मोहन बने एक,
उजड़ा वृन्दावन बस जावे फिर सुख की बंसी बने नेक
गूंजें स्वतंत्रता की तानें गंगा के मधुर बहावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ वह बसा हमारे गांवों में।[1]

यों द्विवेदी ने देशवासियों को गांधीजी के सदृश ग्रामों में जाकर कृषकों के कल्याण की ओर प्रेरित किया। गांधीजी ने देश की समृद्धि का मेरुदण्ड ही किसान को कहा है। किसान सभी का पोषक है। द्विवेदी जी ने किसानों को जागरण का सन्देश दिया है। जिस के पसीने के बल पर धनियों के रंग महल, जलसा, महफिल सब का पोषण हो वही अपने किसान की कुटिया गिने यह कैसी विधि की विडम्बना है? देश की दशा पर दृष्टिपात करते हुए किसान यदि कबीर या मसीह का सिद्धान्त अपना ले तो स्वतंत्रता और सुख ला सकता है। इस संबन्ध में कवि कहते हैं कि -

लख जननी का मुख आज म्लान तक तेरा ही धर रही ध्यान
तेरा लोहा जो सके मान, किसमें इतना बल है महान
रे मर मिटने की ठान-ठान हो स्वतंत्रता का शुभ विहान।
गूंजे दिशि-दिशि में एक तान जय जन्मभूमि जय जय किसान।[2]

एक आदर्श ग्राम का निर्माण कर किसानों की सेवा करने की आकांक्षा उनके अन्तस्तल में बिजली की तरह कौंध करती थी -

ये ज्वार विभव वैभव सौध से भाग रहे हैं कमला मन,
मैं यथा सोचूं ये कुटियाँ आ रहा ग्राम का आमन्त्रण।[3]

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 16
2. वही
3. सेवाग्राम - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 144

उन्होंनेकिसानों केलिए ग्राम को शक्ति केन्द्र प्रेरणा केन्द्र, अर्चना केन्द्र और साधना केन्द्र के रूप में विकसित किया ।

चरखे और खादी की महिमा की गूंज

गांधीजी चरखे और खादी को अधिक महत्व देते थे । उनके अर्थशास्त्र में चरखा और खादी अहिंसक उद्योगवाद का प्रतीक हैं । "चरखा अर्थ स्वावलम्बन का स्तम्भ और ग्रामोद्योगों का सूर्य है । उसका एक एक सूत शोषित, पीड़ित ग्रामीण जनता के श्वास में बंधा हुआ है[1] । उनकेलिए चरखा करोडों मूक लोगों के साथ एकता स्थापित करने का एक प्रतीक और साधन था । चरखे के साथ साथ खादी की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है । खादी के सम्बन्ध में द्विवेदी जी का संकल्प है - वह टाट पट्टी जैसी खादी भी हमारा राष्ट्रीय परिधान है । खद्दर पहनने का अर्थ है खादी की सेना का सिपाही बनना[2] । द्विवेदी ने खादी के तत्व दर्शन की काव्यमय अभिव्यक्तियाँ की है -

खादी के धागे धागे में अपनेपन का अभिमान भरा
माता का इसमें मान भरा अन्यायी का अपमान भरा
" " " "
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध हृदय की दाह छिपी
कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इस में प्यास छिपी[3] ।

---

1. गांधी ग्रन्थ - पृ.100
2. काव्य के बलिदान पुरुष - सोहनलाल द्विवेदी - अमरबहादुरसिंह अमरेश - पृ.10
3. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.6-8

खादी की महत्ता को स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं कि -

खादी ही भर भर देश प्रेम का
प्याला मधुर पिलाएगी
खादी ही दे दे संजीवन
मुर्दों को पुनः जिलाएगी ।
खादी ही भारत से रूठी,
आज़ादी को घर लाएगी ।[1]

सत्याग्रह और समर्पण की भावना

भारत को स्वतंत्र करना गांधी जी का परम लक्ष्य था । इसकेलिए उन्होंने कई योजनाओं का निर्माण किया । उन्होंने सत्य और अहिंसा को स्वतंत्रता प्राप्ति के साधन के रूप में ग्रहण किया । सत्य और अहिंसा का रचनात्मक रूप है सत्याग्रह।सत्याग्रह का लक्ष्य है सर्वोदय । सोहनलाल द्विवेदी ने सत्याग्रह धर्म को सच्चे रूप में हृदयंगम करके कविता में प्रतिष्ठित किया । सत्याग्रह के पथ पर चलनेवाले को "त्याग" का वरण करना अनिवार्य है । वह न्याय का आधार लेकर आगे बढ़ता है । भारतीय जनता में सत्याग्रही के भाव भरने केलिए द्विवेदीजी ने कई वीरोत्तेजक कविताएं लिखी हैं । सत्याग्रही की वीरता का गुण गान करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं -

वीर व्रती हो डटे समर में, भीरु हों खड़े बनकर दर्शक,
अपने तन का मोह जिन्हें हो, उनको रण का क्या आतंक ?
हम रण का कंकण पहने हैं, मरण हमें त्योहार पर्व है ।
पुरुष पराक्रम दिखलाते हैं, बल विक्रम का जहाँ गर्व है ।[2]

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.8-9
2. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.28

गांधीवादी विचारधारा के प्रतिष्ठित कवि सोहनलाल द्विवेदी कहते हैं कि देश को ऐसे युवकों की आवश्यकता है, जो अपने पुरुषार्थ से देश को स्वतंत्र करने की ओर आगे बढ़ते हैं -

हम तो हैं उसके मतवाले,
बलि पथ पर जो रक्त बहाते,
विजय मिले या मिले पराजय,
अपने शीशदान कर जाते[1] ।

देश को स्वतंत्र देखने की अभिलाषी सत्याग्रहीवीर विजय का मोल चुकाना जानते हैं । मातृभूमि को स्वाधीन करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना उनके लिए सौभाग्य है । आत्म समर्पण की ओजस्वी भावना द्विवेदी की रचनाओं में परिव्याप्त है -

हम मातृभूमि के सैनिक हैं,
आज़ादी के मतवाले हैं
xx xx xx
अब देश प्रेम की रंगत में
रंग गया हमारा यह जीवन
उसके ही लिए समर्पित है
सब कुछ ये तन मन धन[2] ।

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.3।
2. वही - पृ.45
3. वही - पृ.45

स्वतंत्रता के अहिंसक संग्राम में गांधीजी जिस प्रकार के नवयुवक को चाहते थे उसका आदर्श रूप द्विवेदी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

सिर को फूल समझकर जो अर्पित
कर सकते हो चरणों पर,
हम को ऐसे नवयुवक चाहिए[1] ।

इन पंक्तियों में कवि ने सत्याग्रही गांधी जी की आत्मभावना को व्यक्त किया है -

मेरे जीते जी मैं देखूं
तेरे पैरों में कड़ियां ?
xx xx xx
प्राण और प्रण की बाजी का
लगा हुआ है फेरा ।
टूटेंगी तेरी कड़ियां
या उतरेगा सिर मेरा[2] ।

सत्याग्रही के व्रत ग्रहण करने के मूल में देशानुराग और स्वातंत्र्य प्रेम की भावना निहित होती है । इसी भावना का निरूपण करते हुए सोहनलाल द्विवेदी कहते हैं -

सत्याग्रही बने वह जिसका, देश-प्रेम का नाता है ।
प्राणों से भी प्यारी जिसको अपनी भारत माता है ।
प्राण जाय, छोड़ें न प्रण-कभी ऐसी टेक निभाना है ।
स्वतंत्रता की रहन अधर में जिसका भाग्य विधाता है[3] ।

1• युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ•45
2• वही - पृ•61
3• वही - पृ•55

गांधीजी बार बार कहते थे कि साहित्यकार ऐसे साहित्य का निर्माण न करे जो देश के युवकों को गलत रास्ते पर ले जायें। ऐसे गलत रास्ते पर जानेवाले नवयुवकों को सम्बोधित कर कवि कहते हैं -

रूप राशि की दीप शिखा पर, मरनेवाले परवाने।
प्रेम प्रेम मधुर नाम को, रटनेवाले दीवाने।
वह भी क्या है प्रेम न जिसमें छिपी देश की आग रहे।
जन्म भूमि के चरणों में मिट, अमिट तुझे दुनिया जाने[1]।

स्वतंत्र होने के लिए बलिदान की भावना ने गांधीयुग में ही जन्म लिया। इसलिए प्रत्येक भारतीय इस पुकार को सुनकर मृत्यु का वरण करने केलिए तत्पर है -

आज मरण में जीवन जगता,
यों तो जीवन बना भार है,
बलिदानों की होड़ बनें हम
यह सबके मन की पुकार है[2]।

यों द्विवेदी ने गांधी के आदर्शों को आत्मसात करते हुए भारत जननी की सन्तानों में उन आदर्शों की भाव भागीरथी बहा दी। अब गांधी के न रहने पर भी वह देश को पुनः शक्ति, साहस और बल प्रदान करता हुआ स्वयं कृत संकल्प होता s
देखना चाहते हैं

---

1. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.45
2. वही - पृ.62

जो गाँधी ने कहा, उसी की
तिल-तिल पूर्ति करेंगे हम ।
आज राष्ट्र के कण कण को,
गाँधी की मूर्ति करेंगे हम ।

निष्कर्ष

सोहनलाल द्विवेदी ने गाँधीवाद का भावात्मक अथवा सांस्कृतिक स्वरूप को अत्यन्त सरल, सबल और सफल ढंग से काव्य बनाकर जन साहित्य बनाने का स्तुत्य कार्य किया । गाँधी युग के कवियों की रचनाओं का संग्रह गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित कर गाँधी जी के साहित्य पर अपूर्व प्रभाव डाला था। 'बच्चों के बापू' द्वारा कवि ने देश के कोमल किशोरों के हृदय में भी विशिष्ट स्थान बना लिया है । बालकों से लेकर प्रौढ़ों की पीढ़ी को जगाने का इस तरह जो कार्य द्विवेदी ने किया है, किसी भी हिन्दी कवि ने नहीं किया है ।

---

1. सेवाग्राम - पृ.45

अध्याय - चार

सोहनलाल द्विवेदी का बाल-साहित्य

अध्याय - चार

सोहनलाल द्विवेदी का बाल साहित्य

अ· बाल साहित्य-सामान्य परिचय

बहुमुखी एवं बहुआयामी साहित्य के विशाल प्रांगण में बाल साहित्य का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है । कविता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं के विकास के साथ बाल साहित्य का भी विकास होता रहा । समुची साहित्य विधाओं में बाल साहित्य रचे गए हैं ।

बच्चे मानव जगत की अमर थाती हैं । वे राष्ट्र के भावि कर्णधार हैं । सुखी शिशु में ही राष्ट्र की प्रगति निर्भर है । उन्हें अन्न, वस्त्र, न्यूनतम शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यकताएं जुटा देने के साथ साथ उनके बौद्धिक विकास की परितृप्ति केलिए बाल साहित्य का सृजन भी आवश्यक है । बालकों के लिए लिखे जाने पर भी सृजनात्मक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में देखने पर तथा खरी उतरने पर ऐसी रचनायें भी सृजनात्मक प्रतिभा के अन्तर्गत मानी जाएगी । फिर भी बालोपयोगी श्रेष्ठ रचनाएं

किशोरवय बालकों की मानसिक पुष्टि केलिए अपेक्षित है। यह कार्य प्रौढ़ साहित्य नहीं कर सकता।

बाल साहित्य बहुत व्यापक शब्द है। अधिकतर यह तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है। पहला बालकों केलिए लिखा गया साहित्य, दूसरा बालकों के सम्बन्ध में प्रौढ़ों केलिए लिखा गया साहित्य। इसके अन्तर्गत बच्चों के लालन पालन, उनके स्वास्थ्य, उनकी देखरेख, शिक्षा-दीक्षा, वात्सल्य विषयक रचनाएं, लोरियाँ आदि आती हैं। तीसरा बालकों द्वारा लिखा गया साहित्य जिसका कोई स्थायित्व नहीं। क्योंकि इस प्रकार की रचनाएं अपरिपक्व एवं अपरिमार्जित होती हैं। फिर भी बच्चों के विकास का अध्ययन करने केलिए ऐसी रचनाओं का भी महत्व है। वस्तुत: बाल साहित्य से मतलब बच्चों केलिए विशेष रूप से लिखे गए साहित्य से है।

आ. <u>बालसाहित्य-परिभाषा</u>

देश-विदेश के कई आलोचकों ने बाल साहित्य की कई परिभाषाएं दी हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध बालसाहित्यकार श्री निरंकार देव सेवक ने बाल साहित्य की परिभाषा करते हुए अपना विचार यों व्यक्त किया है - "जिस साहित्य में बच्चों का मनोरंजन हो सके, जिसमें वे रस ले सके और जिसके द्वारा वह अपनी भावना और कल्पनाओं का विकास कर सके वह बाल साहित्य है।"[1] इस परिभाषा का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है - बच्चों का मन इतना चंचल और कल्पनाएं इतनी तेज़ होती हैं कि किन्हीं निश्चित नियमों में बंधा हुआ साहित्य उनकेलिए लिखा ही नहीं जा सकता। बड़ों केलिए जो सर्वथा असंगत और अर्थहीन होता है,

---

1. शिक्षा - त्रैमासिक - जनवरी - 1961 - पृ.10
   हिन्दी बालगीतों का एक संकलन निबन्ध से

वह बच्चों केलिए युक्ति संगत और अर्थपूर्ण हो सकता है। बच्चों का साहित्य बड़े ही उन्हें रचकर देते हैं। इसलिए बाल साहित्य की सब से बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक बड़े उनकी [बच्चों की] भावनाओं - कल्पनाओं से पूर्णतः आत्मसात नहीं कर पाते, तब तक उनके लिखे पर उनके अनुभव, ज्ञान तथा जीवनादर्शों की छाप का आ जाना नितान्त स्वाभाविक है। बच्चों की कल्पनाएं और अनुभव बड़ों से सर्वथा भिन्न होते हैं। उनकी दुनिया ही बड़ों की दुनिया से अलग होती है। बड़ों के संसार में जो बहुत महत्व का समझा जाता है, बच्चों की दुनिया में उसका कोई मूल्य नहीं होता। और बच्चों की दुनिया में जो कुछ बहुत महत्व का होता है वह बड़ों की दृष्टि में कोई विशेष महत्व नहीं रखता। इस दृष्टि से बड़ों द्वारा बच्चों केलिए लिखा सारा साहित्य, बच्चों केलिए दूसरी दुनिया के लोगों द्वारा दिया साहित्य होता है। अतएव बच्चों का साहित्य लिखने में वही सफल हो सकता है जो बड़प्पन के भार को रत्ती रत्ती कम कर बच्चों की सरलता, कौतूहल और जिज्ञासा को स्वाभाविक रूप से अपने मन में धारण कर ले। बच्चों के मन की अत्यधिक चंचलता और उनकी कल्पनाओं के असीम प्रतीत होने के कारण बच्चों के स्वभाव जैसा अपना स्वभाव बना लेना, बड़ों केलिए साधारण कार्य नहीं है। इस केलिए निरन्तर अभ्यास और सतत साधना की आवश्यकता है, इसलिए इस कार्य में बड़ों के समाज की बड़ी-बड़ी उलझी समस्याओं में फंसे हुए मनवाले बड़े लोग कम ही सफल हो पाते हैं।[1] लेखक जी की उपरोक्त परिभाषा से यह तथ्य उभर आता है कि बालसाहित्यकार की सफलता की कुंजी बच्चों की रुचि, मनोवृत्ति, भावनाओं और कल्पनाओं में पूरी तरह तल्लीन होने की क्षमता में निर्भर रहती है।

---

1. बाल साहित्य का लक्ष्य और हमारा कर्तव्य - डॉ॰ रामकुमार वर्मा

डॉ॰ रामकुमार वर्मा बाल साहित्य को शुद्ध भारतीयता की कसौटी पर उतारना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में-'बाल साहित्य ऐसा हो जो बच्चों में सहज मानसिक उत्सुकता उत्पन्न करे, उनके कुतूहल का पोषण और प्रवर्धन करे, जिज्ञासा की तृप्ति करे। बाल साहित्य का विषय ऐसा होना चाहिए जिससे बालक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और विश्व कल्याण की भावना से अपना जन-जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले। साहित्यकार के हाथ में ही बालक का भाग्य है। उसे अपनी सामग्री भारतीय इतिहास के उन स्वर्ण पर्वों से लेनी चाहिए, जिनसे भारत का मस्तक आज देदीप्यमान है। भूत-प्रेतों की कहानियाँ स्वस्थ बाल साहित्य का अंग नहीं हैं। हम बाल साहित्य के लिए उन महान कवियों की कृतियों से सामग्री लें जिन्होंने कवि कुल को गरिमा दी। डॉ॰ वर्मा जी ने इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया है कि बाल साहित्य का महत्व राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय भी है। इसके द्वारा उन बालकों को शिक्षा प्राप्त होगी, जो न केवल हमारे देश के कर्णधार हैं, वरन् जिन्हें दूसरे देशों में भारत के प्रतिनिधि के रूपमें काम करना है। हमारे देश की नैतिक परम्पराएं हमें वस्तुवाद से ऊपर उठाती हैं। दर्शन और धर्म यहाँ प्रत्येक श्वास प्रश्वास में है। अतः हमारे साहित्य को भी इन्हीं मान्यताओं पर आधारित होना चाहिए।

यहाँ कविवर सोहनलाल द्विवेदी का कथन भी विशेष उल्लेखनीय है। 'सफल बाल साहित्य वही है जिसे बच्चे सरलता से अपना सकें और भाव ऐसे हों जो बच्चों के मन को भाएं या तो अनेक साहित्यकार बालकों के लिए लिखते रहते हैं, किन्तु सचमुच जो बालकों के मन की बात, बालकों की भाषा में लिख दें, वही सफल बाल साहित्य लेखक हैं।' यानि जिस साहित्य में बच्चों का मनोरंजन हो सके, जिसमें वे रस ले सकें, और जिसके द्वारा वे अपनी भावना और कल्पनाओं का विकास कर सकें वह बाल साहित्य है। वास्तव में बाल साहित्यकार का कार्य साधना का कार्य है।

डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे के शब्दों में -"बाल साहित्य की रचना के मूल आधार वे ही तत्व तथा मनोवैज्ञानिक नियम हैं, जो बच्चों को स्वस्थ मानसिक विचारधारावाला व्यक्ति बनाने केलिए आवश्यक है । बाल साहित्य बच्चों के उन अंकुरों को पुष्ट करती है, जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं[1] । वस्तुत: बाल साहित्यकार को एक सच्चा मनोवैज्ञानिक होना अनिवार्य है ।

बाल साहित्य के बारे में पाश्चात्य विद्वान लिलियन स्मिथ का कथन विशेष स्मरणीय है - यह आवश्यक नहीं है कि बच्चों केलिए लिखी गयी सारी पुस्तकें साहित्य हो और न प्रौढ़ लोगों के बाल साहित्यिक सम्बन्धी धारणाएं बच्चों के अनुकूल ही रहें । ऐसे लोग भी हैं जो प्रौढ विषयों के सरल प्रस्तुतीकरण को ही बाल साहित्य मानते हैं । यह दृष्टिकोण बच्चों को केवल प्रौढ़ों का सूक्ष्म संस्करण मानता है और यह बचपन सम्बन्धी गलत फहमी के कारण उत्पन्न होता है । क्योंकि बच्चे ऐसा एक वर्ग है जिसका जीवनानुभव बड़ों से बिलकुल भिन्न हो । उनका एक अनोखा संसार है जहाँ मूल्य की (सत्य की) अभिव्यक्ति बच्चों की भाषा में होनी चाहिए, न बड़ों के अनुभव के अनुकूल[2] । यहाँ लिलियन स्मिथ ने भी बाल साहित्य में बाल साहित्य के महत्व को स्पष्ट किया है ।

1· हिन्दी बालसाहित्य एक अध्ययन - डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे - पृ॰ 11

2· All books written for children are not necessarily literatue nor does the adults conception of what constitutes a children's book coincide always wi th that of the child. There are those who think of a child's book as just a simpler treatment of an adult theme. This point of view considers children only as diminitive adults and arises from misunderstanding of child itself. For children are a race whose experience of life is different from that of adults. There is a different world - a child's world in which values are expressed in childrens terms and not in those which b long to adult experience.
A Critical Approach to Childrens Literature - Lilian Smith, p.15

पाल हज़ार्ड के मतानुसार -"वे ही पुस्तकें जो कला तत्व से ईमानदार रहनेवाली हैं बच्चों को अन्तर्ज्ञान एवं ज्ञान का सीधा मार्ग बता देती हैं, जो तुरंत सीधे समझने योग्य सरल सौन्दर्य को बता देती हैं, और सहारा उनके हृदय में एक प्रकार का कंपन पैदा करके जीवन में चिरस्थायी भाव पैदा कर देती हैं। यह कंपन उन्हें सार्वलौकिक जीवन के प्रति आदर, साहस तथा खेल के महत्व के प्रति सम्मान प्रदान करता है।[1]" उपर्युक्त परिभाषाओं से यह विदित होता है कि बाल साहित्य की अपनी विशेषताएं और सीमाएं होती है।

ख· विशेषताएं तथा सीमाएं

बाल साहित्य की रचना-प्रक्रिया में सक्रिय मूलभूत तत्व बाल रुचि एवं बाल मनोविज्ञान है। बाल मनोविज्ञान के अभाव में बाल साहित्य का अस्तित्व ही नहीं होता। ताकि बाल साहित्यकार को बाल मनोविज्ञान यानि बचपन में जो प्रमुख प्रवृत्तियां बाल मन में उत्पन्न होती हैं जैसे उत्सुकता, रचना-प्रवृत्ति, आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति द्वन्द्व की प्रवृत्ति, विनय, अनुकृति, स्पर्धा, निर्देश और सहानुभूति - उससे अवश्य परिचित होना चाहिए।

बच्चों को साहित्य की ओर आकर्षित करने में वांछित वातावरण की सृष्टि एक प्रमुख शर्त है। उसकेलिए बच्चों को अपने परिवेश से सम्बन्धित विषयों एवं वस्तुओं पर साहित्य रचकर देना अनिवार्य है। वांछित वातावरण से सम्बन्धित विषय होने पर भी बाल रुचि के अनुसार उनका कौन सा पहलु प्रस्तुत किया जाना चाहिए, यह अधिक ध्यान देने की बात है। अर्थात् उनकी वय के

1· Books that remain faithful to the very art, those that offer to children an intutive and direct way of knowledge, a simple beauty capable of being perceived imediately, arousing in their souls a vibration which will endure all their lives. That gives them respect for universal life, that respects the valour and eminent dignity of play.
Books, Children and Men - Paul Hazard - p.42

आधार पर अनुभूतियों का चयन करना चाहिए । यह इसलिए कि उनमें बालकों का मन रमें । पर इन अनुभूतियों के पीछे विशाल दृष्टिकोण हमेशा रहे कि कहीं भी अमानवीयता न हो ।

बच्चों को स्वस्थ मानसिकता प्रदान करने की क्षमता बाल साहित्य में होना नितान्त आवश्यक है । इसकेलिए बदलते हुए युग बोध को साहित्य में संवारना चाहिए । साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों के परिवेश का यथार्थ वर्णन करने में साहित्यकार सदैव जागरूक रहे । किन्तु निरे यथार्थ का वर्णन आवश्यक नहीं । कोरा यथार्थ बच्चों को नहीं भाता ।

बालकों में मानवीय भावना उद्दीप्त देने केलिए नई दिशाओं की खोज वांछनीय है । बाल साहित्य सिर्फ नसीहतों से भरपूर न हो । उसका रचनात्मक वैशिष्ट्य कायम करना रचना को प्रभावपूर्ण बनाने में बिलकुल आवश्यक है । इसलिए उसमें उपदेश का अन्तर्धारा भी रह सकती है और उसका आवरण व आकलन रोचक भी बना रह सकता है । पुस्तकों के प्रतिबच्चों की रुचि उनकी मानसिक प्रवृत्तियों द्वारा संचालित होती है । हर पुस्तक पढ़ते उसके रूप रंग का एक निश्चित प्रभाव बाल मन पर डालती है । इसके बाद उसका वर्ण्य विषय प्रभावित करता है । इसलिए बाल साहित्य का प्रकाशन अन्य प्रकाशनों से भिन्न योजना बद्धता की अपेक्षा रखता है ।

बाल साहित्य सभी प्रकार की संकीर्णताओं से परे रहें । क्योंकि बच्चों की दशा नाजुक हुआ करती है । इसलिए बच्चों पर सामाजिक पर्यावरण का सीधा प्रभाव पड़ता है । बाल मन में सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों के कारण अनेक मानसिक कुंठाएं घर कर लेती हैं जो सामाजिकता के बीज पनपने नहीं देती

ताकि एक स्वस्थ एवं समुज्ज्वल भविष्य के निर्माण केलिए बच्चों को पूर्वाग्रहों से मुक्त करना चाहिए ।

बच्चों के व्यक्तित्व-विकास में शरीर की देखभाल जितना महत्वपूर्ण है उतना महत्वपूर्ण है उसकी भाषाई देखभाल । बच्चे अपने परिवेश के प्रभाव से संस्कारों को ग्रहण करते हैं । इसलिए कथ्य के समान आयुवर्ग के आधार पर भाषा स्तर एवं अक्षरों के टाइप में परिवर्तन अवश्य होना चाहिए । चित्रों से सजी रचनाएं बच्चों को अधिक आकर्षित करती हैं । बाल कविता में मंत्र सदृश ध्वनियों और वातावरण युक्त बोली की लय का स्वाभाविक आकर्षण होता है । लयबद्ध संगीतात्मक सरल भाषा एवं तुकान्त शब्द प्रयोग बाल कविता को अधिक रोचक बनाता है । सरसता एवं गेयता बाल कविता का प्रमुख गुण है ।

विषय का सरलीकरण बाल साहित्य में अपेक्षित है । बच्चों की समझ के आधार पर विषय का सरलीकरण अवश्य करें जिस से बच्चे भी प्रौढ़ विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें । विषय का सरलीकरण बाल साहित्य की एक सीमा मानी जानी चाहिए ।

सभी विषय बाल साहित्य केलिए उपयुक्त नहीं है । बच्चों के साहित्य के अनुरूप हर विषय को स्थापित किया जा सकता है, यह मान्यता समीचीन नहीं प्रतीत होता । कई विषय ऐसे होते हैं जो बाल जीवन के बाहर के होते हैं । ये विषय सरल और रोचक ढंग से बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किये जाने पर भी बच्चों पर उनका कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ेगा । जीवन के मूल्यों को पहचानने और नई दिशा खोजने में ऐसी रचनाएं असफल रहेंगी ।

ई• सोहनलाल द्विवेदी के पूर्ववर्ति बाल काव्य

द्विवेदी के पूर्ववर्ति बालकाव्य की स्थिति कुछ ऐसी थी कि बालोपयोगी काव्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम अमीर खुसरो की कुछ रचनाएं - पहेलियां - कहमुकरियां आदि प्रकाश में आई । परन्तु इसे शुद्ध रूप में बाल साहित्य नहीं कहा जा सकता । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस दिशा में अनेक प्रयत्न किए । अतः हिन्दी में बाल साहित्य के प्रथम पुरोधा भारतेन्दु ही हुए । आगे चलकर इसी क्रम में रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी आदि ने अपने अपने ढंग से इस ओर प्रयत्न किया । इनमें अधिकतर कवियों की अधिकांश रचनाएं उपदेशात्मक ही हुआ करती थीं । उस समय बच्चों को उपदेशात्मक एवं शिक्षा प्रद रचनाएं देना ही बाल साहित्य का पर्याय समझ लिया जाता था । नदी, पेड़, फूल, धरती इत्यादि से उनके सद्गुण सीखने की ही बात कहता जा रहा । इस वातावरण में द्विवेदी जी बालसाहित्य के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए । उन्होंने इस क्षेत्र को राष्ट्रीय एवं प्रेरणाप्रद गीतों से भरा ।

उ• सोहनलाल द्विवेदी का कार्यक्षेत्र

बाल साहित्य के क्षेत्र में सोहनलाल द्विवेदी का अवतरण सन् 1921 के बाद हुआ है । उन्होंने अपने प्रौढ साहित्य के समान बाल साहित्य में भी साहित्य की एक ही विधा पर यानि काव्य पर अपनी लेखनी चलाई । द्विवेदी में सुप्त बाल कवि को पल्लवित एवं पुष्पित करने का श्रेय राय साहब को है ।

अभी तक द्विवेदी के 14 बाल काव्य संकलन प्रकाशित हुए हैं - दूध बताशा [1930] मोदक [1940] बच्चों के बापू [1956] बांसुरी [1957] नेहरू चाचा [1963] सब कहानियां [1967] तितली रानी, हुआ सवेरा उठो उठो [1976] गौरव गीत, हम बालवीर [1977] ।

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं का उद्देश्य केवल अभाव पूर्ति करना नहीं था । वे अपनी लेखनी द्वारा अन्य बाल साहित्यकारों एवं प्रकाशकों को समय समय पर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देते रहे । अब तक के साहित्यकारों में से अधिक योजनाबद्ध ढ़ंग से काम करनेवाले थे द्विवेदी जी । उन्होंने "शिशु भारती" मासिक पत्रिका के प्रकाशन की एक योजना बनायी थी । इसकी घोषणा में कहा गया था - हमने शिशुभारती नाम से बालकों के प्रतिनिधि कवियों का काव्य संग्रह प्रकाशित करने का निश्चय किया है । बाल साहित्य की ओर समृद्ध साहित्यकारों की उपेक्षा देखकर यह कार्य हमने आपके सहयोग के विश्वास पर ही अपने ऊपर लिया है । "शिशुभारती" को हम बहुत सुन्दर आकार प्रकार में और सचित्र छापेंगे और चाहेंगे कि बालकों केलिए लिखी हुई सभी अच्छी रचनाएं आ जाएं । बाल साहित्य के सभी प्रतिनिधि कवियों ने इसमें सहर्ष सहयोग देने का वचन दिया है । हम चाहते हैं कि आप स्वयं बालकों केलिए लिखी हुई अपनी 15-20 रचनाएं भेजने की या भिजवाने की कृपा करें ।[1] शिशुभारती पत्रिका विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने बाल साहित्य को अपना अमूल्य योगदान दिया । उसको युगानुरूप बनाने एवं उसकी उन्नति तथा प्रसार केलिए उसके भाव और शिल्प में कई परिवर्तन लाकर उन्होंने बाल साहित्य को ठीक तरह सजाया और संवारा ।

७. द्विवेदी के बाल काव्यों का वर्गीकरण

द्विवेदी ने आयुगत दृष्टि से रचनाओं को संवारा है ताकि वे भिन्न भिन्न वयवाले बच्चों को उपयोगी बनें । वय के आधार पर उनकी रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार है - शिशुगीत, बालगीत और किशोर गीत ।

---

1. बालसखा - जून 1946

1. शिशु गीत

छ: वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए लिखी गयी रचनाएं शिशुगीत के अन्तर्गत आती हैं। इस अवस्था में बच्चों को ऐसी रचनाएं अच्छी लगती हैं जिनमें घरेलू वातावरण अंकित होता है। शिशु मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चा एक प्रभुता संपन्न इकाई है [सोवरिनयूनिट] यानि बालकों में प्रकृति अपनी सभी संभावनाओं के साथ विद्यमान है, बालक की प्रकृति प्रदत्त शक्तियों, संभावनाओं को विकसित होने देने का एक ही तरीका है कि हम उसके रुझों, रुझानों, प्रवाहों और वृत्तिवाण रूपों को गंभीरता से समझें, उनके स्वाभाविक प्रस्फुटन में बाधा न डालें। शिशुगीतों की रचना में द्विवेदी ने उक्त मनोवैज्ञानिक तत्व को पूर्णत: ग्रहण किया है। इसलिए द्विवेदी की "शिशुगीत", "तितली रानी", हुआ सबेरा उठो उठो" आदि रचनाएं इस कोटि में आती है।

क. भाव-पक्ष

शैशवावस्था में इन्द्रिय बोध एवं सौन्दर्य बोध, दोनों चरम अवस्था में क्रियमाण रहते हैं। उसकी दुनिया विविध रंगों एवं इन्द्र धनुषी छवियों से आवृत्त है। उन्हें चटक रंगों से गहरी आस्था होती है। उसकी अंगुलियां सबको छूकर देखना चाहती है। इस अवस्था में बच्चे रंग बिरंगी मनोहर फूलों, चित्र-विचित्र तितलियों, उछलती कूदती गिलहरियों विविध पक्षियों के कलरव आदि में सौन्दर्य देखते हैं। "परियों का देश" तथा तितलीरानी शीर्षक गीत में द्विवेदी ने शिशु सहज अनुभूति को सटीक संवारा है।

---

1. गवाह - 1980 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के लेख - पृ. 10

निम्नलिखित पंक्तियां देखिए -

तितली रानी ! तितली रानी !
कहाँ पंख पाये सैलानी ?
रंग-बिरंगी करते चम-चम ।
सब का चित्त चुराते हर दम ।
xx xx xx xx
पीछे पीछे भागें हम सब
पकड़ न पाये लेकिन हम कब
गाना गाएं शोर मचाएं
पंख तुम्हारे हाथ न आएं ।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में शिशुओं की उत्सुकतापूर्ण मनोवृत्ति प्रत्यक्ष रूप में झलकती है । रंग-बिरंगी सुन्दर तितलियों के बारे में जानने तथा उनके साथ मैत्री जोड़ने केलिए बच्चे उत्सुक रहते हैं । बच्चे न केवल तितलियों के विविध जगत से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं बल्कि वे वर्षा, बादल आदि में भी सौन्दर्य का दर्शन करते हैं । वर्षा तथा बादल को देखकर शिशु मानस में जो भाव उत्पन्न होता है । उसे कवि ने निम्न लिखित पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है ।

बादल बादल बरसो पानी
आज नहाएगी मनमानी ।
रिम-झिम बरसो
छम छम बरसो
धीरे धीरे
थम थम बरसो ।

---

1. शिशुगीत - पृ.10
2 वही पृ-17

मर जाए गर्मी की नानी
बादल, बादल बरसो पानी ।[1]

भाव के समान शिल्प की दृष्टि से "बादल" कविता शिशुओं की सौन्दर्यानुभूति की सफल अभिव्यक्ति है । देखिए -

बादल बरसे झम झम झम
चलो नहाएँ हम हम हम ।
बादल गरजें छम छम छम
बोलो हर हर, बम बम बम ।
बादल बरसें थम थम थम
आओ नाचें छम छम छम ।
बिजली चमकी चम चम चम
चले भौं अर धम धम धम ।[2]

यहाँ भाव के साथ ध्वनियों के सूक्ष्म आघात प्रतिघातों, आरोह अवरोहों के चयन में कवि की सूक्ष्म दृष्टि बहुत खरी उतरी है । बच्चों द्वारा प्रयुक्त हर ध्वनि में अपना एक विशेष भाव निहित होता है । उपर्युक्त कविता में शब्दों की पुनरावृत्ति द्वारा संगीतात्मकता और लयबद्धता आयी है । वाद्यों की स्वर लहरी से उत्पन्न संगीतात्मकता को शिशु यों अनुभव करते हैं -

तबला बजता धिन धिन धिन,
मंजीरा किटगिन किटगिन ।

---

1. शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.16
2. वही - पृ.17

सारंगी बजती चींचीं,
हरमुनियां बजती पीं पीं ।
घंटा बजता घन घन घन
झांझें बजती झन झन झन
शंख बजा करता भों भों,
बिगुल बजा करता अक्सर पों पों ।
ढम ढम ढम ढम बजता ढोल,
अजब अजब बाजों के बोल ।[1]

इस प्रकार बाजों की स्वर लहरी, नाचती तितलियों एवं सरसते बादलों में ही नहीं चहचहाती चिड़ियों, कुहू-कुहू करते कोयलों, आकाश में चित्रांकन करते हुए तारों और सूर्योदय एवं सूर्यास्त के मनोरम चित्रों में द्विवेदी के शिशु सौन्दर्य बताते हैं । चिड़ियों को देखकर शिशु मानस में जो अनुभूति उत्पन्न होती है उसे कवि ने यों संवारा है । निम्नलिखित पंक्तियां देखिए -

रोज़ सवेरे आतीं चिड़ियां ।
चूं चूं चूं चूं गातीं चिड़ियां ।
चहल पहल कर जातीं चिड़ियां
मन में घर कर जातीं चिड़ियां ।
xx xx xx
फुदक फुदककर आतीं चिड़ियां ।
चूं चूं चूं चूं गातीं चिड़ियां ।
फर फर पर फैलातीं चिड़ियां ।
फुर फुर फुर उड़ जातीं चिड़ियां ।[2]

---

1. शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.22
2. हुआ सवेरा उठो उठो - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.12-13

उड़ जाती चिड़ियों के फटकती पंखों से जो आवाज़ सुनायी पड़ती है बच्चे उसका अनुकरण करते हैं । ये निरर्थक ध्वनियाँ बच्चों के लिए अर्थवान मिलती है । इस प्रकार चन्दामामा को देखकर बच्चे आत्म-विभोर हो उठते हैं ।

चम चम चम चम चन्दा मामा,
दम दम दम दम चन्दा मामा ।
घर आँगन में चन्दा मामा,
वन उपवन में चन्दा मामा ।
जल में हँसते चन्दा मामा,
थल में हँसते चन्दा मामा ।
नदी नहर में चन्दा मामा,
नगर नगर में चन्दा मामा ।[1]

इस प्रकार शैशवावस्था में बच्चे कल्पना की ऊँची उड़ान में विचरण करते हुए अपने परिवेश से सम्बद्ध वस्तुओं में सौन्दर्य का दर्शन करते हैं ।

शैशवावस्था में बच्चे मातृशब्दों का अनुकरण नहीं करते वे दूसरों के आदतों को भी अनुकरण करते हैं । इस अनुकरण की प्रवृत्ति द्वारा बच्चों में अच्छी अच्छी आदतें डाली जा सकती हैं । यह प्रवृत्ति बच्चों को बड़े होने पर एक अच्छा मानव बनाती है । इसलिए सोहनलाल द्विवेदी की मानवतावादी दृष्टि बच्चों को एक अध्यापक बनाना चाहती है । वे अध्यापक बनकर अपने परिवार के जीव जन्तुओं को पढ़ाते हैं ।

---

1. हुआ सबेरा उठो उठो - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.22

लगी पाठशाला मुन्नू की
पशुपक्षी पढ़ने आए
सब पोथी ले ले आए
मुन्नू बोला चूहे से -
चूहे पढ़ अ आ इ
चूहा पोथी रखकर बोला
चीं चीं चीं चीं चीं चीं ।
मुन्नू बोला गदहे से
गदहे पढ़ उ ऊ ओ ।[1]

बच्चों की अनुकरणात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति देने में द्विवेदी ने निहायत कमाल की है । "चल रे घोड़े" "ईंटों की रेल"[2] आदि गीतों में बच्चों की यही मनोवृत्ति दर्शाते हैं । "चल रे घोड़े" में बच्चे घोड़े के ऊपर चढ़कर घोड़सवार बनना चाहते हैं । वह घोड़े को ठीक रास्ते पर चलाते हैं ।

अपनी वस्तुओं को दूसरों की चीज़ों से अच्छा समझना, उसकी प्रशंसा करना - शिशु सहज मनोवृत्ति है । यह एक तरह की आत्म प्रशंसा है । "मेरी गुड़िया" कविता में द्विवेदी ने इस भाव को अभिव्यक्त किया है । अपनी गुड़िया के सम्बन्ध में बच्चे का विचार देखिए -

मेरी गुड़िया भोली - भाली,
देती नहीं किसी को गाली ।
xx xx xx

---

1. शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ० 4
2. वही - पृ० 5-21

मेरी गुड़िया चतुर सयानी,
है वह सब गुड़ियों की रानी
:: :: ::
मेरी गुड़िया है सुकुमारी,
जिस पर सब गुड़ियां बलिहारी ।[1]

माँ और बच्चे दोनों का अटूट सम्बन्ध है । दोनों एक ही इकाई है । इस दृष्टि से "मेरी माता" कविता विशेष उल्लेखनीय है । इसमें माता से विलग होकर दूर रहनेवाले बच्चे की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिली है । बहुत आशाएं लिए हुए बच्चे बच्चे माता की प्रतीक्षा करते हैं । यहाँ कवि ने बाल अनुभूतियों को बहुत निकट से छुआ है । द्विवेदी का शिशुगण दुःख से बिलखते हैं -

किस माता का कहलाऊँगा
अब कैसे जी बहलाऊँगा ?
उछल उछल किसकी गोदी पर
गले लिपट कर सुख पाऊँगा ।
मेरी माता सब सुख-दाता
टूट गया अब उससे नाता
रोऊँ-रोऊँ कब तक रोऊँगा,
हाय ! नहीं है मेरी माता ।[2]

---

1. शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.6
2. तितलीरानी - सोहनलाल द्विवेदी-पृ.44

प्रस्तुत कविता में कवि का लक्ष्य बच्चे की अनुभूति को उभारना मात्र नहीं है बल्कि अति आधुनिकता के परिणाम स्वरूप मां-बच्चे की टूटी हुई सम्बन्धों की ओर भी कवि इशारा करते हैं। उनका सम्बन्ध केवल होने केलिए होते हैं, माता, पिता के बीच उनका यह "होना" सिर्फ औपचारिक रिश्तों तक ही सीमित होता है।

शिशुओं के मनोरंजन केलिए द्विवेदी ने गीत कथाओं का प्रणयन किया है। उसमें सरल सीधी कथा होते हुए भी कोई न कोई नवीन प्रयोग या नवीन विचार अवश्य ही समाहित होता है। द्विवेदी की ऐसी कथाएं एक जंजीर की तरह होती हैं जिन में एक के बाद एक घटना निकलती और जुटती चली, जाती है। "एक बिलैया" शीर्षक कविता इसी प्रयोग का नमूना है -

मैं ने एक बिलैया पाली, आधी भूरी आधी काली।
उसकी है कुछ अजब कहानी, जिसको सुन होती हैरानी
ज्यों उसने अपना मुंह खोला, निकले दो सोने का गोला।
गोला ने आ गाना गाया, गाना गाया नाव दिखाई।
हुआ नाव से बबुआ पैदा, बबुआ तुरन्त बन गया पैदा।

वस्तुतः कल्पना के वायवी उड़ान में चहकनेवाले शिशु मानस का अनुभूति जगत बहुत सुन्दर रहा है। शिशुओं के सौन्दर्य बोध को द्विवेदी ने ठीक तरह से संवारा है। शिशु वर्ग प्रकृति प्रेमी है। इसलिए कवि अपने शिशु गीतों में प्रकृति का कोना कोना झांक आया है।

1• शिशु - जून 1929

ख· <u>शिल्प पक्ष</u>

शिशु गीतों में द्विवेदी ने शिशुओचित भाषा का चयन किया है । शिशुओं की भाषा को समझने के लिए एक विशेष अन्तर्दृष्टि होनी चाहिए । पहले बच्चे सुनी जानेवाली ध्वनियों के अनुकरण द्वारा अपने भाव को अभिव्यक्त करता है । उसके द्वारा प्रयुक्त हर ध्वनि में अपना एक विशेष भाव निहित होता है । "पतंग" कविता में उड़ते रहे पतंग के द्वारा जो आवाज़ सुनाई जाती है उसको बच्चे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं -

सर सर सर सर उड़ी पतंग
फर फर फर फर उड़ी पतंग[1] ।

गदहे और घोड़े की आवाज़ को बच्चे इस प्रकार ग्रहण करते हैं -

गदहा पोथी रखकर बोला -
ढीपों ढीपों ढीपों ।
घोड़ा पीठ उठाकर बोला
हिन हिन । हिन हिन । हिन हिन[2] ।

सर्दी के समय हवा की आवाज़ एवं शरीर के कंपन के स्वर बच्चों की भाषा में कवि ने यों अभिव्यक्त किया है -

---

1· शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·7-4
2· वही - पृ·4

ओ हो सर्दी । ओ हो सर्दी
चल रही हवा भी सर सर सर
कांप रहे औ तन थर थर थर
अब भूल गया बम बम हर हर[1] ।

उपर्युक्त गीतों में एक ही ध्वनि की बार बार अभिव्यक्ति हुई है जो हमारे लिए निरर्थक प्रतीत होते हैं । किन्तु शिशुओं केलिए ऐसे निरर्थक शब्द एक निश्चित अवस्था तक उनके भावाभिव्यक्ति का माध्यम भी होते हैं । अलावा इसके एक ही शब्द की पुनरावृत्ति बच्चों को अधिक मनोरंजन देता है ।

कई अक्षरवाले शब्द शिशुओं के मस्तिष्क केलिए बोझिल सिद्ध होते हैं । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए द्विवेदी जी ने संयुक्ताक्षर का प्रयोग नहीं किया है । बरसात के समय पानी टपकने पर जो आवाज़ सुनाई पड़ती है उसे कवि ने शिशुओं की भाषा में अभिव्यक्त किया है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

अररररररर पानी आया ।
हररररररर पानी आया ।
बादल गरजे घड़ घड़ घड़ घड़
बूंदें बरसीं तड़ तड़ तड़ तड़
टीनें बोलीं भड़ भड़ भड़ भड़ ।
अजब शोर है जग में छाया ।
अररररररर पानी आया[2] ।

1· शिशुगीत - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·24

2· हुआ सवेरा उठो उठो - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·18

यहाँ संयुक्ताक्षर के अभाव में भी शब्द शिल्प और चमत्कार छूटने नहीं पाये हैं। गोविन्द करंदीकर का कथन यहाँ विशेष उल्लेखनीय है - "बच्चों का सौन्दर्य बोध भावों विचारों तथा संवेदनों की एकात्मकता से उभरता है, उनमें अर्थ तथा अर्थहीन बातों को सहज स्पर्श करने की क्षमता होती है। इसी कारण निरर्थक शब्दों से अर्थपूर्ण शब्द की ओर बाल कविता सहज संचार करती है, इसमें मंत्र सदृश ध्वनियों की पुनरावृत्तियों तथा आघातजन्य बोली की लयात्मकता को आत्मसात करने की स्वाभाविक रुझान होती है।[1] अंत्यानुप्रास की अनुपम छवी द्विवेदी के शिशु गीतों में यत्र तत्र झलकती है जो काव्य को अधिक आकर्षणीयता प्रदान करती है।

2. <u>बाल गीत</u>

शैशवावस्था को पार करते ही बच्चों की रुचि एवं ज्ञान का स्वतः विकास होता है। अब एक कौतूहल भरी दृष्टि से अपने चारों ओर की वस्तुओं को वे देखने परखने लगते हैं और इस कौतूहल प्रियज्ञान पिपासा की परितृप्ति केलिए उचित माध्यम खोजते हैं। ब्रह्माण्ड की हर वस्तु और चकित करनेवाली क्रियाओं की कल्पना उनकेलिए आनन्द का आगर बन जाती है। संसार की तमाम बातों के बारे में जानकारी प्राप्त करने की बलवती आकांक्षा उनमें उत्पन्न होती है। पीटर सेंठी फोर्ड के अनुसार -बच्चे प्रायः इस अवस्था में बाह्य जगत से सम्बन्ध जोड़ने तथा दूसरे मानव तथा भू-भाग के बारे में जानने को उत्सुक हो जाते हैं। वे अपने दैनिक व्यवहार की जानी-पहचानी चीज़ों को ठुकरा देते हैं। उनके दिल और दिमाग कभी उन्हें सन्तुष्ट नहीं करते। अतः वे दूसरे महान व्यक्तियों के जीवन, उनके अनुकूल पथ, आशा आकांक्षा आविष्कार एवं दर्दभरी कहानियाँ सुनने को

---

1. गवाह - 1980 - गोविन्द करंदीकर के लेख से

उत्सुक हो जाते हैं। अब वे अपनी पकड़ की सारी चीज़ों की विस्तृत जानकारी केलिए जिज्ञासु हो जाते हैं और इस महत्वाकांक्षा में यदि उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध नहीं है तो कभी कभी दूसरी, पुरानी नीरस एवं मोटी किताबें निष्ठापूर्वक पढ़ लेती[1]। इसलिए इस अवस्था में बच्चों को ऐसा साहित्य रचकर देना चाहिए जो उनके जीवन तथा मनोभावों को, जीवन के सत्य एवं मूल्यों को पहिचानने केलिए सहायक होता है।

द्विवेदी जी की लिखी बाल गीत रचनाएं हैं - "बांसुरी", "हम बालवीर" और "यह मेरा हिन्दुस्तान है"। बालकों के लिए लिखी उनका एकमात्र कथा काव्य है "सस कहानियां"।

विषय के आधार पर द्विवेदी के बालगीत तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। जैसे राष्ट्रीय गीत, नीतिपरक गीत और जागरण गीत।

राष्ट्रीय गीत

बाल्यावस्था में बच्चों में अपना एक निजी संस्कार उत्पन्न होता है। इसलिए उन्हें ऐसा साहित्य रचकर देना चाहिए जिसे पढ़कर बच्चे राष्ट्र भक्ति, अनुशासन प्रियता तथा सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करें। इस उद्देश्य की पूर्ति केलिए

---

1. The child becomes interested in the outer world and wants to hear of other people and other lands. He wishes to get behin the things he sees and handles. His own self and his own plans no longer satisfy him, he is curious to hear of the lives of others - their fears, hopes, discoveries and sorrows he now becomes eager to read everything he can lay his hands and so great in thisdesire that dry and ponderous tomes will be religiously read if no others are available.

Mental and physical Growth of Children - Peter Sandiford, p.2

द्विवेदी ने राष्ट्रीय गीतों की रचना की है । इसमें उन्होंने राष्ट्र के सम्बद्ध विविध धरातलों का आलिंगन किया है । बच्चों में देश प्रेम जागरित करने हेतु द्विवेदी ने कई गीतों में भारत के स्वर्णिम अतीत का वर्णन किया है । भारत में कई लोगों ने अपना शासन चलाया है । किन्तु भारतवासियों ने अपनी वीरतापूर्ण रणनीति के सहारे सब लुटेरों को भगा दिया । वे कभी भी पराजित नहीं हुए है । उन ऐतिहासिक घटनाओं की ओर इशारा करते हुए कवि बाल मानस में देश प्रेम पैदा करने की कोशिश करते हैं[1] । मातृभूमि" शीर्षक कविता में "मातृभूमि" की वन्दना करते हुए कवि कहते हैं -

ऊँचा खड़ा हिमालय
आकाश चूमता है,
नीचे चरण तले झुक,
नित सिंधु झूमता है
गंगा यमुना त्रिवेणी
नदियाँ लहर रही हैं,
....
जन्मे जहाँ थे रघुपति,
जन्मी जहाँ थी सीता,
श्रीकृष्ण ने सुनाई
वंशी पुनीत गीता ।

वह मातृ भूमि मेरी,
वह जन्म भूमि मेरी[2] ।

1· यह मेरा हिन्दुस्तान है - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·1-3
2· बांसुरी - सोहनलाल द्विवेदी - 1-3

महान विभूतियों के जन्म एवं प्रकृति सौन्दर्य के प्रभाव से अलंकृत पुण्य जन्मभूमि की वन्दना करने के साथ ही कवि भारत के आगर मातृभूमि के सम्बन्ध में गीत सुनाते हैं -

गूंजा वेदों का यहां गान,
जिससे दुनिया को मिला ज्ञान ।
निश-दिन गुण गाते अन्य देश ।
जय जय स्वदेश ।
जय जय स्वदेश[1] ।

"भारत वर्ष", "हिमालय", "गिरिराज", "राष्ट्रदेवता" आदि कविताओं में ऐसे ही भाव मुखरित हैं । भारत के अतीत का परिचय देते हुए कवि कहते हैं -

अन्धकार से घिरा हुआ जब
सोता था सारा संसार,
हमने ही था उसे जगाया
विमल प्रेम का दीप बार
ऋद्धि-सिद्धियां यहीं हमारे
आंगन में करती थी खेल
हमने ही औरों के कर में
रत्न राशी दी अमित उड़ेल[2] ।

---

1. बांसुरी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.9
2. वही - पृ. 87-88

बच्चों को युगानुरूप बनाने तथा समसामयिक वातावरण से परिचित कराने के उद्देश्य से उन्होंने अनेक बालगीत लिखे हैं । स्वतंत्र भारत के बच्चों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम पैदा करने में ऐसी रचनाएं सफल हुई हैं । खद्दर के बारे में लिखी कविता देखिए -

खद्दर सबसे आला कपड़ा,
बाबा बड़ा निराला कपड़ा ।
उजला कपड़ा काला कपड़ा,
सस्ता सुघर रखवाला कपड़ा ।
सुन्दरता का आला कपड़ा ।
खद्दर सबसे आला कपड़ा ।[1]

गणतंत्र दिवस का स्वागत करते हुए कवि बच्चों में नई स्फूर्ति एवं नया उमंग भरने की कोशिश करते हैं -

आया है गणतंत्र दिवस,
गाओ जय भारत गान रे ।
आया है जनतंत्र दिवस,
छोड़ो मुरली की तान रे ।
xx xx xx
xx xx xx
अभी नहीं यह विजय दिवस,
मत करो बैठ विश्राम रे ।
अभी दूर मंजिल है,
तब तक चलना है अविराम रे ।[2]

---

1. बालसखा - अक्तूबर - 1940
2. यह मेरा हिन्दुस्तान है - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.10-12

अलावा इसके हमारे पुराण और इतिहास के महान पुरुषों के प्रेरणा-दायक जीवन प्रसंगों को उद्घाटित करते हुए बालकों में राष्ट्रप्रेम उजागर करने का भरसक प्रयत्न भी किया गया है । राजा रणजीत सिंह के वीरोचित युद्ध का वर्णन करते हुए बच्चों में वीर भावना पैदा करने का कोशिश करते हैं -

कल कल जल में पल पल चल चल,
छल छल कर जल का कलकल,
बल बल बढ़ता था शौर्य लिए,
जल बढ़ता ऊपर उछल उछल ।
लहरें उठतीं भीषण कराल,
बन महाकाल की रसना सी,
आकंठ नीर चढ़ आता था,
थी नदी प्राण-धन की प्यासी ।[1]

राष्ट्र के नेता लाल बहादुर शास्त्री का यशोगान करते हुए बच्चों में वीर भावना वे कैसे उत्पन्न करते हैं सो देखिए -

चमके तो चमके दुनिया में ऐसा भाग्य सितारा
लाल बहादुर की लाली ने जैसा रंग पसारा ।
सदियों की सोई भारत की वीर-भावना जागी
जागे सिंह सपूत हमारे वीर-साधना जागी ।
:: :: ::
:: :: ::

---

1. यह मेरा हिन्दुस्तान है - मोहनलाल द्विवेदी - पृ.10-12

गहरा रंग तिरंगे को दे गयी रक्त की धारा
चमके तो चमके दुनिया में ऐसा भाग्यसितारा[1] ।

इसके बावजूद "कछुए की आत्मकथा", "कुतुब मीनार", "वृंदावन", "देहात", "दीवाली", "दूब की आत्मकथा" आदि गीतों के द्वारा कवि ने राष्ट्र के भिन्न भिन्न अंगों को संवारा है जिसके ज़रिए बाल मानस में राष्ट्रीय भावना की लहरें आप्लावित हो जाएगी ।

ख. <u>जागरण गीत</u>

बालकों में राष्ट्रीय भावना जागरित करने हेतु द्विवेदी ने कई जागरण गीत भी रचे हैं । इस दृष्टि से "प्रयाण गीत" विशेष उल्लेखनीय है -

अगर तुम पाओ पथ में शूल,
कुचल कर उसे बना दो धूल,
दलो बाधा, विपदाएं दलो ।
चलो तुम चलो, रुको मत चलो ।
xx xx xx
तुम्हें जाना है सब से दूर
जहां तक गया न कोई शूर,
बढ़ो सब से बढ़कर निकलो ।
चलो तुम चलो रुको मत चलो[2] ।

---

1. बांसुरी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.63
2. यह मेरा हिन्दुस्तान है - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.20

वे देश के बालकों को धैर्य के साथ अपने पथ पर आगे बढ़ने का आह्वान गीत सुनाते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

काम करेंगे हम हम हम ।
नाम करेंगे हम हम हम ।।
बढ़े चलेंगे,
बढ़े चलेंगे,
हिम्मत से
दिल मढ़े चलेंगे ।
: : :
नहीं रुकेंगे थम थम थम ।
काम करेंगे हम हम हम ।
वीर बनेंगे,
धीर बनेंगे,
हम बिजली के तीर बनेंगे ।[1]

इस प्रकार द्विवेदी ने भारत के सुप्त बालकों में देशभक्ति जागरित करनेवाली ऐसी अनेक गीतों की रचना की है। हिमगिरी पर चढ़कर भारत की ध्वजा उड़ाने केलिए सतत जागरूक बालकों को आह्वान करते हुए द्विवेदी गाते हैं -

हम नन्हे नन्हे बच्चे हैं,
नादान उमर के कच्चे हैं।
पर अपनी धुन के सच्चे है

---

1. बाँसुरी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.98-99

जननी की जय जय गाएंगे,
भारत की ध्वजा उड़ाएंगे,
अपना पथ कभी न छोड़ेंगे ।
अपना प्रण कभी न छोड़ेंगे
हिम्मत से नाता जोड़ेंगे,
हम हिमगिरी पर चढ़ जाएंगे
भारत की ध्वजा उड़ाएंगे[1] ।

बच्चों में नई स्फूर्ति, चेतना, नया उत्साह तथा देश प्रेम जागरित करने में ऐसे गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है । नए भारत के सपने को अभिव्यक्त करनेवाला एक अन्य जागरण गीत देखिए -

देखो नहीं हाथ की रेखा पलटो मत पत्रा पोथी
मीन मेष कुछ कर न सकेगा, ये सारी बातें थोथी ।।
कभी निकम्मे मत बन बैठो, उठो बढ़ो कुछ काम करो ।
सब कुछ कर सकते हो तुम, मत ईश्वर को बदनाम करो ।
नहीं भाग्य का मुख देखो तुम, अपने बनो विधाता आप ।
चलो बढ़ो अपने पावों से, लो सारी दुनिया को नाप[2] ।

अलावा इसके द्विवेदीजी ने बच्चों में श्रेष्ठ विचार भरनेवाली अनेक सरल कविताओं का भी चयन किया है । "मैं क्या चाहता हूं" कविता में द्विवेदी का बालक अपने जीवन के परम लक्ष्य को अभिव्यक्ति देता है । वह विश्व की महत्वाकांक्षाओं का केन्द्र बनना चाहता है ।

---

1. शिशु - जून 1929
2. वही

निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका सबूत है -

अम्मा कहती, बनूं कलक्टर,
दादा कहते, जज बन जाऊं ।
दादी कहती, बनूं गवर्नर,
सबके ऊपर हुकुम चलाऊं ।
चाची कहती, बनूं प्रोफेसर
चाचा कहते होऊं भामी
xx xx xx
/ मैं चाहता देश की सेना
का बन जाऊं एक सिपाही ।
दास बनूं भारत माता की
तो फिर पूरी हो मन चाही[1] ।

"तुम वीर बनो", "बालवीर", "आ ओ हम चढ़ें पहाड़ी में" आदि कविताएं बच्चों में साहस, उत्साह एवं सद्भावना बढ़ानेवाली हैं । "बालवीर" में बालक को दुखित एवं प्रताड़ितों की सेवा करने केलिए उद्यत होते हुए दिखाया गया है -

हम बालवीर । हम बालवीर ।।
हम नहीं किसी से डरते हैं,
हम सबकी सेवा करते हैं,
हम दुखियों का दुःख हरते हैं,
हम बालवीर । हम बालवीर ।।
अन्धों को राह बताते हैं
लगड़ों को हम ले जाते हैं,
जननी की जय जय गाते हैं[2] ।

---

1. हम बालवीर - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.15
2. वही - पृ.13

"अगर कहीं मैं तोता होता", "जी होता चिड़िया बन जाऊं" आदि गीतों में आज़ादी प्राप्त करने की बच्चों की उत्कट अभिलाषा को उद्घाटित किया गया है । बच्चे की कामना है कि वह चिड़िया बन जाऊं । देखिए -

जी होता चिड़िया बन जाऊं
मैं नभ में उड़कर सुख पाऊं
x x   x x   x x
कितना अच्छा इनका जीवन ?
आज़ाद सदा इनका तन मन
x x   x x   x x
कितना स्वतंत्र इनका जीवन ?
इनको कहीं न कोई बन्धन
मैं भी इनका जीवन पाऊं
जी होता चिड़िया बन जाऊं ।[1]

वस्तुतः द्विवेदी जी का कवि राष्ट्र के प्रति सतत जागरूक रहा है । उनकी राष्ट्रीय कविताएं हिन्दी बाल साहित्य के लिए एक अनमोल निधि है । बालकों को चरित्रवान बनाने में उनका बाल साहित्य एक स्वस्थ भूमिका अदा की है ।

---

1. हम बालवीर - सोहनलाल द्विवेदी - पृ०11

ग. नीतिपरक गीत

बालकों में नैतिकता बोध उजागर करने हेतु द्विवेदी जी ने अनेक उपदेशात्मक गीत भी लिखे हैं। "दस कहानियाँ" इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने कथात्मक गीत शैली को ग्रहण किया है। कहानी के द्वारा इच्छित उपदेश कहानी के अन्त में सूत्र रूप में प्रकट हुआ है। "खरगोश और शेर" शीर्षक गीत कथा के द्वारा कवि यह उपदेश देता है कि अपने में कोई बुरी शैतानी वृत्ति को कभी नहीं पनपने दें। यह अपने ही नाश का बीज बोता है। सद्वृत्ति की विजय और शैतानी की पराजय होगी। "मेढ़क और साँप" कहानी द्वारा द्विवेदी जी यह उपदेश देते हैं कि -

जब घर में हो फूट, कभी
दुश्मन को नहीं बुलाना।
गंगदत्त मेढ़क बन कर मत
जग में हँसी कराना।[1]

"संग" शीर्षक कविता में सत्संगति स्थापित करने का उपदेश देते हुए वे कहते हैं -

खेलोगे तुम अगर फूल से
तो सुगन्ध फैला दोगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से
तो गन्दे बन जाओगे।
जैसा भी रंग रंगना चाहो
घोलो वैसा ही ले रंग।

---

1. दस कहानियाँ - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 15

अगर बड़े तुम बनना चाहो
तो फिर रहो बड़ों के संग[1] ।

'मूर्ख पण्डित' शीर्षक गीत-कथा के द्वारा द्विवेदी बच्चों को यह उपदेश देता है कि केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई भी पण्डित नहीं बनेगा । वेद, पुराण आदि पढ़ने पर भी बिना सोच विचार के किए जानेवाले काम का भला परिणाम नहीं होगा । वे बाल साहित्य के अनुभवी तैराक हैं । उनकी कई रचनाएं पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है कि जैसे कोई बच्चा ही अपने आनन्दोल्लास में निमग्न गीत अलाप रहा हो -

सत्तूराम लपद्दूराम,
है कंजूसों में सरनाम ।
थोड़ा थोड़ा सत्तू बचाते,
जोड़ जोड़ कर सत्तू रखते ।
गोल गोल ले मटकी मोल,
उसमें सत्तू रखते तोल[2] ।

सत्तूराम की लालच भरी कामनाओं को बाल मानसिकता के अनुकूल द्विवेदी ने यों संवारा है कि यह पढ़कर बड़े लोग भी बिना गाल फुलाये हंस पड़ेंगे । अपने सत्तू की मटकी देखकर सत्तूराम रात में ये सारी बातें सोच रहा था कि वह सत्तू बेचकर उस राशि से तुरन्त ही चार बकरी खरीदेगा । उनके चार बच्चे होने पर उनको बेचकर गाय और वैसे ही घोड़ी को खरीदेगा । अन्त में उन सब को बेचकर उससे प्राप्त धन से वह महल बनाएगा । बादकी उसकी कामना देखिए कितना हास्यास्पद है -

---

1. हम बालवीर - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.23
2. दस कहानियां- सोहनलाल द्विवेदी - पृ.30

नौकर चाकर रखूँ अनेक ।
रहे निराली मेरी शान,
रहे निराला मेरा नाम ।
नया निराला रक्खूँ ठाट,
मैं फटकारूँ सबको डाँट ।
नौकर करे न सीधे बात,
तो मैं मारूँ उसके लात[1] ।

इस जोश में वह अनजाने ही लात मार दी और सत्तू भरी मटकी फूट पड़ी, वैसे ही उनकी कामनाएं भी धूल में उड़ गयी । इस मनोरंजक कविता के द्वारा द्विवेदी जी बच्चों को यह उपदेश देते हैं -

तब तो रोये सत्तूराम,
बिगड़ गया था । सारा काम ।
घर का भी धन खोया जाय ।
जग में लालच बुरी बलाय[2] ।

3. <u>बालगीतों का अनुभूतिपरक विवेचन</u>

बाल्यावस्था में प्रवेश करते ही बच्चों की कल्पना शक्ति में विकास होता है । उनकी कल्पना यथार्थ की ओर उन्मुख होने लगती है । द्विवेदी के बच्चे प्रकृति प्रेमी हैं । उनकी अनुभूति एक ओर रुचिर दिखायी पड़ती है तो दूसरी ओर रूखी । किन्तु उसमें रूखापन नहीं । उसमें सौन्दर्य झलकता है । बादल को देखकर बाल मानस में जो भाव उत्पन्न होता है उसे कवि यों उभारते हैं -

---

1. दस कहानियाँ - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.3।
2. वही

बादल भी बड़े खिलाड़ी है
मानो कुछ इनको नहीं काम ।
बस आठ पहर, चौबीस घंटे,
खेला करते हैं सुबह शाम ।
::   ::   ::
::   ::   ::
बदला करते हैं कभी कभी
कपड़े रंगीन बड़े प्यारे,
सब हरे लाल नीले पीले
ये दिखलाते प्यारे प्यारे[1] ।

शैशवावस्था में उनकी भावानुभूति "झम झम" बरसनेवाले और छम, छम गरजनेवाले बादल की स्वरमाधुरी में फंस गयी हैं तो बाल्यावस्था में उनकी अनुभूति बादल के रूप, रंग उनके क्रिया कलापों से सम्बन्ध जोड़ता है । उनकी अनुभूति में व्यापकता आती है । बालक स्वयं बादल बन जाना चाहता है । बादल बन जाने पर क्या करना है उस पर वह चिन्तित होता है । देखिए -

अगर कहीं बादल बन जाता,
तो मैं जग में धूम मचाता ।
किन्तु, शक्ति पाकर मैं इतनी,
सेवा करता बनती जितनी ।
कभी नहीं मद में इतराता
दीन दुःखी का दुःख मिटाता ।
मैं सुख की समीर लहराता[2] ।

1· बाँसुरी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ·35-38
2· वही - पृ·39-40

यहाँ उनकी अनुभूति में और भी व्यापकता आयी है । वह मानवीय धरातल को स्पर्श करती है । द्विवेदी का मानवतावादी दृष्टिकोण बादल के द्वारा बच्चों को समता का सन्देश देते हैं ।

सागर हो या रहे तलैया,
सब पर जल बरसाता बादल
महल रहे या रहे मड़ैया,
सब पर जल बरसाता बादल
भेद-भाव है नहीं दिखाता,
प्रेम-भाव दरसाता बादल ।[1]

"अगर कहीं मैं पैसा होता" शीर्षक कविता में द्विवेदी की मानवतावादी दृष्टि और अधिक स्पष्ट होकर उभरी है । अगर पैसा बन जायें तो बालक की कामना देखिए -

पढ़े-लिखों से रखता नाता,
मैं मूर्खों के पास न जाता,
दुनिया के सब संकट खोता
अगर कहीं मैं पैसा होता ?
xx xx xx
व्यर्थ विदेश नहीं मैं जाता,
नित स्वदेश ही में मंडराता,
भारत आज न ऐसे रोता ।[2]

---

1. बाँसुरी - पृ 42
2. वही - पृ 55

'गर्मी' शीर्षक कविता में गर्मी का प्रभाव एक बालक पर किस प्रकार पड़ता है, इसका परिचय मिलता है । शैशवावस्था में गर्मी के समय वे गर्मी की तीक्ष्णता पर विचार ही नहीं करते किन्तु बाल्यावस्था में उन्हें गर्मी की तीक्ष्णता का अनुभव हो जाता है । निम्नलिखित पंक्तियों में उसकी व्यंजना दर्शनीय है -

देखो बच्चे गर्मी आयी,
धूप कड़ाके की है छाई ।
गरम हवा जोरों से चलती,
भोरों में है धूम धूम जलती ।
रात हुई छोटी, दिन भारी,
दिन में सोते हैं नर-नारी[1] ।

रेल की खिड़की से देखने पर बालक के हृदय में जो जो भाव उमड़ आता है, उसे कवि ने यों संवारा है । केवल दौड़ती गाड़ी का स्वर ही उसको पसन्द आता नहीं बल्कि खेत खलिहानों, पर्वत-नदियों से लेकर बड़े बड़े नगर से भी वह परिचय पाता है -

ये खेत भी, खलिहान भी,
लम्बे चौड़े मैदान भी, ये शहर भी,
दिखलाने पुल औ नहर भी,
xx xx xx
दिखता है अजब तमाशा-सा
मन फूलता दूध बताशा-सा[2] ।

---

1 हुआ सबेरा उठो उठो - पृ. ९

2. बाँसुरी - पृ.72-74

शैशवावस्था में ईंटें इकट्ठा करके रेलगाड़ी बनानेवाले बच्चे के अनुभूति मण्डल में अब बड़ा परिवर्तन आता है ।

भाषापरक दृष्टि से परखें तो बाल्यावस्था में जैसे ही अनुभूति एवं चिन्तन में विकास होता है उसी प्रकार भाषा की ग्रहणशक्ति भी बढ़ जाती है । उसका शब्द भण्डार, वाक्य संरचना और अर्थ की सूक्ष्मता आदि में विकास होता है । उसकी बोली को भी मानकता आती है । उसकी बोली मानक भाषा की ओर अधिक निकट आती है ।

किशोर साहित्य

किशोरावस्था में बालकों के भविष्य निर्माण का कार्य सम्पन्न होता है इस अवस्था में नैतिक बल को बढानेवाली रचनाएं ही अधिक स्वीकार्य है । आविष्कारकों, नेताओं तथा महान पुरुषों की जीवनियां इस अवस्था में उनके भविष्य निर्माण केलिए प्रेरणादायक बनती हैं । किशोरों को लक्ष्य करके लिखी प्रमुख रचनाएं हैं 'नेहरूचाचा' और 'बच्चों के बापू' । इन रचनाओं के द्वारा नेहरू तथा गांधी के जीवन की प्रेरणाप्रद घटनाओं को उद्घाटित करते हुए द्विवेदी ने किशोरों के भविष्य निर्माण का स्तुत्य कार्य निभाया है । बाल जीवनियां लिखते वक्त द्विवेदी जी ने ऐसी घटनाओं का चयन किया है जो बालकों के भविष्य निर्माण में प्रेरणादायक है । प्रस्तुत दोनों रचनाओं में कवि ने विषय को सरलीकरण करने में विशेष ध्यान दिया है । 'बच्चों के बापू' के आमुख में कवि ने यह विचार व्यक्त किया है कि 'बापू को एक बच्चा कैसे चाहता है, उसके मन में क्या क्या उमंगें उठती है, इस कविता में यही दिखाया है । झटपट और पट्टी पहनकर बापू का टहलने जाना, उसके बाद

---

1. बच्चों के बापू - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.

भू पर बैठकर कुछ न कुछ लिखना, चरखे में सूत कातना, बापू की मधुर खिलखिलाहट हँसी, अपने वस्त्र स्वयं धोना, खान पान स्वयं तैयार करना, साँझ होने पर उनकी समूह प्रार्थना आदि बातों का उल्लेख बच्चों के बापू में किया है। प्रस्तुत दोनों रचनाओं में कवि ने विषय के सरलीकरण पर ज़ोर दिया है। गांधी जी के सरल, प्रभावशाली व्यक्तित्व का बच्चों में जो प्रभाव पड़ता है उसे कवि यों प्रस्तुत करते हैं -

मैं भी पहनूं एक लंगोटी
ओढ़ूं चादर एक,
चट्टी पहन चलूं मैं खटपट
बातें करूं अनेक।
मैं भी चर्खा लेकर कातूं
हर दम पहनूं खादी,
और टेंट में लटका लूं मैं
घड़ी एक मैं सादी[1]।

गांधी जी पर लिखी "गोखगीत" की दूसरी कविता देखिए -

देश प्रेम का मंत्र सुनाकर
जिसने हमें जगाया है,
सत्य अहिंसा का बल देकर
भय को दूर भगाया है।
कर सदियों की दूर
दासता जिसने हमें उबारा है
जो भारत का भाग्य विधाता
बापू वही हमारा है[2]।

---

1. बच्चों के बापू - पृ.35
2. गोख गीत - पृ. 5

"नेहरू चाचा" में जवाहरलाल नेहरू के जीवन की महत्वपूर्ण घड़ियों को काव्यमय अभिव्यक्ति देते हुए कवि ने बाल मानस में उत्कृष्ट आदर्श भर दिया है । नेहरू चाचा से बालक ऐसा संबन्ध स्थापित करता है कि वे भी उनके समान ज्ञानी बनना चाहते हैं -

पहन जनेऊ, पहन खड़ाऊ,
सोच रहे हैं काशी जाऊं ।
वेद पढ़ूं, ज्ञानी कहलाऊं ।
दुनिया भर को ज्ञान सिखाऊं[1] ।

नेहरू जी का स्वदेशी वस्त्र ग्रहण, गांधीजी की छाया में चलकर देश में आज़ादी लाने केलिए प्रयत्न करना, गरीबों को भूमि दान करना आदि घटनाओं को प्रस्तुत कविता में उद्घाटित किया गया है जिसके द्वारा बालक आदर्शवान बन जाएगा । कवि ने बड़ी बातों को सरलता और स्वाभाविकता के साथ संवारा है । देखिए -

गांधीजी को समझो काया, नेहरूजी को उनकी छाया ।
धन्य धन्य ये भारतवासी, बने देश के हित सन्यासी
टेक न छोड़ी प्राण गंवाया, भारत को आज़ाद बनाया[2] ।

द्विवेदी जी की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रौढ रूप ऐसे स्थलों में अधिक अभिव्यक्त हुआ है जहाँ उन्होंने एक ही विषय को लेकर शिशुओं, बच्चों और

---

1. नेहरूचाचा - पृ.8
2. वही - पृ.14

किशोरों के लिए लिखा है । ईश्वर से शिशु सहज प्रार्थना का रूप कवि किस भाव भंगिमा में भरते हैं उसका उदाहरण देखिए -

हमारे घर आओ भगवान
तुम्हें खिलाऊंगा मैं मेवे मधुर-मधुर पकवान ।
तुम को दूंगा नए खिलौने, नए-नए सामान
तुम खेलना, देखकर मुझको होगा हर्ष महान
दूंगा तुम्हें काठ का घोड़ा, जिसके लम्बे कान ।
तुम चढ़ना पीछे से मैं मारूंगा हंटर तान ।
हमारे घर आओ, भगवान[1] ।

यहां शिशुओं का सम्बन्ध केवल घरेलू वातावरण में सीमित रहता है । किन्तु बाल्यावस्था में यह प्रार्थना दूसरी मोड़ लेती है -

हे भगवान ! दया-निधान !!
मुझ को दो इतना वरदान,
चाहे दुख हो, चाहे सुख हो,
रहे देश का हर दम ध्यान ।
बाधाओं में, विपदाओं में,
धीरज धरूं बनूं बलवान ।
तन मन वारूं, जीवन वारूं,
भारत पर होऊं कुरबान[2] ।

---

1. शिशुगीत - पृ.2
2. हम बालवीर- पृ.1

यहाँ बालकों की अनुभूति और परिवेश में विकास होता है । उनके विचारों में प्रौढ़ता आती है । किन्तु किशोरावस्था में प्रार्थना में फिर परिवर्तन आता है । अब वे समूचे ब्रह्माण्ड से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं । वे समस्त ब्रह्माण्ड का हितैषी बन जाते हैं ।

तुम्हीं सूर्य हो, हो तुम्हीं चन्द्रतारा,
तुम्हीं ने सभी सृष्टि को है संवारा,
गगन, भूमि, जल,अन्न, फल-फूल, तारा,
तुम्हीं ने बनाया, सभी कुछ तुम्हारा ।
xx xx xx
मुझे शक्ति दो गीत गाऊँ तुम्हारे,
मुझे भक्ति दो काम आऊँ तुम्हारे ।[1]

इन कविताओं में द्विवेदी जी के सफल बालकवि का परिचय होता है । प्रत्येक अवस्था में बाल मन में उमड़नेवाली परिवेशजन्य अनुभूतियों एवं तदनुकूल बढ़नेवाले भावावेश को ठीक तरह से उभारने में कवि की दक्षता उपर्युक्त कविताओं में दर्शित होती है । यह उनके कवित्व शक्ति का सच्चा नमूना है । किन्तु इन कविताओं में एक सामान्य विशेषता पायी जाती है । यह है सुकान्त शब्द प्रयोगों के प्रति कवि का विशेष लगाव । यह काव्य के कला कौशल एवं बच्चों के पठन-पाठन की क्षमता को बढ़ावा देता है । बाल सुलभ अनुभूति में तल्लीन होकर उनसे तादात्म्य प्राप्त करके बाल सुलभ चपलता के साथ उन्हीं की भाषा में लिखने की कवि की सृजनात्मक प्रतिभा बिलकुल स्तुत्य है ।

---

1. बाँसुरी - पृ.3-4

बच्चों और प्रौढ़ों केलिए लिखे गए उनके गीतों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में अन्तर अवश्य दिखाई पड़ता है । खादी के बारे में उन्होंने बच्चों और प्रौढ़ों के लिए गीत रचा है । खादी से सम्बद्ध बच्चों की अनुभूति को कवि ने यों संवारा है -

खद्दर सबसे सादा कपड़ा
सादा और निराला कपड़ा
उजला और दुशाला कपड़ा
भारत का रखवाला कपड़ा ।[1]

किन्तु प्रौढ़ों की अनुभूति और अभिव्यक्ति में ऐसा परिवर्तन आया है -

खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा,
खादी के रेशे-रेशे में अपने भाई का प्यार भरा
माँ-बहनों का सत्कार भरा, बच्चों का मधुर दुलार भरा ।[2]

प्रौढ़ साहित्य की अपेक्षा बाल साहित्य में वर्तमान अनुभूति की सरलता, सहजता, पठन-पाठन की सुगमता एवं रोचकता उनके परिपक्व सृजनात्मक प्रतिभा का सच्चा प्रतिफल है ।

---

1. बालसखा - अक्तूबर 1940
2. जयभारत जय - पृ.19

संगीतात्मकता एवं लयबद्धता की दृष्टि से उनकी रचनाएं अधिक महत्व रखती हैं। संगीतात्मकता उनके बालगीतों की आत्मा है। "नेहरूचाचा" और "बच्चों के बापू" दोनों में उन महारथियों की जीवनी को काव्यात्मक शैली में अभिव्यक्ति देते हुए बालसाहित्य के ऐतिहासिक क्षेत्र में उन्होंने अपनी मौलिकता कायम की है।

निष्कर्ष

वस्तुतः सोहनलाल द्विवेदी ने बाल साहित्य को खूब सजाया और संवारा है। भारतीयता को लेकर संस्कारजन्य बाल कविता, हिन्दी साहित्य जगत को अकेली श्री० द्विवेदी की देन है। उन्होंने बच्चों की भाषा में कविताएं लिखी हैं, बच्चे बनकर ही, उनकी कल्पनाएं लेकर। चित्रों से सजी होने के कारण उनकी कविताओं में विशेष आकर्षण पैदा हो गया है। किन्तु उनकी रचनाओं में प्रबोधन का तत्व ज्यादा है, तो भी अरोचक नहीं दीख पड़ता। कहीं कहीं तुक निर्वाह भी ठीक नहीं हुआ है। रोचकता, भावागत सहजता, प्रवाह तथा साज सज्जा की दृष्टि से उनकी रचनाएं अधिक महत्व रखती हैं। सच कहें तो आज की वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों के बावजूद आज की समस्याग्रस्त जिन्दगी के बीच बच्चों की मानसिकता को सही दिशा दर्शाने में द्विवेदी जी रचनात्मकता समर्थ हुई है। यही उनकी सही तलाश है और यह तलाश पारम्परिक होते हुए भी आज भी सार्थक है। उनका यह व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण वस्तुतः उनकी अनन्यतम देन है।

****

अध्याय - पाँच

गीतकार सोहनलाल द्विवेदी

अध्याय - पाँच

गीतकार मोहनलाल द्विवेदी

सामान्य भूमिका

गेयता अथवा गीतात्मकता काव्य की ऐसी एक प्रवृत्ति है जिससे अनुभूति को गहराई तथा व्यापकता स्वतः प्राप्त होती है । अनुभूति की प्राथमिकता को प्रमुखता देनेवाला कवि कविता में लयात्मकता की खोज करता ही है । लय का विन्यास तुकों और अनुप्रासों से संभव होता नहीं । वह कविता की अन्तरंगता पर आधारित है । भारतीय परम्परा की दृष्टि से उसका सम्बन्ध संस्कृत साहित्य से है । प्राचीन वेद ग्रन्थ इसका प्रमाण है । उन गेय पदों से प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण करके हिन्दी में गीति काव्य का उदय हुआ ।

हिन्दी के आदिकाल के गीतिकार के रूप में अपभ्रंश कवि मैथिल कोकिल विद्यापति का नाम विशेष स्मरणीय है। उनके गीतों में गीति काव्य का आदर्श रूप दिखाई पड़ता है। श्री· विश्वंभर मानव ने कहा है : हमारी भाषा की अमराई में सबसे पहला स्वरसंधान मैथिल कोकिल विद्यापति ने किया है – विद्यापति के उपरान्त कबीर ने अपनी बाँसुरी संभाली फिर सूर, तुलसी, मीरा[1]। किन्तु बहुत सारे आलोचकों ने हिन्दी गीतिकाव्य का सम्बन्ध अंग्रेज़ी के लिरिक से माना है[2]।

गीतिकाव्य की सामान्य विशेषता

गीति काव्य का परम प्रधान तत्व वैयक्तिक सुख दुःख है। गीत शब्द से मतलब है वैयक्तिक विचारों विशेषकर अनुभूतियों को अभिव्यक्त करनेवाली एक सीमित आकार का काव्य[3]। छायावाद के प्रमुख रहस्यवादी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "सुख दुःख के ·

1· महादेवी [सं] इन्द्रनाथ मदान – कलापक्ष – विश्वंभर मानव – पृ·77

2· गीतिकाव्य में अत्याधुनिक युग के अंग्रेज़ी लिरिक के सब गुण मिलते हैं। वे कविताएँ आकार में छोटी होती हैं और एक हृदयोद्गार के रूप में कोमलता एवं मधुरता से मण्डित, निजीपन से परिपूर्ण तथा नवीन लाक्षणिकता सौन्दर्य-सुषमा और नवीन भावनाओं से ओतप्रोत हमारे सामने आती है।
काव्य के रूप – गुलाब राय – पृ·130

हिन्दी के गीतिकाव्य को अंग्रेज़ी गीतिकाव्य से प्रेरणा मिली है। उसका पहला रूप छायावाद में मिलता है जो वहाँ के काव्य से प्रेरित है।
आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ – डॉ·नगेन्द्र – पृ·62

3· In g neral the term lyric denotes a poem of limited length expressing the thoughts and expecially the feelings of a single speaker.
A Readers Guide to Literary terms – Karl Beckson and Arthur Ganz Third Edition 1970, p.121

भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिनेचुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है[1]। अर्थात् सफल गायक वही है जिसके गीत में सामान्यता हो यानि जिसकी भावतीव्रता में दूसरों को अपने सुख दुःख की प्रतिध्वनि सुन पड़े और यह तब स्वतः संभव है जब गायक अपने सुख दुःखों की गहराई में डूब कर या दूसरे के उल्लास विषाद से सच्चा तादात्म्य कर पाता है[2]। वैयक्तिकता के साथ संगीतात्मकता भी गीतिकाव्य केलिए वांछित है। वस्तुतः गीतिकाव्य लेखन में कवि बाह्यजगत को अपने में ले जाकर उसे अपने सुकोमल भावों से रंजित करता है। कवि उसमें अपने अन्तर्तम को पूर्णतः अभिव्यक्त कर देता है। उसमें कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। प्रगीत रचना में कविता भाव-प्रतिमा बनकर आती है। गीतिकाव्य में दृश्य चित्रण, वस्तु चित्रण या इतिवृत्त केलिए कोई स्थान नहीं। नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में-संगीत के स्वरों की भांति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना इकाईयों से कविता का निर्माण करते हैं, उनमें शब्द और अर्थ, लय और छन्द अथवा रूप और विषय की अभिन्नता हो जाती है। प्रगीत काव्य उसका [कविता का] निर्व्याज निखरा हुआ स्वरूप है। प्रगीत में कवि की भावना कल्पना, उसकी अभिव्यंजना और उसके द्वारा निर्मित प्रगीत के रूप में भी एकता या तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उसी अवस्था में प्रगीत अपने वास्तविक काव्योत्कर्ष को प्राप्त करता है। इन द्विविध तत्वों के एक दम समीपआ जाने और अन्तर खो देने में ही प्रगीत का प्रगीतत्व है[3]।

हिन्दी के समान अंग्रेज़ी के विद्वानों ने भी गीतिकाव्य की वैयक्तिकता पर ज़ोर दिया है[4]। हर्बर्ट रीड ने गीतिकाव्य में संगीतात्मकता को श्रेष्ठ स्थान दिया और भाषा, भाव-विचार आदि से उसका सम्बन्ध जोड़ दिया[5]।

---

1. विवेचनात्मक गद्य - महादेवी वर्मा - पृ.141
2. जीवन और काव्य- महादेवी वर्मा - पृ. 49
3. आधुनिक साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ.23-25
4. ...... When we speak in Lyric we mean a short poem - conveying some thought or sentiment of the poets own and such poem is usually devided into stanzas or strophies.
   Oxford Junior Encyclopeadia, Vol.XII, p.248
5. Words their sound and even their very appearence, are of course every thing to the poet, the sense of words is the sense of the poetry, but words have associations carrying the mind beyond sound to visual image and abstract idea.
   Modern Poetry - Herbert Read, p.45

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि अपने हृदय में घनीभूत रागात्मक तीव्र भावानुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति की उपलब्धि है गीति काव्य । वस्तुत: गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व निम्नस्थ है -

1. वैयक्तिकता या आत्माभिव्यंजना
2. संगीतात्मकता
3. रागात्मक अनुभूति की तीव्रता
4. संक्षिप्तता या लघुता ।

भारतेन्दुयुग

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है । अन्य साहित्यिक विधाओं के समान गीति काव्य को भी भारतेन्दु ने नव जीवन एवं नवीन भाव भंगिमा से सजाया । उन्होंने सर्वप्रथम अपने नाटकों में गीतों का उपयोग किया । समकालीन गीतों का प्रमुख स्वर राष्ट्रीयता है । किन्तु श्रृंगार का स्वर भी अनुपलब्ध नहीं । भारतेन्दु के समकालीन कवियों में राधाकृष्णदास, सुधाकर द्विवेदी, अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त आदि प्रमुख हैं । श्रीधर पाठक के गीतों में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक मुखरित होता है । उनके "भारतगीत" संग्रह का एक गीत देखिए -

प्रदमाभिमुख्य सुदेश भारत सतत मम मनरंजनम्,
मम देश मम सुखधाम मम तन-प्राण-धन-जन जीवनम्
मम तात-मात सुतादि प्रिय मित्र-बंधु-गृह-गुरु मंदिरम्
सुर आसुर नर नागादि अगणित जाति-जनपद-सुन्दरम् ।[1]

---

1. श्रीधर पाठक - भारत गीत [प्रथम संस्करण]

स्तवन की भी तन्मयता के साथ पाठक जी देश की उसकी भौगोलिक एकता का दर्शन कराया है । उन्होंने प्रकृति वर्णन से सम्बन्धितअनेक गीतों का भी सृजन किया है । देश प्रेम की भावना में उन्होंने हिमालय, गंगा आदि प्राकृतिक वस्तुओं का गौरव गान किया है -

> जय-जय शुभ्र हिमाचल श्रृंगा, कलरव निरत कलोलिनि गंगा ।
> भानुप्रताप चमत्कृत अंगा तेज पुंज तप-वेशा ।
> जय-जय भारत प्यारा देशा ।[1]

इस प्रकार भारतेन्दु युग के अन्य कवियों ने भी राष्ट्रीयता से ओतप्रोत गीतों का सृजन किया किन्तु इतिवृत्तात्मकता के कारण काव्य शिल्प में समुचित विकास नहीं कर पाया । इस संक्रान्तियुग की कविता में कविस्वाभिमत और काव्यानुभूति की मात्रा बहुत कम मिलता है । जो श्रृंगार अथवा धार्मिक कविता है उसमें कुछ भी नवीनता नहीं है और जिसमें कुछ नवयुग का सन्देश है उसमें न तो काव्योचित मधुरता है न सरसता । ऐसा जान पड़ता है कि गद्य को तुकबन्द करके रख दिया गया है । अधिकांश कविता साहित्यिकता से कोसों दूर है ।[2]

द्विवेदी युग

भारतेन्दु युगीन गीतिसृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप द्विवेदी युगीन कवियों ने इस क्षेत्र में कई महत्व-पूर्ण कार्य किए हैं । रचना विधान की दृष्टि से यह प्रबन्ध रचना का युग था । किन्तु काव्यशैली की दृष्टि से परखें तो इस युग में परम्परावादी तथा स्वच्छन्दता

---

1. श्रीधर पाठक - भारत गीत [प्रथम संस्करण] - पृ. 36
2. हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास - हरिहरदेव - पृ. 165

दोनों प्रकार की शैलियों का विकास हुआ । स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनारायण भट्ट, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि अनेकों ने प्रगीतों की रचना की । समकालीन प्रगीतों का मुख्य स्वर देश प्रेम से ओतप्रोत था । पूर्ववर्ती युग के राष्ट्रीय स्वर इस युग में और भी तीव्र हो गया ।

पं: महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली को अपनाने के साथ ही साथ समकालीन कवियों को नूतन छन्दों और नवीन विषयों को ग्रहण करने की प्रेरणा दी । फल स्वरूप वे विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा आदि के गीतों से कुछ हटकर लिरिक के अनुकरण पर गीति काव्य की रचना करने लगे । शनै: शनै: गीतिकाव्य का प्रचलन बढ़ता गया । प्रबन्ध रचना से हट कर अनेक कवियों ने गीति काव्य की रचना में सारा बल लगा दिया । समकालीन कवियों में बदरी नारायण भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय पर विदेशी गीतियों का प्रभाव स्पष्ट था । वस्तुत: द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध से ही हिन्दी गीतिकाव्य का समुचित विकास होने लगा । गुप्त जी की "भारत-भारती" का विनयगीत, "इस देश को हे दीनबन्धो, आप फिर अपनाइए"[1] इस युग का प्रथम गीत है जिसकी रचना 1912 में हुई थी । श्री० बदरी नारायण भट्ट तथा 1915-16 के आसपास श्री० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने प्रगीत काव्य की रचना की थी । हिन्दी में प्रगीत काव्य को प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हीं कवियों को है । इन्होंने अपने प्रगीतों में सार्वभौमिक सत्य को प्रतिष्ठित किया । सन् 1912 से 1918 ई० के बीच गुप्त जी ने अनेक गीतों की रचना की । गुप्त जी के "स्वर्ग बागल" कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - भारत-भारती मोहनी गीत - पृ०180-181

निकल रही है उर से आह, ताक रहे सब तेरी राह ।
चातक खड़ा चोंच खोले है, सम्पुट खोले सीप खड़ी,
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ, अपनी अपनी हमें पड़ी[1] ।

पं॰ मुकुटधर पाण्डेय तो इस पथ के सबसे मौलिक प्रथम कोटि के कवि हैं । उनके रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

हुआ प्रकाश तमोमय मग में,
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में,
दम्पति के मधुमय विलास में
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में
था तव क्रीड़ास्थान[2] ।

देश प्रेम, भक्ति और मानवी प्रेम से सम्बद्ध अनेक गीतों की भी रचना हुई । देश प्रेम से ओतप्रोत राम नरेश त्रिपाठी की निम्नस्थ कविता देखिए -

हे मातृभूमि तेरी जय हो सदा विजय हो ।
प्रत्येक भक्त तेरा सुख-शान्ति-कान्तिमय हो ।
अज्ञान की निशा में, दु:ख से भरी दिशा में,
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो[3] ।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - स्वयं आगत - सन् 1918 ई॰
2. मुकुटधर पाण्डेय - आँसू - सन् 1917 ई॰
3. रामनरेश त्रिपाठी- भारत गान

इस प्रकार द्विवेदी युग का अन्तिम चरण छायावादी गीतिकाव्य के विकास केलिए स्वस्थ एवं सुदृढ़ भूमिका प्रदान की । उन्होंने गीतिकाव्य को द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से मुक्त कर छायावादी माधुर्य एवं रसात्मकता प्रदान की ।

छायावाद युग

छायावाद मुख्यतः गीतिकाव्य का युग है । इस युग में आकर हिन्दी गीति काव्य को अधिक प्रौढ़ता एवं गतिशीलता प्राप्त हुई । अनुभूतियों के प्रकाशन केलिए कवियों ने गीत शैली को श्रेष्ठतम माध्यम के रूप में ग्रहण किया ।

छायावादी गीति काव्य के प्रमुख स्तम्भ है प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी । उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति एवं कला चातुरी से हिन्दी गीति काव्य को खूब सजाया और संवारा । विषय की दृष्टि से परखें तो कवियों ने, प्रकृति, प्रेम, नारी, लोक-चेतना, गांधीवादी दर्शन, अरविन्द वाद - भूत एवं दिव्य चेतना का समन्वय, बुद्ध समाजवादी दर्शन, फ्रायडीय मनोविश्लेषण आदि अनेक अछूती भावभूमियों का आलिंगन किया । प्रेम के विविध प्रसंगों का खुला-खुला चित्रण और प्रकृति के साथ साहचर्य एवं एक रूप छायावादी गीतों की निजी विशेषताएं है । कल्पना शक्ति के द्वारा व्यापक सौन्दर्य बोध को व्यंजित करने की प्रवृत्ति प्रसाद की "झरना" के निम्नलिखित गीतों में दर्शाते हैं -

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन -
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती-सी तुम कौन ।[1]

---

1. झरना - किरण - प्रसाद - पृ.28

ऐसी भावना महादेवी की "नीहार" कविता में भी मिलती है -

कैसे कहती हो सपना है अलि उस मूक मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलों में मेरे आँसू, उनके हास ।[1]

यहाँ रहस्यवादी बोध अभिव्यक्त होता है । सौन्दर्य प्रधान गीतों की रचना में पन्त का प्रयास बिलकुल स्तुत्य है । मानव और प्रकृति दोनों के रूप चित्रण में उनकी क्षमता बेजोड़ है । छायावादी गीतों में प्रकृति को मानवीय भावों के अनुरूप अभिव्यक्ति मिली है । ~~"डूबा रवि~~

"डूबा रवि अस्ताचल । संध्या के दृग छल-छल" ।[2]

छायावादी गीतों के आकर्षण का सर्वप्रमुख कारण उनकी नितान्त नूतन अभिव्यंजना प्रणाली है । उनकी अभिव्यंजना क्लासिकल टाइप की है । अर्थात् अभिजात्य की ओर अधिक झुकी हुई उनकी अभिव्यंजना में अभिव्यक्ति की लोक ग्राह्यता न थी । उसमें आस्वादन की क्षमता बहुत सूक्ष्म है ।

छायावाद के उत्तरार्द्ध में कतिपय कवियों ने उपर्युक्त दोषों के मार्जन के लिए छायावाद-रहस्यवाद की सीमा से बाहर निकल कर अपने गीतों में व्यापक भूमिका को उभारा । उन्होंने अपने गीतों के लिए दार्शनिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावभूमि को ग्रहण किया । अर्थात् छायावाद के पूर्वार्द्ध का कवि मुख्यतः "सौन्दर्योपासक और असीम तथा अनन्त के अनुरागी थे ।[3] किन्तु उत्तरार्द्ध का विषय "ससीम" अथवा इस पार से सम्बद्ध था ।

---

1. नीहार - मिलन - महादेवी - पृ॰12
2. गीतिका- निराला - गीत-संख्या - 73
3. प्रवासी के गीत - वक्तव्य - नरेन्द्र शर्मा - पृ॰3

इस पार प्रिये मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा[1]।

उत्तरार्द्ध के कवियों पर कठोर वास्तविकता का स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। उस परिवेश जन्य मानसिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने यों कहा है - आर्थिक क्षेत्र में बेकारी तथा उचित वृत्ति का अभाव, प्रेम के क्षेत्र में रूढ़ियों का आतंक अभी ज्यों का त्यों बना हुआ था, अतएव अर्थ तथा कामजन्य कुंठाएं और भी तीव्र हो गयी थीं क्योंकि चेतना तो उद्बुद्ध हो गयी थी[2]। यह अभाव की चेतना उत्तरार्द्ध के गीतों में घनीभूत होकर क्रियमाण रहती है। बच्चन के एकांत संगीत में यह अभाव-चेतना यों फूट पड़ी है -

जीवन की नौका का प्रिय धन
लुटा हुआ मणि-मुक्ता-कंचन
तो न मिलेगा किसी वस्तु से इन खाली जगहों को भर दो।
मेरे उर पर पत्थर धर दो[3]।

इस प्रकार उत्तर छायावादी गीतिकारों ने छायावाद युग में रहकर भी उसकी अभिव्यंजना शैली से अछूता रहकर नव स्वर में मस्ती से गाते रहे। भाव और भाषा दोनों में अभिजात्य वहाँ वर्जित रहा। कवियों ने छायावादी प्रेम-मधु के साथ राष्ट्रीय तथा सामाजिक भावना को भी व्यापक क्षेत्र प्रदान किया।

सोहनलाल द्विवेदी के गीतों का सामान्य परिचय

राष्ट्रीय तथा सामाजिक प्रेम की समष्टिपरक अभिव्यंजना के प्रतिनिधि के रूप में सोहनलाल द्विवेदी का शीर्षस्थ स्थान है। उनके देश प्रेमी हृदय में भी

---

1. मधुबाला - बच्चन - पृ॰77
2. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰5
3. एकांत संगीत - बच्चन - गी सं॰2

छायावादी रूमानियत तरंगायित रही है । गांधीवादी राष्ट्रीय कवि होने पर भी उन्होंने समय समय पर अपनी लेखनी द्वारा छायावाद का भी पोषण किया है । द्विवेदी जी की प्रमुख गीत रचनाएं हैं - भैरवी ‖1941‖ चित्रा ‖1943‖ वासन्ती ‖1944‖ और पूजागीत ‖1946‖ इनमें भैरवी और पूजागीत की भावभूमि राष्ट्रीयता है । "भैरवी में राष्ट्रीय जागरण के वन्दना गीतों का श्रद्धापूर्ण स्वर मिलता है । यह आदि से अन्त तक देश प्रेम में आत्म बलिदान की भावना से ओत-प्रोत है । उनके गीत, गीतों का राग और उनकी भाषा राष्ट्रीय भावुकता से अभिभूत हैं ।

प्रकृति सम्बन्धी गीत

सोहनलाल द्विवेदी ने प्रकृति को अपने गीतों में कई रूपों में संवारा है । भाव सम्प्रेषण के बावजूद गीतों में मधुरता लाने केलिए उन्होंने प्रकृति को ही ग्रहण किया है । द्विवेदी ने प्रकृति को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया और स्थूल और सूक्ष्म रूपों में उसके नाना रूपों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया । उन्होंने प्रकृति को नया अर्थ सन्दर्भ प्रदान किया । वह उसके जीवन स्पन्दन की सजग प्रतिलिपि सिद्ध हुई है । प्रकृति कवि की सहचरी प्रिया और पथ प्रदर्शिका है । वह प्रकृति से बात करता है । दृश्यमान प्रकृति के पीछे एक सत्य बैठा है । यहाँ कवि अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा उस व्यापक सौन्दर्य बोध को ध्वनित करते हैं -

देखा क्या ऐसा रूप कहीं,
जो समा न सकता आँखों में
जो बनकर गीत बिखरता हो
जो पाकर स्नेह निखरता हो
बनकर वसन्त ऋतु झूलता हो
यौवन की नव-नव शाखों में ।[1]

---

1. वासन्ती - पृ.10

प्रकृति सौन्दर्य को स्वयं मूंद लेते हुए कवि जीवन और प्रकृति को एकाकार करके देखना चाहते हैं । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

मधुकर, आज वसंत बधाई ।
कोमल बाहुलता फैलाओ,
स्नेहालिंगन कुंज बनाओ,
जीवन के पतझर में सबको
मधु ऋतु पड़े दिखाई[1] ।

प्रफुल्लित प्रकृति परिवेश के उस मादक क्षण में चेतना समेटकर मानव जीवन को मधुरतर बनाने केलिए कवि उद्यत रहते हैं । मदभरी पिकी का पंचम तान, बाहुलताओं का स्नेहालिंगन कुंज आदि प्रकृति की चेष्टाओं द्वारा कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति में अधिक कुशलता और भावसौन्दर्यता आयी है । कवि की अनुभूति निर्वैयक्तिक होते हुए भी वह भाव संकुल है । फिर मलयानिल का स्नेह स्पर्श पाकर कवि मानव जीवन को मधु से सिंचित करना चाहता है -

बरस रहा कुंकुम प्राची में
सुख सुहाग की वेला ठहरी
आई मलयानिल की लहरी ।
गा-मेरे कवि तू भी मृदु-मृदु
भरले विश्व-प्राण मधु-मधु
पाकर पावन स्नेह-स्पर्श अब
ओ मेरी कविता । तू भी बहरी[2] ।

---

1. वासन्ती - पृ.2
2. वही - पृ.4

मलयानिल का इन्द्रियों पर पड़ा हुआ प्रभाव मानसिकता के पटल पर व्यापक एवं भावाकुल दशा में परिवर्तित हो जाता है । प्राकृतिक उपकरणों के क्रिया कलाप द्वारा जिन्दगी में प्रेम की आवश्यकता की ओर कवि संकेत करते हैं । वे कहते हैं कि मानव जीवन को सुखपूर्ण बनाने केलिए दो हृदयों का मिलन आवश्यक है अर्थात् स्नेह के पावन प्रकाश की उष्मा से मानव जीवन सुखपूर्ण और गतिशील रहता है । मलयानिल बहता मंद

मलयानिल बहता मंद-मंद
सुमनों से कहता मधुर छंद,
वे उड़ चले भीने नभ पर
सौरभ बनकर चढ़कर अमंद !
xx xx xx
आओ कर लो क्षण भर विराम ।
जीवन यात्रा में सुख क्या रे
लें बैठ पलक भर एक मीत,
स्नेहिल हो लें तन्मय पथ में
पावन प्रकाश की हो उष्मा[1] ।

फिर प्रकृति सौन्दर्य को अपने नयनों की डालियों में बटोरने में स्वयं असमर्थ पाते हुए कवि अपनी विवशता पर दु:खी हो जाता है । इस विवशता से उद्भूत आंसु समर्पण और कल्याण का आंसु है । द्विवेदी का व्यक्तित्व यहाँ उभर आता है । वे मेघ से कहते हैं -

---

1. पिछला - पृ. 19

ले जाओ मेरे ये आंसू,
अरसा दो उन चरणों में
जीवन-हिमकण चढ़ा दिया है
जिनकी कंचन किरणों में[1]।

जिस प्रकार तृण-पादपों को बरसात की रिमझिम बूंदें जीवन दान देती हैं,उसी प्रकार शरीर की तपन को अश्रु प्रपात से कवि सींच रहा है। प्रकृति के द्वारा कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है।
इसीलिए

फिर "सीपियों के मोती" द्वारा कवि इस भाव को अंकित करते हैं कि यदि तुम स्वयं किसी पर समर्पित हो जाना चाहते हो तो ऐसा करो।

तुम्हें चढ़ना ही है यदि कहीं
अरे मेरे हीरों के हार।
चढ़ो उन चरणों में उपहार।
किया जिनपर जीवन बलिहार[2]।

द्विवेदी का यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत दायरे से ऊपर उठकर व्यापक सामाजिक भूमिका को ग्रहण करता है। "आंसू के कण" के द्वारा कवि उस चिरंतन सत्य को उद्घाटित करते हैं कि संसार में सुख के समय अनेक साथी होंगे किन्तु दु:ख के समय कोई स्वजन नहीं होगा -

---

1· चित्रा - पृ·40
2· वही - पृ·69

ऐ मनुष्य! तुम समय न छोड़ो,
जब तक ज्वाला जलन तपन,
सजग रखो सूखी कोरों को
बनकर कुसुम के चंदन।
बार-बार ढल-ढल पल-पल में
व्यक्त करो मन उत्पीड़न,
इस जग में सुख के सब संगी
दुःख में कोई नहीं स्वजन।[1]

समुद्र की लहरों के क्रियाकलापों द्वारा कवि उस अखण्ड सत्य की ओर संकेत करते हैं कि जगत का जीवन अस्थिर है। निम्नलिखित पंक्तियों में उसकी झाँकी मिलती है -

पल में उठती पल में गिरती
यह कैसा है उत्थान-पतन ?
करती रहस्य क्या उद्घाटन
है ऐसा ही अस्थिर जीवन।[2]

जीवन की अस्थिरता कवि के हृदय में एक लालसा, एक आकांक्षा एवं एक तृषा को जन्म देती है। वे अपने जीवन को लहरों की भाँति पावन एवं मानस को वैसा ही निर्मल बनाना चाहते हैं -

---

1. शिखा - पृ.38
2. वही - पृ.46

अपने ही जैसा कर दो यह
मेरा मानस भी सरस-सरस,
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल,
उज्ज्वल-उज्ज्वल, शीतल-शीतल ।[1]

अलावा इसके प्रकृति सौन्दर्य के अंकन द्वारा कवि ने जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों जैसे प्रणय के उन्माद विषाद आदि भावों को अंकित करने की भरसक कोशिश की है । वसन्त ऋतु के वर्णन द्वारा उन्होंने प्रणयानुभूति की संयोगावस्था को उद्दीप्त किया है -

कुसुमों के नीलम प्यालों में
ले माणिक मदिरा अभिराम,
मंद चरण धर बहा समीरण,
पिला रहा जग को अविराम,
प्रियतम की मधुमय वाणी सी
कुहुक उठी कल्याणी ।[2]
xx xx xx
भ्रमर आ रहे झूम-झूम कर,
गाते हैं यौवन की तान,
वही कुगन्ध, गीतमधु-पागल
अलि-दल गाते चंचल गान ।[3]

---

1. चित्रा - पृ.46
2. वही - पृ.49
3. वही - पृ.48

संध्या के वर्णन द्वारा कवि ने प्रेमी के मन की मिलनोत्कंठा को अभिव्यक्त किया है -

गोधूली है पथ में छाई,
अभिलाषी ने ली अंगड़ाई,
नभ में तारक एक अकेला
x x x x x x
मधुर मिलन उत्कंठा जागी,
चकई चली स्नेह में पागी[1]।

यहाँ कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में उभारा है। प्रकृति के क्रियाकलापों द्वारा कवि ने वियोगजन्य दुःख को अधिक कुशलता के साथ लिपिबद्ध किया है -

शशि आकर घन में छिप जाता,
जल निधि हाहाकार मचाता,
तट पर पटक शीश रह जाता,
यह किस दुख का अवलेखा है
ऐसा कहीं प्रेम देखा है[2]।

पल पल परिवर्तित प्रकृति परिवेश के द्वारा कवि इस चिर सत्य को उद्घाटित करना चाहते हैं कि जिस प्रकार मधु ऋतु के बाद प्रकृति में पतझर होता है उसी प्रकार जिन्दगी भी सुख-दुःख से आच्छादित है।

---

1. वासन्ती - पृ.68-69
2. वही - पृ.15

मधु ऋतु था, आज अब पतझर,
देखो पके केश तन जर्जर,
मन जर्जर जीवन है जर्जर,
यह भी प्यार तुम्हारा ही है[1]।

सुख दुःख दोनों मानव जीवन के सहचरी है जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक मिलता है -

थी चार दिवस चांदनी रात,
अब नहीं प्रणय की मदिर बात
अब खड़ी सामने सघन रात
जिसका न दिखाता कहीं पार[2]।

"द्वन्द्व गीत" में कवि यह तथ्य उद्घाटित करते है कि मानव जीवन सुख दुःख के मधुर मिलन से परिपूर्ण है। इसलिए हम पथिकों से कवि का आदेश है कि अपना पथ न छोड़ें।

प्रलय रहेगा और प्रणय भी।
जीवन से होगी चिर-ममता,
जीवन में है भरी विषमता
x x   x x   x x
पथिक नहीं अपना पथ छोड़ो,
भीत रहेगी और अभय भी[3]।

---

x द 1. चिन्ता - पृ.54
2. वासन्ती- पृ.42
3. चित्रा - पृ.86-87

मानवीय भावों के अनुरूप प्रकृति-चित्रण

मोहनलाल द्विवेदी ने छायावादी कवियों के जैसे अपने गीतों में सुक्ष्मत: प्रकृति को मानवीय भावों के अनुरूप अभिव्यक्त किया है ।

देखो, किरण पोंछती
फूल के आँस,
वह खिल उठा, वह
उठी है सुरभि-साँस[1] ।

xx xx xx

लिया समेट लजाने अलकें,
खोली मृदु सुमनों ने पलकें[2] ।

xx xx xx

आज कलियों से अरुणिमा
कह रही कुछ बात[3] ।

xx xx xx

आकांक्षा-सी ऊपर उठकर,
प्रार्थना-सदृश नीचे गिरकर ।
यह शिखा शून्य में कौन लेख
लिखती रहती हो निशिवासर[4] ?

---

1. वासन्ती - पृ.21
2. वही - पृ. 3
3. वही - पृ. 6
4. चित्रा - पृ.45

इस प्रकार द्विवेदीजी ने प्रकृति का मानव जीवन पर जो बाह्य और आन्तरिक प्रभाव पड़ा है उसका सूक्ष्मता से वर्णन किया है। फिर प्रकृति के द्वारा द्विवेदी जी ने लोक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया है। जिस बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर कठिन तपस्या द्वारा भगवान बुद्ध को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ था उस बोधिवृक्ष से द्विवेदीजी वर्तमान आत्मभ्रष्ट समाज में आत्मबोध जगाने की इच्छा व्यक्त करते हैं -

हे बोधिवृक्ष ! तव आँगन में
जगति के नर नारी आयें,
संतप्त हृदय तव छाया में
प्राणों की शीतलता पायें।

वस्तुत: द्विवेदी के प्रकृति संबन्धी गीतों में यथार्थ एवं काल्पनिक जगत, दोनों का चित्रण हुआ है। किन्तु उनकी ध्वनि यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख है। उनकी कल्पना यथार्थ की ही पोषिका है। प्रकृति रूपों द्वारा अपने विशेष विचारों को सफलता के साथ संप्रेषित करने में वे सफल हुए हैं।

<u>प्रेम सम्बन्धी गीत</u>

मानव जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला तत्त्व है प्रेम। प्रेम की प्रेरणाभूमि बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य है। प्रेम के दो पक्ष होते हैं - संयोग और वियोग। इन दोनों के अनेक अवस्था भेद और अन्तर्दशाएं हैं। गांधीवादी राष्ट्रीय कवि होने की वजह से द्विवेदी के प्रेम सम्बन्धी गीतों में

---

1. चित्रा - पृ.32

वियोग जन्य दुःख और त्याग एवं बलिदान जन्य मिलन को अधिक स्थान मिला है । द्विवेदी के प्रेम-गीत विरह की एकान्तिकता या अभाव के बोध के उस विशेष मुहूर्त के दुःखद प्रपीड़न से जन्मे हैं । इसलिए उनके गीतों में विशेषकर प्रेमगीतों में अनजाने ही तन्मयता एवं भावतीव्रता आ गयी है । द्विवेदी लिखते हैं कि

सौरभ बन उड़ गया हमारे
जीवन का मादक मकरन्द,
जिसकी सुधि में गूंथ रहा हूं
मैं ये कुछ दर्दीले छन्द ।[1]

द्विवेदी जी उदार प्रेम का गायक है । उनका प्रेम वैयक्तिक प्रतीत होने पर भी सभी संकीर्णताओं से मुक्त रहकर विश्वप्रेम का संदेशवाहक बन गया है -

गाओ प्रणय के खुले मुग्ध रस छन्द,
हो मुक्त जीवन, शिथिल विश्व के बन्ध,
हो एक बिछुड़े, अविच्छिन्न संबंध,
उन्मुक्त आनन्द, उन्मुक्त हो तान ।
गाओ मधुर गान ।[2]
× ×
झुमक धरो मृदु मधु के चरण छंद,
नूपुर बजें छिन्न हो विश्व के बंद,
मधुमय बनो हे मिलन मुग्ध मकरंद,
हो मौन विस्मृति, हो मौन आनन्द ।[3]

---

1. शिप्रा - पृ.74
2. वासन्ती-पृ. 9
3. वही - पृ.8

प्रेम के सम्बन्ध में कवि का दृष्टिकोण सभी सांसारिक संकीर्णताओं से पूर्णतः मुक्त रहा है। साथ ही प्रेम के सम्बन्ध में प्रचलित लोक के मिथ्या विचारों को उखाड़ फेंकने केलिए वे हमेशा उद्यत दिखाई पड़ते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

लाज तजकर आज प्रियतम !
खुले दिन में द्वार आओ।
लोक की मिथ्या कथा से
डर गए क्या सहज साजन ?
क्या उठा लोगे संवारी
जो कुटी पर पर्ण-छाजन ?
सत्य के बल पर टिको प्रिय।
यह असत्य कथा भुलाओ[1]।

यहाँ विरह की भर्त्सना का स्वर मुखरित हुआ है साथ ही प्रेम के क्षेत्र में कवि का दृढ़ व्यक्तित्व भी।

प्रेम-मधु के पान में कवि प्रिय और प्रेयसी (नर-नारी) दोनों को बराबरी की दृष्टि से देखना चाहते हैं -

आओ नित्य - उपेक्षित मेरे,
कृपया कर्मूँ मैं क्यों हित तेरे ?

---

1. चितरा - पृ.7

तुमने जीवन दान दिया तो,
लो जो दान चहो ।
तुम वंचित न रहो[1] ।

यहाँ कवि समानता का पक्षपाती है । कवि इस पक्ष का अनुगामी है कि प्रेमपथ में परिपूर्ण विजय केलिए प्रेमी-प्रेमिका दोनों को विरागव्रत साधना ज़रूरी है ।

मिले मुझे तुम, विजय न तुम को
मिलन रहा तो आधा
इसके ही मेरे अनुरागी
मैं ने यह विराग व्रत साधा[2] ।

विरहिणी प्रेमिका केलिए प्रिय के निमिष मात्र का दर्शन भी अमृत पान का सुख तथा सन्तोष प्रदान करता है । द्विवेदी जी विरहिणी प्रेयसी की इसी मनोदशा का कैसे उद्घाटन करते हैं सो देखिए -

हेरो इधर प्राण
फेरो न तुम मुख ।
यह मंद मुस्कान, यह मुग्धचितवन
देती अमृत कौन जी सा उठा मन,
क्या चाहिए और ? बस हो गयी सुख[3] ।

---

1. चित्रा - पृ.8
2. वही - पृ.42
3. वासन्ती- पृ.20

कवि स्वार्थपूर्ण प्रेम का हमेशा विपक्षी है । उसको स्वार्थ-प्रेम की निष्ठुर झकझोरी की अपेक्षा एकान्त जीवन ही अधिक भाता है ।

नयनों की रेशम डोरी से
मन गूंथो मेरा हीरक मन
xx xx xx
एकाकी ही है भला यहाँ,
निठुराई की झकझोरी से[1] ।

द्विवेदी इस पक्ष का अनुगामी है कि प्रेमी-प्रेमिका के शुद्ध मिलन केलिए वैराग से संपन्न साधना का मार्ग ही अधिक काम्य है । इसलिए प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी प्रेयसी सारी अभिलाषाएं और याचनाएं त्यागकर उसके चरण वंदन केलिए आज सब साधना में लीन है -

अब न अभिलाषा उमंगें
अब नहीं वे याचनाएं
आज वैरागिनी बनीं
अनुरागिनी सभी वे कामनायें,
झुक चलीं चरण-वन्दन में
हृदय की साधनाएं
शरण दो अपने चरण की
दिव्य गंगाधार में प्रिय[2] ।

---

1. वासन्ती - पृ.28
2. वही - पृ.13

विरह-वह्नि में कवि की वासना भस्म हो गयी है । उसके प्रेम में त्याग और तपस्या का भाव है - यह शुद्ध प्रेम है । यह प्रणय गाम्भीर्य की पराकाष्ठा है । कवि का पक्ष है कि वियोगावस्था के कंटकाकीर्ण जीवन के पश्चात का मिलन अधिक सुख एवं मधुसिक्त होगा । इसलिए वे कहते हैं -

जो दीपक पर प्राण होकर,
सोता हो सुख की समाधि पर,
जिस पर चढ़े हुए फूलों से
यह धरणी सुरभित मधुमय हो ।
उस प्रेमी जीवन की जय हो[1] ।

उनके प्रेम गीतों में कहीं कहीं सूफी संतों की सी दार्शनिकता वर्तमान

छोड़कर तुम को यहाँ पर सार क्या है ?
पूछता हूँ मैं कि यह संसार क्या है[2] ।

यहाँ 'तुम' से मतलब प्रेम है । द्विवेदी की साधना और साध्य दोनों प्रेम है ।

वस्तुत: द्विवेदी जी का प्रेम बाहर से वैयक्तिक प्रतीत होते हुए भी अन्तत: उनकी मनोभूमि व्यापक है । स्वयम् और अखिलजन की ।

---

1. वासन्ती - पृ.88
2. वही - पृ.70

नारी सौन्दर्य

द्विवेदी जी ने नारी के हावभाव एवं उसके सौन्दर्य को भी अपने गीतों में स्थान दिया है । नारी के सूक्ष्म मानवी स्वरूप की आभा की अभिव्यंजना उनके कई गीतों में हुई है । साथ ही साथ नारीत्व के अनेक उदात्त रूपों की व्यंजना भी हुई है । नारी सौन्दर्य के वर्णन में उसके मन और आत्मा के सौन्दर्य को अधिक प्रधानता दी गई है ।

'ग्रामवधू' एवं 'ग्राम बालिका' में कवि की कोमल कल्पना वर्णनात्मक है फिर भी भावों की सहजता एवं तरलता, सरलता एवं कलात्मक उत्कृष्टता से दोनों उच्च कोटि की कविताएं हैं । ग्राम बालिका के रूप सौन्दर्य को कवि ने यों अंकित किया है -

वह ग्राम बालिका चली
जा रही पथ में,
पहने कानों में तरकी
मुख पर बाला,
अलझुले बाल रूखे
लहराते सिर पर,
आँखों में अंजन गाढ़ा-
गाढ़ा-सा काला,
पेड़ों पत्तों में जो लावण्य निखरता
वह खेल रहा है
उसके अंग-अंग पर[1] ।

---

1. वासन्ती - पृ.45-46

बालिका के रूप सौन्दर्य के वर्णन के साथ साथ कवि ग्राम की सभ्यता को भी नारी के रूप में अंकित किया है । नागरिक सभ्यता को देखकर उसकी प्रतिक्रिया कैसी थी उस ओर कवि संकेत करते हैं ।

जब देवी जैसी आती
चली नगर में
हिरणी सी जाती ठिठक,
सकुच, कुछ सककर[1] ।

ग्रामवधू में कवि एक ललित सरस काव्य शिल्पि के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं । ग्राम वधू की सरलता, सरसता, उसके जीवन के मधुर स्वप्न, उसके हाव-भाव एवं चेष्टाओं का निष्पाप सौन्दर्य कवि की लेखनी से यों फूट पड़ता है -

है कहीं वासना नहीं उधर,
है कहीं कामना नहीं उधर,
है आशा भान-सी आँखों में
जैसे पाहुन हो आया घर,
वह ग्रामवधू वह ग्राम-बाल,
अपनापन से है भरा हृदय,
वह ग्राम-जननि वह ग्राम देवी
वह भूख-प्यास कर देती क्षय,
निर्जन में जीवन ढाल रही
निज वृत्ति में रत है दृग नीचे ।
वह महुआ बीनती तरु नीचे[2] ।

---

1. शिप्रा - पृ.58
2. वही - पृ.63

द्विवेदी के समान पंत ने भी "ग्राम वधू" के सम्बन्ध में गीत लिखा है[1]। पन्त ने पति के घर जाने केलिए उद्यत नव-वधू का चित्र उभारा है। किन्तु पंत की अपेक्षा द्विवेदी की ग्राम-वधू ही अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली रही है द्विवेदी ने सौन्दर्य वर्णन में कहीं भी मांसलता या मादकता नहीं आयी है।

वियोगिनी नारी का करुणा पूर्ण चित्र उभारते हुए कवि उसके मन की उदासता की ओर भी संकेत करते हैं -

उस दिन पहुँचा मैं सन्ध्या में
वह बैठी थी करुणा - समान,
थे शुष्क अधर, बिखरी अलकें
उन्मन उन्मन, मुख कान्ति म्लान।
मैं उन्मद था अपने सुख में
दे न सका उस पर तनिक ध्यान।
बोला उठ मुझे प्रणाम करो
उसने दी अंजलि प्रणति दान[2]।

"अंजलि प्रणति दान" में नारी के उदात्त चरित्र की झांकी मिलती है अभिव्यंजना और मुद्रांकन केलिए इन पंक्तियों की मूक मुखरता मन में कौंध के रह जाती है। प्रिय के मानसिक छल बल को जानते हुए ही उसे नायिका अंजलि प्रणति दान देती है।

---

1. जाती ग्रामवधू पति के घर।
मां से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा-गा-रोती बिटिया जी भर,
जन जन का मन करुणा कातर,
जाती ग्राम वधू पति के घर-ग्राम्य-पन्त। पृ.33

2. वासन्ती - पृ.9

प्रेयसी के मन की दुर्बलता की ओर इशारा करते हुए कवि कहते हैं -

बिक चुका बेमोल प्रिय । मैं तो तुम्हारे मोल पर
अब मुझे तोलो न फिर अपनी निकष के तोल पर ।
गिर न जाऊँ मैं कहीं, दु:ख हो तुम्हारे हर्ष को
अब झुलाओ मत मुझे मृदु बाहु के हिन्दोल पर ।[1]

नारी की गरिमा एवं महिमा की ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं -

स्वर हुए लय खोज में वह एक नीरव बीन हूँ मैं
अतल जल में भी समाहित वह पिपासित मीन हूँ मैं
स्वाति के उर में छिपाए विकल चातक दीन हूँ मैं
दीपमय जग बन चुका जो वह शलभ गति हीन हूँ मैं,
अश्रु पी-पीकर खिली जो वह अधर मुस्कान हूँ मैं ।[2]

वस्तुत: नारी के सौन्दर्यांकन में कवि ने अपने विचारों की मौलिकता, कल्पना की उड़ान और भावनाओं की रंगीनी विलक्षणता प्रकट की है ।

राष्ट्रीय गीत

द्विवेदी जी के गीतों का मुख्य स्वर राष्ट्रीय है[3]। द्विवेदी जी के गीतों में सामाजिक-राष्ट्रीय विद्रोह की जितनी सहज, सामयिक, मनोवैज्ञानिक

---

1. वासन्ती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.98
2. विषपान - पृ.36
3. राष्ट्रीयता का विशद विवेचन "राष्ट्रीय और गांधीवाद" अध्यायों में कर चुका है ।

और जीवन-सापेक्ष ध्वनि मिलती है उतनी समकालीन और किसी कवि में सुनने को नहीं मिलती । उन्होंने नारी-पुरुष के मुक्त प्रणय को, मानवतावाद को तथा राष्ट्रीयता को अपने गीतों में ध्वनित किया । शुद्ध जीवनानुभूति को अपेक्षित कल्पना के साथ कला के स्तर पर लाने में द्विवेदी पूर्णतः सफल हुए हैं । उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरव गान बड़ी श्रद्धा, भक्ति और तन्मयता के साथ किया है । देश वासियों में नवनिर्माण की भावना उजागर करने हेतु द्विवेदी जी ने कई गीत लिखे हैं ।

करो इस भव में नव निर्माण ।
प्राण में बजे एक ही तार,
स्नेह की हो पावन झंकार,
नयन में हो अमृत की धार,
भरो मृत तन में जीवन प्राण ।
तिरोहित हो अन्तर का भाव,
प्रकट हो युग का पुण्य प्रभाव,
मनुज से मनुज न करे दुराव
अखिल मानवता पाये त्राण ।
एकता सब धर्मों का धर्म,
अहिंसा ही जीवन का मर्म,
सत्य की सेवा हो सत्कर्म,
विश्व में हो मंगल कल्याण ।[1]

नव निर्माण का उत्साह और आवेश अधिक मात्रा में वर्तमान है। विकृतियों के विरुद्ध आक्रोश करते हुए कवि नव वर्ष का स्वागत करते हैं -

---

1. पूजागीत - पृ.88-89

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के
मद का चिर-अवसान लिये,
दुर्बल को अभयदान,
भूखे को रोटी का सामान लिए,
जीवन में नूतन क्रान्ति,
क्रान्ति में नये नये बलिदान लिये
स्वागत ! जीवन के नवल वर्ष
आओ, तुम स्वर्ण-विहान लिये[1] ।

"खादी गीत" द्विवेदी की ख्याति प्राप्त कविता है । देशी वस्तुओं के प्रति जनमानस में अनुराग पैदा करना इसका लक्ष्य है । इसलिए कवि गाते हैं -

खादी की गंगा जब सिर से
पैरों तक बह लहराती है,
जीवन के कोने कोने की
तब सब कालिख धुल जाती है ।
खादी का ताज चाँद-सा जब
मस्तक पर चमक दिखाता है,
कितने ही अत्याचार-ग्रस्त
दीनों के त्रास मिटाता है[2] ।

द्विवेदी के राष्ट्रीय गीत गांधी जी के सत्य और अहिंसात्मक सिद्धान्त से प्रभावित है । सैनिकों को आह्वान करते हुए वे कहते हैं -

---

1. भैरवी - पृ. 95
2. वही - पृ. 8

सैनिको ! ले शस्त्र अपने,
खुलेंगी अब पंख अपने,
घिरे मेघ हटें गगन से
आज वह अशनि करो वर्षा ।
वेदिको होगी न हिंसा,
आज का युद्ध है अहिंसा,
मरण को अस्तित्व देकर
पियो नव अमरत्व के कण ।
आज है रण का निमंत्रण ।

इस प्रकार जनता में देश प्रेम जागरित करने के लिए द्विवेदी ने कई आह्वान गीतों की रचना की है । अलावा इसके अनेक प्रार्थना गीतों के द्वारा उन्होंने भगवान से कामना प्रकट की है कि वे जन हृदय में देश प्रेम जागृत करें । उनके प्रार्थना गीतों में विश्व के जीर्णोद्धार की कामना मिलती है । "वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो", "वीणापाणी मुझे वर दो", "अन्तरतम में ज्योति भरो हे" अभय करो, अभय करो, अभय करो हे । आदि प्रार्थना विशेष विचारणीय है । उनके प्रार्थना गीतों में महाकवि निराला का प्रभाव लिए हुए सा दीखता है ।

वीणा पाणि ! मुझे वर दो ।
गाऊँ मैं तुझे जग मद में,
बहे तिमिर किरणों के मद में,
मेरे उर के तारों में वे
दो कड़ियाँ भर दो ।

---

1. पूजागीत - पृ.51-52

गाऊँ पावन गीत मनोरम,
सत्य खिले, हो दूर मोह-भ्रम,
हो जीवन-पथ ज्योतिर्मय
इतनी करुणा कर दो ।
गाऊँ युग की नवल प्रभाती ।[1]

कहीं वे संपूर्ण मानवता के कल्याणार्थ समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अन्धविश्वासों के सर्वनाश के लिए प्रार्थना करते हैं -

अन्तरतम में ज्योति भरो हे
जहाँ जहाँ मल मलिन पाओ,
वहाँ वहाँ युग चरण बढ़ाओ,
मेरे मंगलमय । दुर्बल पर
निज कर पल्लव सजल धरो हे ।
अन्तरतम में ज्योति भरो हे ।
जहाँ जहाँ पर देखो कारा,[2]
वहीं बहाओ करुणा-धारा ।

द्विवेदी की राष्ट्रीयता उनके व्यक्तित्व में घुल मिल गयी है । इसलिए उनके गीतों में संवेदन है, सच्चाई है और उनके बीच कवि के अंतर की झलक भी मिल जाती है । गीतों की सच्चाई में कवि का आत्मीय राग भी मिला हुआ है । प्रलय और प्रणय की सामंजस्य पूर्ण स्थिति कवि के व्यक्तित्व की विशेषता है ।

---

1. पूजागीत - पृ. 1-2
2. वही - पृ. 3

कवि कहते हैं -

इस जीवन की दोपहरी में
शीतल छाह बनो मेरे कवि
मेरे प्राणों में बन गायन,
भरो नींद मधु सुख का वर्षण,
वसुधा के उन्मद कण कण में,
अमृत प्रवाह बनो मेरे कवि ।
xx xx xx
वह प्रलय का दिन
प्रणय की गोद में प्राणीपात हो जाएगा ।[1]

कला विहीनता उनके राष्ट्रीय गीतों की एक खामी है । उनके गीत जनसाधारण को लक्ष्य करके लिखी गयी है । इसलिए उसमें कला का अभाव हुआ है । किन्तु उनके गीतों में गरिमा के साथ ही साथ गेय भी हैं । गीतात्मकता उनमें अवश्य वर्तमान है । मातृभूमि के कण-कण के प्रति सहज और गहन अनुराग उनके राष्ट्रीय गीतों की शक्ति है । उनके राष्ट्रीय गीतों में गीति तत्व अधिक उभर नहीं आया है । उसमें लघु कृजुता और वैयक्तिकता नष्ट हो गयी है । क्योंकि यहां कवि आदर्शवादी बन जाते हैं ।

समग्रतः वैयक्तिकता, अनुभूति की तीव्रता, गीतात्मकता, ऋजुता, प्रसंगानुकूल शब्द चयन आदि का यथोचित संयोग द्विवेदी के गीतों में वर्तमान है ।

---

1. पूजागीत - पृ.8

किन्तु वह छायावादी गीति काव्य की सी मार्मिकता एवं कलात्मकता से अछूता है। युग-जीवन का स्पंदन उनके गीतों में झलकता है। वे नारी-पुरुष के संयमित एवं बन्धन मुक्त प्रेम के गायक हैं। प्रेम सम्बन्धी गीतों में उनकी अनुभूति अधिकांश स्थानों पर वैयक्तिकता की सीमा का उल्लंघन करती हुई दिखाई पड़ती है। यहाँ उनकी अनुभूति व्यापक धरातल को आत्मसात करती हुई आगे बढ़ती है। लोक मंगल की भावना उनके गीतों का मूल स्वर है। संगीत तत्व की दृष्टि से भी उनके अधिकांश गीत सफल हुए हैं। उनके गीतों में युग का स्पन्दन है। वह मिट्टी की गन्ध से सराबोर है।

अध्याय - छः

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं का सांस्कृतिक परिवेश

अध्याय - छः

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं का सांस्कृतिक परिवेश

भूमिका - संस्कृति और सभ्यता

समूचे संसार की प्रत्येक सचेतनवस्तु के दो विभिन्न पक्ष होते हैं - भौतिक पक्ष और आत्म पक्ष। संस्कृति का सम्बन्ध आत्मपक्ष से है। संस्कृति को अंग्रेज़ी में "कल्चर" कहते हैं। कल्चर "कल्टीवेशन" का समकक्षी है[1]। "कल्टीवेशन" का मुख्य सम्बन्ध कृषि-कर्म से है किन्तु साथ साथ "संवर्धन"[2] और "उन्नति"[3] का अर्थबोध भी होता है। हिन्दी में संस्कृति शब्द "सम्" उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) "कृ" (ञ्) धातु तथा "क्तिन्" प्रत्यय लगाकर बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ "साफ" या "परिष्कृत" करना है[4]। बृहद् हिन्दी कोष में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण तथा परिष्कृतिकरण को संस्कृति कहा गया है[5]।

---

1. Etymologically the term culture is equivalent to cultivation Dr. P.K. Acharya - Glories of India, Introduction 2nd Edn.
2. Comprehensive English Hindi Dictionary - Dr. Raghuveera, p.477 1955
3. The Students English Sanskrit Dictionary - V.S. Apte, p.69 Edn.3r
4. हिन्दी साहित्य कोष - पृ. 801
5. बृहद् हिन्दी कोष - पृ. 1390

संस्कृति को परिभाषाबद्ध करना ऐसा जटिल कार्य है जैसे बुद्धि, विवेक, आकांक्षा आदि हृदयगत बातों को परिभाषित करना । विद्वानों ने संस्कृति की कई परिभाषाएं दी हैं । संस्कृति केवल बुद्धि का, जीवन को सही ढंग से जान लेने का नाम है[1] । डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है[2] । सुमित्रानन्दन पंत का कथन है - "संस्कृति को मैं मानवीय प्रार्थना मानता हूँ, जिसमें हमारे जीवन और सूक्ष्म स्थूल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे ऊर्ध्व चेतना-शिखर का प्रकाश और समदिक् जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएं गुम्फित हैं । उसके भीतर अध्यात्म, धर्मनीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि-रीति तथा व्यवहारों का सौन्दर्य भी एक अंतर-सामंजस्य ग्रहण कर लेता है । वह न धर्म तथा अध्यात्म की तरह ऊर्ध्व संचरण है[3] । मैथ्यू आर्नल्ड संस्कृति को संसार के सर्वोत्तम बातों के ज्ञान एवं एतद्द्वारा नूतन और स्वतंत्र चिन्तन धारा के प्रवाह के रूप में मानते हैं[4] । संस्कृति के सम्बन्ध में मेकाइवर तथा पेज का मन्तव्य भी विचारणीय है । वे कहते हैं कि समाज के सदस्य के रूप में हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आनन्द में पाए जानेवाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है संस्कृति[5] ।

---

1. स्वतंत्रता और संस्कृति - डॉ॰राधाकृष्णन - अनु॰विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी-पृ॰53
2. अशोक के फूल - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ॰64
3. उत्तरा - प्रस्तावना - पंत - पृ॰19
4. Culture being the pursuit of our total perfection by means of getting to know, on all the matters which most concern us, the best which has been thought and said in the world, and through this knowledge turning a stream of fresh and free thought upon our stock notions and habits which we know follow staunchly but mechanically.
Culture and Anarchy Preface, Mathew Arnold.
5. Culture is the expression of nature in our modes of living and of thinking in our every body intercourse in art, in literature in relegion, in recreation and enjoyment.
Maciver and Page - Society p.449

संस्कृति का सम्बन्ध व्यष्टि से नहीं समष्टि से है। टी॰एस॰ इलियट का कथन यहाँ स्मरणीय है। वे कहते हैं कि वह व्यक्तिगत वर्गगत तथा जाति अथवा समाजगत होती है[1]। संस्कृति जातीय संस्कारों को ही कहा जा सकता है .... वास्तव में वह भाववाचक होने के कारण संस्कृति एक सामूहिक शब्द है[2]।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निश्चित होता है कि संस्कृति वह आत्मतत्व है जो व्यक्ति में जन्म लेकर समाज में पलता है तथा संस्कारों से विकास पाता है। दूसरे शब्दों में संस्कृति का सम्बन्ध व्यष्टि से नहीं समष्टि से है। परिभाषाओं से यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि संस्कृति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। बाबू गुलाब राय संस्कृति की व्यापकता को मानते हुए उस के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोक-वार्ता, राजनीति का समावेश करते हैं[3]। डॉ॰ नगेन्द्र ने संस्कृति की व्याख्या करते हुए लिखा है संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत राग द्वेषों में परिमार्जन हो जाता है[4]। यह अवस्था विशेष न किसी पंचवर्षीय योजना का फल है या न कोई आकस्मिक विस्फोट का परिणाम। वह मानव का युग-युगों की अनवरत साधनाओं से प्राप्त प्रकाश का स्वच्छ नीरव प्रवाह है। इसी वजह से संस्कृति का मानवीय जीवन के समस्त क्रिया-कलापों, विचारों, विश्वासों, रीतियों नियमों आदि से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। प्रत्येक देश की अपनी निजी संस्कृति होती है जिसमें उसके निजी आदर्श, जीवन-गत मूल्य, सिद्धान्त, मनोभाव, रुचि-अभिरुचियाँ तथा मान्यताएं आदि रहते हैं। इन परम्परागत मान्यताओं को समष्टि के सांचे में ढालकर समाज अपनी ग्रहण शक्ति के अनुसार आत्मसात करते हैं।

---

1. The term culture has different associations according to whetl we have in mind the development of individual of agroup or class or of a whole society.
Notes towards the definition of culture, p.21, 3rd impression.

2. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा - बाबू गुलाब राय - पृ॰1

3. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा - बाबू गुलाब राय - पृ॰1

4. साकेत एक अध्ययन - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰100 पाँचवाँ संस्करण

सभ्यता

संस्कृति और सभ्यता दोनों का अटूट सम्बन्ध है । दोनों का पार्थक्य केवल इतना है कि संस्कृति साधना पर अधिष्ठित है जबकि सभ्यता भोगपरक है । अर्थात् एक सूक्ष्म है तो दूसरा स्थूल । संस्कृति मानसिक है तो सभ्यता भौतिक और बाह्य । सभ्यता के बाह्य उपकरणों जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, मोटर, वायुयान आदि के प्रयोग की रीति में संस्कृति निहित है । दिनकर ने ठीक ही कहा है - संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज़ होती है । वह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध[1] । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति अन्तर के विकास का[2] । किन्तु आधुनिक भौतिकतावादी युग में संस्कृति सभ्यता का गुलाम बन गयी है । आजकल दोनों का सम्बन्ध इतना अटूट बन गया है कि सभ्यता के बिना संस्कृति का अस्तित्व ही नहीं रहता । आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं तथा बुद्धिवादिता ने संस्कृति सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं को उलट फेर करके सभ्यता को उसका प्राण बना दिया ।

सांस्कृतिक काव्य

साहित्य सांस्कृतिक अर्थ के स्तर की अभिव्यक्ति है । इसी वजह से साहित्य अनिवार्य रूप से संस्कृति का भी दर्पण होता है । टालस्टाय के विचारों को ग्रहण करते हुए मोहनलाल द्विवेदी ने यों लिखा है कि - जो कला क्रूर को दयालु, कृपण को उदार, भीरु को वीर, दानव को मानव और मानव को देवता बना सके वही सफल है । एक वाक्य में उदात्त भावों को, सद्विवेक, सद्विचार,

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ०652
2. विचार और वितर्क - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ०123

सद्भावना को जगाना ही काव्यादर्श है[1]। यह काव्यादर्श संस्कृति-निष्ठ है। अर्थात् सौन्दर्यात्मक अन्वेषण सांस्कृतिक अन्वेषण का ही रूप है।

सांस्कृतिक काव्य लिखने के लिए कवि में व्यापक जीवनानुभव, विशाल दृष्टि और गहरी संवेदना होनी चाहिए। जो कवि अपने युग के उत्थान-पतन के मनन एवं मंथन द्वारा जीवन की व्यापक दृष्टि प्राप्त कर लेता है, वही सांस्कृतिक काव्य की रचना कर सकता है। ऐसे कवि के लिए काव्य व्यापार एक गंभीर प्रेरणा का फल है और काव्य उस के लिए एक ध्येय बन जाता है। द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक है। आचार्य वाजपेयी ने लिखा है कि व्यापक भारतीयता के वे ही उपासक और भक्त हैं। कहीं भी विदेशीपन की झलक उनकी रचनाओं में नहीं मिलती[2]।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन द्विवेदी जी के काव्य का उपजीव्य है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को स्वतंत्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में अंकित किया है। "वासवदत्ता" में कवि का लक्ष्य पराधीनता के जंजीरों में जकड़ी हुई भारतवासियों में सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने की ओर रहा है जिस के जरिए देश का उद्धार संभव हो। डॉ॰ नगेन्द्र का कथन भी विशेष उल्लेखनीय है। इनमें अधिकांश में प्रवृत्ति और आदर्श का संघर्ष और अन्त में आदर्श के विजय की आनन्दपूर्ण स्वीकृति है। इनमें, प्रायः सभी में वैभव विलास की पृष्ठभूमि पर नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा है। यह भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है[3]। इसके द्वारा सोहनलाल द्विवेदी का एक मात्र लक्ष्य यह है कि यह समाज के युवकों के चरित्र निर्माण में सहायक हो। कवि के गृहीत जीवन दर्शन की मानवतावादी विचारणा का और उसके प्रौढ़ जीवन दर्शन का पूर्ण विकास 'कुणाल' में दिखाई पड़ता है। उन्होंने

---

1. वासवदत्ता के आमुख से - सोहनलाल द्विवेदी
2. कुणाल की भूमिका - नन्ददुलारे वाजपेयी
3. विचार और विवेचन - डॉ॰ नगेन्द्र - पृ॰140

अपनी सांस्कृतिक रचनाओं में मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने के हेतु पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों तथा चरित्रों के प्रेरणाप्रद प्रसंगों को ग्रहण किया है । इस दृष्टि से द्विवेदी जी 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'सिद्धार्थ' आदि प्रबन्ध काव्य विशेष उल्लेखनीय है । 'भैरवी' की कतिपय रचनाएं जैसे 'हल्दी घाटी', 'बुद्ध देव के प्रति', 'तुलसी दास' आदि में भी सांस्कृतिक चेतना को उद्भूत करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है ।

द्विवेदी के सांस्कृतिक काव्यों का परिचय

द्विवेदी जी ने अपनी रचनाओं के द्वारा युग-युगों के उज्ज्वलतम सांस्कृतिक मूल्यों को जनमानस में अंकित करने का महान कार्य किया है । 'वासवदत्ता' के आमुख में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि "वासवदत्ता" भारतीय संस्कृति का फलक है और वह उनकी रचनाओं का नवीन शुभारम्भ है । द्विवेदी की सांस्कृतिक रचनाएं ऐतिहासिक सत्य से परिपुष्ट होने के बावजूद यह उनकी मौलिक कल्पना, जीवन दृष्टि एवं चिन्तन से अनुप्राणित हैं ।

प्रत्येक देश या राष्ट्र का प्राण वहाँ की संस्कृति में ही स्थिर रहता है इसलिए राष्ट्रीयता के पोषण के लिए उसकी संस्कृति को परिपुष्ट करना तथा सांस्कृतिक चेतना को जगाना नितान्त आवश्यक है । द्विवेदी जी की सांस्कृतिक रचनाओं के मूल में यह उद्देश्य सक्रिय रहा है । द्विवेदी जी ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए 'वासवदत्ता' के आमुख में यों लिखा है कि "कवि से आशा की जाती कि वह देश को आज़ादी के ही गीत न दे जो उसके समाज, जाति, राष्ट्र के मेरुदण्ड आदर्शों को सीधा रख सकें । यदि देश स्वतंत्र भी हो गया, किन्तु उसका आदर्श, सभ्यता, संस्कृति, नैतिक पृष्ठभूमि पुष्ट नहीं है तो वह जाति अधिक दिन अपने पाँवों पर खड़ी नहीं रह सकती[1] । इस वक्तव्य से उनकी सांस्कृतिक रचनाओं की सृजनात्मक मनोभूमि स्पष्ट होती है ।

---

1. वासवदत्ता - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.9

वासवदत्ता (1942)

मानव जीवन की अन्तःचेतना को सप्राण और मुस्कान बनाने के महत् लक्ष्य में प्रणीत द्विवेदी की प्रथम कृति है "वासवदत्ता"। इसमें कुल आठ आख्यानात्मक काव्य हैं। वासवदत्ता, उर्वशी, सरदार पूर्णसिंह, कर्ण और कुन्ती, एक बूँद, कुणाल, भिक्षा प्राप्ति, और महाभिनिष्क्रमण। "वासवदत्ता" में संकलित प्रथम काव्य "वासवदत्ता" का कथानक आज से दो हजार वर्ष पूर्व बौद्धकालीन है। गौतम बुद्ध के समय वासवदत्ता नामक एक वेश्या अपने रूप यौवन से पाटलिपुत्र को उन्मत्त कर रही थी। उस समय घर घर में गौतम बुद्ध का आमंत्रण-निमंत्रण होता था। क्योंकि जहाँ वे पहुँच जाते वहाँ धन्य बन जाता था। उस समय एक मधु-ऋतु की संध्या में वासवदत्ता भगवान गौतम के पास पहुँचती है और उसे अपने घर में आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना करती है। उस समय गौतम कहते हैं - "आऊँगा देवी! फिर, होगी जब कभी तुम्हें मेरी टोह बाट में।" जब वासवदत्ता तरुणी से वृद्ध हो जाती है तब उसके रसिक मिलिन्द उसे छोड़ जाते हैं। अब वह व्याधिग्रसित हो जाती है, [illegible]।

आज वासवदत्ता पड़ी है अनाथ।
साथ नहीं कोई,
उसका शरीर दुर्गन्धि है
अंग-अंग सड़ रहा है आज
पीप पड़ गयी है,
व्याधि उपजी है ऐसी कि, आते नहीं वैद्यजी,

---

1. वासवदत्ता - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 4

बाहें अर्गी, ऊर्ध्व श्वास,
मूर्च्छित सी पड़ी है वह ।

उसी समय गौतम, पहुँचते हैं । वासवदत्ता पूछती है, "कौन है ?" गौतम जवाब देते हैं " "तथागत" । "आज मैं अतिथि बनकर आया हूँ ।" करुणार्द्र गौतम ने अपने पाणि से वासवदत्ता के गलित अंगों को शीतलजल छिड़ककर धोया । वासवदत्ता चैतन्य लाभ करती है और गौतम को निर्निमेष नयनों से निहारती रहती है ।

उर्वशी

इसका कथानक महाभारत से स्वीकृत है। उर्वशी, पार्थ के मनोमंडल पर इन्द्रजाल बनकर छा लेने के लिए ही गयी थी । किन्तु वह स्वयं आर्यपुत्र के रूप लावण्य, विक्रम, यश पर मुग्ध हो जाती है । पार्थ उर्वशी का सम्मान आदर करते हैं । उर्वशी समझती है कि उसका सम्मोहन असर कर गया है, और उसी उन्माद में अपना हृदय खोल देती है । पार्थ पिछली सभी घटनाओं को स्वीकार करते हैं किन्तु इस बात से इनकार करते हैं कि वह उर्वशी पर कभी अनुरक्त हुए हैं । उर्वशी का भ्रम दूर हो जाता है और वह वस्तुस्थिति पर पश्चाताप करती है । अर्जुन उसके अनुनय विनय कुछ नहीं सुनते, इस पर उर्वशी अर्जुन को शाप देती है । बृहन्नला के रूप में विराट नगर में अर्जुन यह शापित जीवन व्यतीत करते हैं ।

---

1. वासवदत्ता - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.5

सरदार चूड़ावत

इसकी कथा राजस्थान की ऐतिहासिक घटना है। चूड़ावत को विवाह के कुछ दिन बाद युद्ध में सैन्य संचालन का आदेश प्राप्त होता है। इस पर वह दुःखी होता है। उनकी आँखों से आँसू छलक पड़ते हैं। अनुचर से वह पत्नी को बार बार सन्देश भेजते हैं कि उनकी पत्नी अपने धर्म से विचलित न हो। पति का सन्देह दूर करने के लिए क्षत्राणी बालिका उत्तर में हल्दी से रंगे हुए हाथों से अपना सिर छेद कर पत्रवर के हाथ भेज देती है। सरदार चूड़ावत छिन्न सिर देखकर सब मर्म समझ लेते है और रुद्र के समान कण्ठ में मुण्ड धारण कर महायुद्ध में प्रस्थान करते हैं।

कर्ण और कुंती

इस का कथानक भी महाभारत से गृहीत है। कुंती कर्ण से पाण्डवों की ओर से रणकुल बनकर युद्ध करने का दान माँगती है। किन्तु वे माता की ममता में विचलित नहीं होते। वे अपयश के पथ में चरण धरने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना पसन्द करते हैं। कर्ण के जन्म सम्बन्धी अज्ञात कथा भी उनको विचलित नहीं होने देती। कर्ण कर्त्तव्य पर अपने प्राण की, रक्त की और शिर की भेंट चढ़ाते हैं। कुंती असफल साधना विफलित भिक्षा के समान वापस चली जाती है और कर्ण अखण्डित तप से अरुणोदय से ताम्र स्वर्ण रज की ओर बढ़ते हैं।

एक बूंद

एक बार महान अकाल के कारण देश उष्ण रेत से जलने लगता है। इसी समय आकाश में एक जल की बूंद दीन धरा को देखकर कहती है, चलो पानी बरसा दें, जिससे क्षुधित मानव की रक्षा हो। और बूंदें कहती हैं - "पगली! कहीं एक बूंद से वर्षा होती है।" किन्तु, फिर भी वह अकेली बूंद अंबर से एक किसान के कपोल पर कूद पड़ती है, यह देख कर शेष बूंदें उसकी रक्षा करने के लिए चली जाती हैं। बूंद की कथा सुनकर मेघ मंडल उमड़ने - घुमड़ने लगते हैं और मूसलधार वर्षा होती है। अकालग्रस्त वसुंधरा हरीभरी होती है और धन्य-धान से किसान भी प्रसन्न होते हैं। एक बूंद को अन्य बूंदें सिंहासन पर ले जाती हैं और अभिनन्दन करती हैं। यह कथानक काल्पनिक एवं अन्योक्ति है।

जब समाज का कोई व्यक्ति किसी महान कार्य को उठाने के लिए आगे बढ़ता है, तब सभी उसे निराशा हताश करते हैं, किन्तु जब, वह अपना बलिदान प्रारंभ करता है, तब सभी उसके अनुयायी हो जाते हैं। स्वदेश के ऐसे महामानव की सभी अभ्यर्थना करते हैं।

अशोक पुत्र कुणाल

कुणाल का कथानक ऐतिहासिक है। अशोक पुत्र कुणाल और विमाता, महारानी तिष्यरक्षिता की जीवन - गाथा के आधार पर कवि ने इसकी सृष्टि की है। विमाता तिष्यरक्षिता कुणाल से प्रणय निवेदन करती है और कुणाल इस प्रणय निवेदन को ठुकरा देता है।

महारानी तिष्यरक्षिता इसे अपना घोर अपमान समझती है, और इसका बदला चुकाना चाहती है। वह सप्ताह भर केलिए राज्य करने का वरदान प्राप्त करती है और इसके बाद कुल-कलंकी कुणाल के दोनों नेत्र निकाल लिया और उसे राज्य से निर्वासित किया। कुणाल-दम्पति निर्वासित हो जाते हैं। वे घूमते फिरते एक दिन पाटलीपुत्र के निकट पहुँचते हैं। महाराज अशोक इस अंधे गायक को दरबार में बुलाते हैं। वहीं उसका गायन होता है। कुणाल को अपना परिचय भी महाराज के सम्मुख प्रस्तुत करना पड़ता है। परिचय जानने पर उनके हर्ष की सीमा नहीं रहती है।

सम्राट अशोक निर्वासन की छद्म कथा सुनकर बहुत ही रोषदीप्त होते हैं और कुलघातिनि तिष्यरक्षिता के अंग-अंग छिन्न करने का प्राणदण्ड घोषित करते हैं। उसी समय कुणाल सम्राट के चरणों में झुककर भिक्षा मांगते हैं कि "महाराज, प्रथम हमारा शीश कर दो छिन्न फिर जननी का।" अशोक इस घटना से और भी द्रवित हो उठते हैं, वे उसी दिन कुणाल का राज्याभिषेक का कार्य ग्रहण कर लेते हैं।

"अशोक पुत्र कुणाल" पर कवि ने "कुणाल" शीर्षक एक खण्डकाव्य भी लिखा है। दोनों का मूल कथा रूप एक ही है। अन्तर इतना ही है कि खण्डकाव्य में घटनाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

भिक्षाप्राप्ति

इसका कथानक भगवान बुद्ध के समय की जातक कथा से स्वीकृत हुआ है। अकाल पीड़ितों की रक्षा केलिए एक दिन एक महाभिक्षु भिक्षा मांगते हुए राजा, वणिक, धनिक आदि के पास चले जाते हैं। किन्तु जब वे निराश होकर लौट आयी है तब एक भिक्षुणी आयी और उसने कहा "मैं तुझे दान दूंगी। महाभिक्षु ने

पूछा "माँ तुम्हारे पास अन्न कहाँ है? भिक्षुणी ने उत्तर दिया, मेरा ही अन्न तो महानृप महासेठ, महाश्रेष्ठि के यहाँ भरा है। भिक्षुता ही मेरा धन है। चलो मैं इसी से तुम्हारा श्राप भगाऊँ। उसने भिक्षा के बल पर अकाल पीड़ितों की रक्षा की जिसे महानृप महासेठ न कर पाये थे।

महाभिनिष्क्रमण

इसमें गौतम बुद्ध के गृह-त्याग के समय उनके हृदय में उद्भूत मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन है। एक ओर राज्य सिंहासन, पत्नी, पुत्र, माता, पिता, पुरजन दूसरी ओर कुष्ठग्रसित नर, वृद्ध जर्जर, श्मशानगामी शव के चित्र, सारथी का संवाद याद आते हैं। फिर भी गौतम आत्मबोध के लिए गृहत्याग कर महाभिनिष्क्रमण करते हैं।

"वासवदत्ता" काव्य संकलन के अलावा त्रिवेदी जी ने दो खण्ड काव्यों की रचना भी की है "कुणाल" और "विषपान"। "कुणाल" खण्डकाव्य में "अशोक-पुत्र-कुणाल" की ही कथा आयी है।

विषपान (1947)

विषपान का उपजीव्य भगवान शंकर के विषपान की कथा पर आधारित है। देव लोग असुरों के अत्याचार से पीड़ित, व्यथित, त्रस्त, आतंकित बैठे हैं। अब इन पराजित देवों के लिए कर्म की सन्देश वाहिनी आकाश-वाणी होती है - कि "उठो, चलो, मथकर समुद्र को तुम अमृत का पान करो।"

देवता उठते हैं। सुर-असुर दोनों संधि करके सागर मंथन की तैयारी करते हैं। अमृत की आकांक्षा इतनी प्रबल है कि वे कहते हैं, "नभ में हो तो नभ मथ डालें, रवि शशि उडुगण चूर्ण करें।" इस प्रकार की प्रबल आकांक्षा के साथ, अभियान गीत गाते हुए सब जाते हैं। अमृत के पिपासु शेषनाग को रज्जु और मंदराचल को मंथन-दण्ड बनाकर वे सागर मंथन करते हैं। अमृत के स्थान पर जब कालकूट निकलता है तब सब चौंक पड़ते हैं -

> अमृत हो गया स्वप्न, अरे यह
> क्या था कालकूट निकला ?
> गरल, महाविष, नील श्याम,
> भूतल से आज फूट निकला।[1]

कालकूट की ज्वाला से सब आकुल हो उठते हैं। उनके सामने और एक समस्या आकर खड़ी हो जाती है - "कौन गरल का पान करे अब?" देव और दैत्य दोनों भगवान शंकर से विषपान का निवेदन करते हैं। भगवान शंकर यह आश्वासन देता है कि "मैं तुम्हारी व्यथा दूर कर दूँगा।" भगवान शंकर पार्वती जी से आज्ञा लेकर संसार के कल्याणार्थ कालकूट का पान करते हैं। अंत में कवि की कामना है -

> जय चरण, शरण में जन पाओ,
> मंगलमय! यों ही उठ आओ,
> भवजन्म मृत्यु क्षण में लाओ,
> तुम सा पाकर निज अभिनायक,
> फिर मथे सिंधु, हो अमृत-पान।
> हो सफल साधना का विधान।[2]

---

1. विषपान - पृ. 31
2. वही - पृ. 45

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर प्रणीत इस काव्य के द्वारा द्विवेदी ने यह प्रस्तुत किया है कि हम मृत्यु से लड़कर अमृत का वरण करेंगे उनका यही विश्वास है कि भारत केलिए भगवान शंकर के जैसे अभिनायक की आवश्यकता है ।

मौलिक उद्भावना

द्विवेदीजी ने अपनी कृतियों के भाव-पक्ष को नवीन परिस्थितियों एवं घटनाओं के आविष्कार द्वारा अधिक उदात्त कर दिया है । भाव के उन्नयन केलिए ही द्विवेदी ने कल्पना का सहारा लिया है । 'वासवदत्ता' शीर्षक आख्यान काव्य में भगवान बुद्ध को वासवदत्ता स्वयं अपने तपोवन में आमंत्रित करती है और भगवान बुद्ध के चरणों में अपना रूप यौवन और शरीर समर्पित करने का प्रस्ताव करती है -

अतिथि देव ।
यौवन यह अर्पित पद-पद्म में है,
इसको स्वीकार करो,
यह न तिरस्कार करो,
यौवन यह, रूप यह, जिसे प्राप्त करने को
यति यत्न करते, तपी तपते पंचाग्नि नित्य,
बड़े बड़े चक्रवर्ति मुकुट विसर्जित कर
चाहते अधर का दान, चाहते भृकुटि का दान ।
तप्त उर शीतल करो गाढ़ परिरंभण दे[1] ।

---

1. वासवदत्ता - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.3

इतिहास में यह घटना नहीं मिलती । इस मौलिक कल्पना के द्वारा कवि का लक्ष्य वासवदत्ता के भोगपरक दृष्टिकोण को उद्घाटित करना नहीं बल्कि परित्यक्तों के प्रति करुणाभाव उद्दीप्त करना है । यहाँ कवि ने भगवान बुद्ध को नायक बनाकर वासवदत्ता की मृत्यु के समय उनके आगमन की सूचना देकर निराधार के दुःख की गहराई की ओर इशारा किया है । वासवदत्ता के निमंत्रण पर बुद्ध का उत्तर इसका प्रमाण है -

आज मैं अतिथि नहीं बनूँगा इस गृह में ।

....

आऊँगा देवि ! फिर,
होगी जब कभी तुम्हें
मेरी टोह बाट में ।[1]

उर्वशी के कथानक में उर्वशी द्वारा स्वर्गंगा के स्वर्ण कमल तोड़कर पार्थ के चरणों पर बिखरा देने की घटना का स्मरण कवि की कल्पना प्रसूत बात है -

और,
उस दिन आती थी स्वर्गंगा से जब सहसा
लिए स्वर्ण-कमल
निज पाणि-पल्लव में ।
उत्सुक हो पूछा था -
कैसे मैं निकाल सकी ?
मैं ने तब वे स्वर्ण पंखुड़ियाँ सुधामयी
चरणों में बिखेर दीं,[2] ।

---

1. वासवदत्ता - मोहनलाल द्विवेदी - पृ० 4
2. वही - पृ० 14

प्रस्तुत कल्पना के द्वारा कवि पार्थ के चरित्र की नैतिक दृढ़ता को उद्घाटित करना चाहते हैं ।

"कुणाल" में कुणाल द्वारा कुलघातिनी विमाता तिष्यरक्षिता केलिए क्षमा मांगने की घटना भी कल्पना प्रसूत है ।

पुत्र के हित राज माता की मिले यह दंड,
कौन होगा और इससे पाप अधिक प्रचंड
महाराज ! प्रथम हमारा शीश कर दो छिन्न,
फिर, जननी का शीश होगा कंठ से विच्छिन्न ।
या-विनीत भिखारियों को आज दो यह दान
राज माता को करो, या आज क्षमा प्रदान ।[1]

उपर्युक्त कवि-कल्पना कुणाल के मन की स्वच्छता, त्याग की महत्ता एवं स्नेह के औदार्य का परिचायक है । आद्भुत्य में द्विवेदी का विश्वास है । इसलिए ही अंधे कुणाल को दृष्टिलाभ होते दिखाया है । देखिए -

दिखाई पड़ा अलौकिक दृश्य, वहीं सब सब हो गए विमुग्ध,
लौट आई आँखों में ज्योति, देखते थे कुणाल अब मुग्ध ।[2]

इसी प्रकार पन्त के "लोकायतन" काव्य में निराश देवताओं को समुद्र मंथन केलिए आकाशवाणी सुनाई देती है । यहाँ भी आद्भुत्य के प्रति कवि का विशेष आग्रह व्यक्त होता है । "लोकायतन" के अन्य कई स्थानों में कवि ने अपनी कल्पना

---

1. कुणाल - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.75
2. वही - पृ.75

भूमिका से रंग भरा है । महाभारत में मंथन के समय निकले विष को ब्रह्म की प्रार्थना पर भगवान शंकर पान करते हैं बल्कि द्विवेदी के "विषपान" काव्य के अनुसार देव-दानव दोनों मिलकर शिव से प्रार्थना करते हैं । द्विवेदी का शिव विषपान के पूर्व सती की सहमति भी लेते हैं । किन्तु मूल ग्रन्थ में सती और भगवान के बीच ऐसा वार्तालाप नहीं होता । प्रस्तुत मौलिक कल्पना द्वारा कवि पार्वती के लोक मंगलकारी रूप को ही अभिव्यक्त करते हैं ।

कथानक के बीच-बीच में ऐसी घटनाओं के चयन द्वारा कवि ने भावों को उद्दीप्त करने का स्तुत्य कार्य किया है । द्विवेदी ने जहाँ-जहाँ मौलिकता का सहारा लिया है वहाँ जनमानस में सांस्कृतिक चेतना उजागर करना उनका लक्ष्य रहा है । उनकी सांस्कृतिक रचनाओं का मुख्य उद्देश्य संस्कृति च्युत भारतीय समाज को संस्कार संपन्न बना देना और इसके ज़रिए भारत में गांधी जी के रामराज्य की स्थापना करना है । यहाँ "गीता" का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । गीताकार ने लिखा है कि -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।[1]
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

जब भारत में धर्म की च्युति या अवनति होती है तब मैं स्वयं ही अवतरित हो जाऊँगा । द्विवेदी ने काव्य में भगवान शंकर जैसे अधिनायक की परिकल्पना की है । संस्कृति च्युत भारत के उद्धार के लिए ऐसे महान पुरुषों का जन्म होना नितांत आवश्यक है ।

---

1. भगवद्गीता - चौथा अध्याय, पद-7

सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण

समकालीन तथ्यों के समन्वय द्वारा देश प्रेम की भावना

द्विवेदी जी ने अनामिका में सांस्कृतिक बोध उजागर करने हेतु समकालीन तथ्यों के समन्वय में बल दिया है । वासवदत्ता के आरम्भ में बौद्ध कालीन संस्कृति का जो चित्र उपस्थित किया है उसके द्वारा कवि ने स्वतंत्र भारत को भी चेतावनी दी है ।

स्वर्ण-युग का खिला था मधुर प्रभात
भारत के प्राची में,
देश धन धान्य से पूर्ण था,
थे हम परतंत्र किसी बंधन में,
आए थे कुषाण भी न इस देश में
अपनी थी संस्कृति अछूता, पूत पावन विचारों से
अपना था दिवस, और, अपनी थी सभी रात ।

यहाँ कवि इस तथ्य की ओर ध्यान खींच लेते हैं कि निजी वस्तु का सही रूप में प्रतिष्ठित करना राष्ट्र की निजी सुरक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है जिसका अभाव आधुनिक भारत में वर्तमान रहता है । ऊपर की रेखांकित पंक्तियों से यह तथ्य स्पष्ट होता है । आज देश विदेशीपन के पीछे पागल होकर चलता है ।

---

1. वासवदत्ता – पृ० 1

यहाँ कवि भूत के द्वारा वर्तमान और भविष्य को जोड़ने के इच्छुक दिखाई पड़ते हैं । कुणाल के प्रथम सर्ग में पाटली पुत्र का जो चित्र खड़ा किया है उससे समकालीन संस्कृति का राजनीतिक आदर्श, समाज की स्वतः निर्मित सुखसमृद्धि तथा जन जीवन में व्याप्त नैतिकता की प्रतिष्ठा का परिचय होता है ।

सच पूछो तो, मिला आज ही पृथ्वी को पावन आलोक
यह अशोक बन गयी स्वयं ही पाकर पृथ्वीपाल अशोक
एक ओर गंगा चाँदी से, भरती थी गृह का कोना,
सोना नदी दूसरी ओर थी, नित्य बहाती सोना
::   ::   ::   ::
मुक्त द्वार रहते थे गृह गृह, नहीं अर्गला का था कार्य
पथ पर गिरे रत्न कंचन को पथ पर पा जाते थे आर्य
राजनीति से विरत लोक था सुलझा जटिल ग्रन्थियाँ गूढ़[1] ।

अशोक कालीन संस्कृति की तुलना में आधुनिक संस्कृति कितना पंकिल तथा छिन्नभिन्न बन गयी है । उस ओर कवि पाठकों का ध्यान खींच लेते हैं । समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि के चयन द्वारा कवि वर्तमान सामाजिकों तथा राजनीतिज्ञों को आदर्शवान नागरिक एवं राष्ट्र निर्माता बनने का आह्वान करते हैं । समकालीन तथ्यों के उज्ज्वल अंशों के ग्रहण के साथ साथ कवि ने उसके पंकिल पक्षों पर भी पर प्रकाश डाला है । कुणाल के छठे सर्ग में सम्राज्ञी का आज्ञा-पत्र लेकर जाने के प्रसंग में चर का प्रस्ताव समकालीन स्वैच्छिक शासन व्यवस्था को व्यंजित करता है । यह आज की परिस्थिति में भी ठीक निकलता है ।

---

1. कुणाल - पृ० २-३

दास वृत्ति भी है कितनी यह शासन घातक ।
करना पड़ता सभी, पुण्य हो चाहे पाप ।
कुछ अपना अधिकार नहीं, "हाँ" न करने का
धर्म एक ही जो आज्ञा, शिर पर धरने का
x x   x x   x x
सेवक का कर्तव्य, कार्य सेवा का करना,
स्वामी के सन्तोष कोप को श्रम से भरना,
पराधीनते ! सर्वनाश हो तेरा जग में ।
कुछ न सोचने देती, तू मानव को जग में[1] ।

"भिक्षा प्राप्ति" में भिक्षु का कथन इस परिप्रेक्ष्य में विशेष उल्लेखनीय

महाभिक्षु, मेरे ही धन धान्य,
लूट लूट करके इन लुटेरों ने
खड़ा किया प्रासाद उच्च भवन
छज्जा, कला तोरण और बंदीगान[1] ।

यहाँ पूँजीवादी शासन व्यवस्था की ओर कवि इशारा करते हैं जो आज भी चालू रहती है ।

वस्तुत: समकालीन तथ्यों के कथन द्वारा कवि जनता को [illegible] स्वस्थ नागरिक तथा कुशल एवं चरित्रवान शासक बनने की प्रेरणा देते हैं ।

---

1. वासवदत्ता - पृ. 60

पात्र-परिकल्पना के द्वारा सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण

समकालीन तथ्यों के अलावा द्विवेदीजी ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्रों के उदात्त चरित्र नियोजन द्वारा जनमानस में सांस्कृतिक चेतना स्फुरित करने का महान कार्य किया है। इस हेतु द्विवेदी ने कल्पना प्रसूत पात्रों को भी ग्रहण किया है। कवि के पात्र नियोजन में भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक काल उद्घाटित होते हैं। एक बौद्ध कालीन है तो दूसरा मुगल कालीन, तीसरा राजपूत कालीन, चौथा वर्ग महाभारत जैसे पौराणिक आख्यान का प्रतिनिधि है। पात्र परिकल्पना द्वारा कवि का अभीष्ट है देशवासियों को चरित्रवान बनाना है।

मानवतावादी दृष्टिकोण

"वासवदत्ता" शीर्षक कविता में गौतम के चरित्र चित्रण द्वारा कवि ने जनता में मानवतावादी दृष्टिकोण जागरित करने का प्रयास किया है। परित्यक्त वासवदत्ता के प्रति गौतम बुद्ध के कारुणिक मनोभाव का चित्रण करते हुए कवि जनमानस को उस उदात्त आख्यान की ओर ले जाते हैं जो बौद्ध काल में वर्तमान था। जब वासवदत्ता है जर्जरित एवं रोग ग्रस्त हो जाती है तब बिना बुलाए ही बुद्धदेव उसकी सेवा केलिए आ पहुंचते हैं जिन्होंने एक बार युवति सुन्दरी वासवदत्ता के कामजनित निमंत्रण का तिरस्कार किया।

> करुणामय विलोक शोक युक्त रमणी को,
> कांप उठे करुणा से
> विकल उठे दुःख से।

गौतम ने अपने पुण्य पाणि से
फफोलों पर, घावों पर, आकण्ठ पीप पर
शीतल जल छिड़का,
फिर हाथ से धोया उसे,
जी-सी उठी मृत-सी वासवदत्ता तुरन्त,
देखने लगी सतृष्ण गौतम की मूर्ति को
सेवा की स्फूर्ति को[1] ।

यहाँ कवि इस ओर इशारा करते हैं कि बिना किसी कामना या अपेक्षा के मानव मात्र की निस्वार्थ सेवा करना मानसिक संस्कृति का द्योतक है । धर्म निरपेक्ष समाज सेवा को कवि अनिवार्य मानते हैं । इसीलिए बुद्ध के मुंह से यह सुनाते हैं -

यह आया हूँ, आज देवी,
आज अनिवार्य था आना यहाँ मेरा यह[2] ।

कवि के इस मानवतावादी दृष्टिकोण से "महाभिनिष्क्रमण" शीर्षक कविता में अपना रूपग्रहण किया है । महाभिनिष्क्रमण के लिए उद्यत गौतम के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है । एक ओर अपने जीवन आधार के प्रिय अभिलषित लोगों को छोड़ जाने में दुःख होने पर भी आज उनको लोक कल्याण ही अधिक भाता है । परार्थ के लिए वे स्वार्थ का सहर्ष त्याग करते हैं ।

---

1. वासवदत्ता - पृ.6
2. वही

और जगा आत्मबल,
मिला पुण्य संबल
जो युग-युग के संस्कार
दृढ़ विचार,
रोक नहीं सकता है जिसे कोई आर पार,
देता है हिमाचल पथ बीहड़ निज अवलम्ब
सिन्धु बना बिन्दु
झुक जाता है पदतल में
एक बार दृष्टि फेर
पुनः प्रिया पुत्र के?
चले आर्यपुत्र त्याग पाटलि प्रासादको[1]।

"विषपान" काव्य में भगवान शंकर को विषपान के लिए सहर्ष सहमति देनेवाली पार्वती में भी विश्वकल्याण की भावना अधिक दीप्त हुआ है। वह अपने जीवनाधार पति को मानव कल्याण के लिए समर्पित करती है। पार्वती कहती है

बोली, जाओ हे विश्वम्भर!
आशुतोष, औढ़र दानी!
"पियो गरल विष, कालकूट तुम
कुछ भी हो परिणाम प्रभो।
जिससे होवे भव का क्षेम
वह अभीष्ट अभिराम प्रभो[2]।"

---

1. वासवदत्ता - पृ.68
2. विषपान - पृ.39

"एक बूंद" शीर्षक कविता में कवि कल्पना के सहारे अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं । अकेली बूंद मानव की व्यथा से व्यथित है, वह अंबर से कूद पड़ती है, एक किसान के कपोल पर ।

बोली वह अकेली बूंद -
मुझसे न जाती झेली
व्यथा यह वसुधा की
मानव की क्षुधा की,
माना मैं जलद नहीं,
चाहूं तो फलद नहीं,
किन्तु, सही जाती है, वेदना मुझसे न सही
जाती हूं पृथ्वी में
हरने को व्यथा-भार
नर की क्षुधा अपार ।[1]

किसान मानव केलिए "एक बूंद" आत्म समर्पण करती है । "भिक्षा-प्राप्ति" कविता में भी मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है । यहां एक बूंद के नेतृत्व द्वारा कवि स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्र कल्याण केलिए शंख ध्वनि फूंकनेवाले युगाधार गांधी के नेतृत्व की ओर संकेत करते हैं । वस्तुतः कवि की सांस्कृतिक चेतना राष्ट्रीय जागरण की उक्तियों से अधिक प्रेरणाप्रद बन गयी है । कहीं इस मानवतावादी दृष्टिकोण ने आत्म बलिदान का रूप ग्रहण किया है तो कहीं स्वार्थ का त्याग और कहीं परित्यक्तों की सेवा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है । द्विवेदी का मानवतावाद गांधी जी के दर्शन से प्रभावित है । वस्तुतः समकालीन पात्रों के चयन द्वारा आधुनिक जनमानस में व्यापक मानवतावादी जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करना कवि का अभीष्ट है ।

---

1. वासवदत्ता - पृ.39

नैतिक दृढ़ता की प्रतिष्ठा

द्विवेदी जी ने अपने पात्रों के द्वारा नैतिक आदर्श को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है। "उर्वशी" में अर्जुन, "कर्ण और कुन्ति" में कर्ण "कुणाल" में कुणाल आदि के द्वारा चरित्रगत नैतिकता की सरल सुन्दर व्यंजना हुई है। उर्वशी के प्रणय निवेदन पर अर्जुन का उत्तर उसके नैतिक आदर्श का द्योतक है।

बोले पार्थ -
विश्व सुन्दरी व्यथित न हो,
उच्छ्वसित हो के, व्यर्थ व्याकुल मूर्छित न हो,
मैं हूं अयोग्य सर्वथा ही इस दान के।
संभव नहीं है, यह कार्य आर्ये।
सर्वथा अनार्य।
दुष्कार्य मेरे लिए[1]।

"कुणाल" में विमाता तिष्यरक्षिता के प्रणय निवेदन पर कुणाल की प्रतिक्रिया उसकी नैतिक दृढ़ता की ओर ही इशारा करती है।

मर्माहत-से हे अब कुणाल च्यावन पुष्प बने अस्थिर।
"आर्ये! तुम हो जननी मेरी, सोचो तो, क्या कहती हो फिर?
कैसे यह साहस हुआ तुम्हें, माता। अब राज भवन जाओ,
कुछ पूजन यजन करो जिससे, इस मन में परम शान्ति पाओ[2]।

---

1. वासवदत्ता - पृ॰16-17
2. कुणाल - पृ॰13

कृष्ण और अर्जुन का चरित्र इसका द्योतक है कि बल-विक्रम या शौर्य मानव के संयम, नैतिक बल और दृष्टिकोण की पवित्रता पर निर्भर रहता है। कर्ण की नैतिकता दूसरे प्रकार की है। भावना और कर्तव्य के संघर्ष में मानव की संभाव्य निर्बलता पर कर्ण की विजय का निजी महत्त्व है। माता की ममता के सम्मुख भी वे अपने कर्तव्य तथा प्रण से विचलित नहीं होते। अपने जन्म सम्बन्धी अज्ञात कथा भी उनको विचलित नहीं होने देती। वे कहते हैं -

कैसे यह संभव माँ ?
मेरे ही बल पर गरजता है कौरव-दल,
मेरे ही स्कंधों पर है रण का संभार
मेरे ही कर में आज
निर्भर है विजय हार।
आज कर्तव्य पर चढ़ाऊँगा बलि शीश की,
हृदय की, रक्त की, प्रण की,
त्याग दो दुराशा आज मम परित्राण की[1]।

कर्ण की यह चारित्रिक दृढ़ता कुंती को आत्मशोध के लिए प्रेरित करती है कुंती भी स्वयं आत्मशोध करती है -

होती है व्यथा विशेष,
हाँ। मैं ने ही तुम्हें मेरे नवजात।
अपने गर्भ से निकाल,
अंकित मुख पर संताप,

---

1. वासवदत्ता - पृ.33

कंपित पग, दृढ़ मन, भ्रमित पथ,
त्याग आयी थी कहीं दूर महा निर्जन में
ढकने को कलंक
अंक में न रख सकी,
यह सत्य है इतिहास ।
अपना स्तन्यमय सुत को न पिला सकी,
छाती पर रख मुझे जग में न जिला सकी ।[1]

कुंती का यह आत्मबोध कर्ण की नैतिक दृढ़ता को और भी उदात्त रूप प्रदान करती है । यहाँ कवि प्रलोभन में संयम और हृदय के उदात्त भाव को उद्घाटित करते हैं । कर्ण का आदर्श मातृत्व पर हावी है । वे कहते हैं जिसकी बाँह को मैंने पकड़ी है, उसे नहीं छोड़ूँगा ।" कर्ण अपने प्रण पर अटल रहते हैं । यहाँ भावना का उन्नयन हो जाता है ।

"विषपान" काव्य में कवि ने भगवान शंकर को मानवीय रूप देने का प्रयास किया है । यहाँ धर्मवीर भारती का कथन विचारणीय है "मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अभिभावक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी[2] । इस मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से ही द्विवेदी जी भगवान शंकर को मानवीय धरातल पर ले आया है । शिव की सात्विक मनोवृत्ति ने कवि को अधिक आकर्षित किया है । शिव को धीरोदात्त दृढ़ संयमी, लोक नायक तथा लोक रक्षक के रूप में चित्रित करते हुए कवि अपना अभीष्ट व्यक्त करते हैं -

---

1. वासवदत्ता - पृ.27-28
2. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ.21।

हे करुणामय इस करुणा का
यों लगा रहे मन में विश्राम।
मुझे उस गण का तुम न ध्यान।
अब चरण शरण में जन पाओ
मंगलमय यों ही उठ आओ,
नवजन्म मृत्युक्षण में लाओ।
तुम सा पाकर निज अभिभावक
फिर क्यों चिन्ता, हो अनुष्ठान।
हो सकल साधना का विधान।[1]

आज के चंचल जीवन और भौतिक दृष्टिकोण में मानव को उचित मार्ग-दर्शन देने के लिए भगवान शंकर जैसे अभिभावक की आवश्यकता है। 'कुणाल' काव्य में तिष्यरक्षिता की छद्म राजाज्ञा पढ़कर कुणाल की प्रतिक्रिया द्वारा उस के चारित्रिक पवित्रता की ओर कवि इशारा करते हैं -

ले कुणाल ने पत्र ध्यान से उसको देखा,
मुखमण्डल पर खिंची एक नव स्मित की रेखा,
बोले यह राजाज्ञा है, इसका पालन हो,
इसी प्रकार, अर्थ सोचा, पञ्चानन हो।
राजाज्ञा फिर पूज्य पिता की है यह इच्छा,
यह मेरा सौभाग्य, पूर्ण हो यह सदिच्छा[2]।

माता-पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का परम कर्त्तव्य है। इसलिए कुणाल राजाज्ञा को सानन्द ग्रहण करते हैं। यहाँ कवि ने कुणाल के

---

1. विषपान - पृ. 45
2. कुणाल - पृ. 34-35

चारित्रिक चरित्र को नवयुवकों केलिए मार्ग-दर्शन देने केलिए ग्रहणकिया है । कवि की कामना है कि ऐसे चरित्रवान युवकों में राष्ट्र सुरक्षित रहेगा । छद्म पत्र के द्वारा कुणाल को नेत्रहीन कराया गया और देश से निर्वासित किया गया फिर भी तिष्यरक्षिता केलिए अशोक से कुणाल की क्षमा याचना उसकी चारित्रिक गरिमा एवं मातृवत्सल्य का निशान है । कुणाल कहते हैं -

पुत्र के हित राजमाता को मिले यह दंड,
कौन होगा और इससे पाप अधिक प्रचंड
महाराज ! प्रथम हमारा शीश कर दो छिन्न,
फिर, जननी का शीश होगा कंठ से विछिन्न ।
या - विनीत भिखारियों को आज दो यह दान
राजमाता को करो, या आज क्षमा - प्रदान ।[1]

अपने प्राण को भी त्यागकर माँ की रक्षा केलिए सन्नद्ध कुणाल की चारित्रिक पवित्रता एवं गरिमा बिलकुल स्तुत्य है । कुणाल का चरित्र क्षमा का पर्याय है । कुणाल में कहीं भी भोग का उन्मादन नहीं मिलता । त्याग उनके जीवन का सम्बल है । यह कुणाल के व्यापक मानवतावादी दृष्टि कोण का द्योतक है । कुणाल में द्विवेदी जी ने भावों का अभिनन्दनीय आदर्श ही प्रस्तुत किया है ।

समभाव की प्रतिष्ठा

सरदार सुजावत में द्विवेदी जी का दृष्टिकोण बिलकुल नया है । यहाँ कवि स्त्री तथा पुरुष दोनों को समभाव से देखने का प्रयास करते हैं । सरदार सुजावत की नववधू का धैर्य एवं साहस बुन्देल खण्ड की वीर क्षत्राणी रानी लक्ष्मी बाई से भी अधिक उदात्त भूमि को स्पर्श करता है । रानी लक्ष्मी बाई के समान रणभूमि में

---

1. कुणाल - पृ.75

प्रवेश न करने पर भी उसकी मानसिक दृढ़ता बिलकुल स्तुत्य है । नववधू क्षत्राणी अपने पति चूड़ावत के सन्देह-कीट को दूर करने केलिए अपना सिर काटकर उपहार के रूप में भेज देती है और इस प्रकार उसे निश्चिंत कर देती है ।

हल्दी का चढ़ा था रंग,
जिन पाणि-पल्लव में सुरंग,
उन्हीं अरुण हाथों से लेकर तलवार तीक्ष्ण हैं ।
[बिजली की विदाई में]
रानी ने, उस क्षत्राणी ने,
निज शिर को दिया छिन्न
दिया उसे हाथ में
सो गई परिणय की इस सुहाग रात में
सो गई मिलन के विरह प्रभात में ।

रानी का यह उत्सर्ग चूड़ावत को अधिक शौर्य और शक्ति प्रदान करती है । स्वाधीनता-संग्राम के अभियान को प्रेरणा देने केलिए कवि ने इस राजनीतिक घटना को काव्य रूप दिया है । वह वीर क्षत्राणी आधुनिक नारियों केलिए मार्गदर्शिका है ।

दाम्पत्य प्रेम में पातिव्रत्य पर ज़ोर

द्विवेदी जी ने दाम्पत्य जीवन को भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अंकित किया है । भारतीय संस्कृति के अनुसार दाम्पत्य जीवन में पतिभक्ति की चरम सीमा अपने पति के साथ सती होने में है । कवि सरदार चूड़ावत के मुख से इस आदर्श को सुरक्षित रखने की ओर संकेत करते हैं -

---

1. वासवदत्ता - पृ.24

करके पराजित शत्रु - दल बल को आऊँगा,
साथ में तुम्हारे प्रिय जयश्री को लाऊँगा,
किन्तु आ पाऊँ नहीं,
तो तुम सती होना यहीं ।
विचलित होना न कहीं
रखना अकलंकित, प्रिय अपने सुहाग को
अविचल अनुराग को[1] ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी का धर्म, व्रत, एवं नियम एक ही है, वह है मनसा, वाचा और कर्मणा पति-पद प्रेम[2] । आपत्तिकाल का सहयोग ही उसके पति प्रेम की कसौटी है । स्त्री के इस मौलिक अधिकार को साग्रह प्राप्त करने के लिए काचना सचेष्ट हुई है । राज्य से निर्वासित अपने पति कुणाल से वह कहती है -

बोली गद्गद् कण्ठ काचना, नाथ, तुम्हारा तजकर साथ,
कहाँ सुखी होगी यह दासी छोड़ तुम्हारा पावन हाथ ।
पाणि ग्रहण था किया, किया था, तब तो तुमने ही संकल्प,
कभी तजोगे इसे नहीं तुम, कुछ भी सुख दुःख का हो कल्प[3] ।

"महाभिनिष्क्रमण" में गौतम बुद्ध की पत्नी नारी के इस अधिकार से वंचित है तो कुणाल पत्नी काचना यह साग्रह प्राप्त करती है । "विषपान" में पार्वती को आदर्श भारतीय पत्नी के रूप में उपस्थित किया गया है । एक धर्मपत्नी होने के नाते वह अपने पति के लोक मांगलिक कार्यों में सहयोग देती है । शिव को विष का पान करने के लिए वह सहर्ष सहमती देती है[4] । कल्पना प्रसूत इस घटना के

---

1. वासवदत्ता - पृ.23
2. रामचरितमानस - अरण्यकाण्ड - पृ.4/9
3. कुणाल - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.37
4. विषपान - पृ.39

द्वारा पौराणिक भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्यों को उद्घाटित करना ही कवि का लक्ष्य रहा है । आत्मीयजनों के साथ सुख दुःख भोगने केलिए राजप्रासाद के सुखों का तिरस्कार करनेवाली कामिनी का हृदय कितना विशाल है । सर्वमंगल कामना से अपने पति को विश्राम केलिए सहर्ष सम्मति देनेवाली पार्वती के व्यक्तित्व का इससे अधिक और क्या विकास होगा । यहाँ देश प्रेम की उत्कृष्ट भावना के साथ-साथ वीर रस का उन्नयन भी दर्शनीय है ।

भारतीय संस्कृति के मूल्यों के अनुसार गृहस्थ जीवन की अवधि को पूर्ण कर मनुष्य वानप्रस्थ में प्रविष्ट होता है । इस आश्रम में पति-पत्नी दोनों एक साथ वैराग्य ग्रहण करते हैं । कुणाल में अशोक और रानी तिष्यरक्षिता दोनों शान्ति की आवश्यकता समझते हुए वानप्रस्थ को ग्रहण करते दिखाया गया है ।

तभी आ गए महान अशोक और सम्राज्ञी भी थी साथ,
आज दोनों तन पर काषाय, झुके थे दोनों ही के माथ,
:: :: :: ::
हो गए सभी मनोरथ पूर्ण, रही है साथ न कोई शेष,
उचित अब यही करें सब त्याग, देह पर हो काषाय विशेष[1] ।

अशोक सन्यास ग्रहण करते हुए आत्मज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं । यहाँ भारतीय संस्कृति के मूल तत्व जीवनगत आध्यात्मिक उद्देश्य की प्रतिष्ठा संपन्न होती है ।

युद्ध कर, जनपद अगणित जीत, गया हो फिर मन जैसे हार,
विभव वैभव में कहीं न तृप्ति, तृप्ति है जहाँ आत्म उद्धार[2] ।

---

1. कुणाल - पृ.82
2. वही - पृ.82

प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों की अपूर्व विशेषता है भोग और त्याग। यह जीवन के सर्वांगीण विकास केलिए आवश्यक है। "कुणाल" में अशोक के जीवन का पूर्वार्द्ध भोग अथवा प्रवृत्ति का अनुसरण करता है और उत्तरार्द्ध में वह त्याग अथवा निवृत्ति केलिए उद्यत होता है।

शिष्टाचार

शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है। मानव जीवन में व्यावहारिक सौष्ठव केलिए शिष्टाचार आवश्यक है। मानवीय सम्बन्धों को श्रेष्ठता देनेवाले द्विवेदी जी की रचनाओं में शिष्टाचार का सहज रूप उपलब्ध होता है। पुरुष विशेषतः परस्त्री या स्त्री से बातचीत करते समय शिष्टाचार का पालन करना नितांत आवश्यक है। द्विवेदी जी के पात्रों ने इसका पालन किया है। वासवदत्ता और गौतम दोनों आपस में "देव" तथा "देवी" के सम्बोधन से बातें करते हैं -

अतिथि देव !
यौवन यह समर्पित पद-पद्म में है[1]।

आओ देवी ! फिर
होगा जब कभी तुम्हें
मेरी टोह बाट में[2]।

बड़े भाइयों से बातें करते वक्त "आर्य" शब्द का प्रयोग करते हैं। उर्वशी पार्थ को सम्बोधित करती है कि -

---

1. वासवदत्ता - पृ. 3
2. वही

वह दिन स्मरण है आर्य ?[1]

शिष्टाचार के अनुसार पत्नी पति को स्वामी, नाथ, प्रियतम आदि कहती है -

याद है प्रियतम ! यहीं पर कभी हम तुम मिले ।[2]
पाओगे पद पास सदा ही, दासी को मेरे स्वामी ।[3]
नाथ, असम्भव है यह सब कुछ साथ चलूँगी मैं निश्चय ।[4]
क्या कहती हो प्रिये ? विकल क्यों ।[5]

भारतीय संस्कृति के अनुसार अतिथि सत्कार मानव का धर्म है । वासवदत्ता में अर्जुन उर्वशी का सत्कार करते हैं -

आओ वन्दनीय, पूजनीय,
मेरा सौभाग्य परम,
परम आनन्द आज,
गौरव किया, मुझे पद-रज-पराग से
पावन अनुराग से ।[6]

---

1. वासवदत्ता - पृ.13
2. कुणाल - पृ.61
3. वही - पृ.38
4. वही - पृ.37
5. वही - पृ.36
6. वासवदत्ता - पृ.11

तत्वतः द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्यों के प्रशंसक तथा समर्थक हैं। भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्यों को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में अंकित करने में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। यह प्रक्रिया पारम्परिक लगते हुए भी मूल्य च्युति के अवसर पर ऐसे मूल्यों के पुनर्स्थापन की अनिवार्यता अवश्य जान पड़ती है। द्विवेदी जी सही प्रकार के अनुशासन व अनुशीलन के अधीन जान पड़ते हैं। अनुशीलन की यह तीव्रता वे व्यक्ति पर आरोपित करते हैं। इसीलिए कई प्रसंगों से उन्होंने बातों को चुना है। "कामना" और "हाड़ी रानी" जैसी पति परायण और वासवदत्ता जैसी नारियां द्विवेदी के मानस की सृष्टि हैं। इनके द्वारा कवि एक ओर युग को उद्बोधन दे रहा है और दूसरी ओर प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अपार आस्था तथा विश्वास भी व्यक्त करता है। इन सबके मूल में द्विवेदी का एकमात्र लक्ष्य उच्च सांस्कृतिक चेतना सम्पन्न आदर्श राष्ट्र का निर्माण ही है।

अध्याय - सात

सोहनलाल द्विवेदी का शिल्प विधान

अध्याय - सात

मोहनलाल द्विवेदी का शिल्प - विधान

शिल्प का स्वरूप

साहित्य में शिल्प से मतलब रचना का अभिव्यक्ति-पक्ष या रचना-पक्ष से है । शिल्प-विधि के लिए अंग्रेज़ी में "टेक्निक्" शब्द प्रयुक्त है । रचना के उस व्यवस्था के विधि-विन्यास से ही इसका सम्बन्ध है । "शिल्प-विधि" रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा जोखा है, जिसके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है । अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ अवतरित हुई है । शिल्प-विधि "रचना-क्या" इसका उत्तर न देकर "रचना कैसी है" पर अधिक ज़ोर देती है[1] । काव्य की शिल्प-विधि कवि की उर्वर कल्पना एवं मौलिक सूझ पर निर्भर रहती है । इसलिए काव्य में शिल्प विधि का अर्थ वैज्ञानिक क्षेत्र की अपेक्षा अधिक नवीनता और लोचपूर्ण है काव्य की शिल्पविधि के कई अंग होते हैं - बिम्ब, प्रतीक, छन्द आदि जो काव्य को प्रभावोत्पादक बना देते हैं ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ॰कैलाश वाजपेयी - पृ॰17

द्विवेदी द्वारा गृहीत काव्य-शिल्प

रचनाकार अपने काव्य के माध्यम केलिए उपयुक्त शिल्प को स्वीकार करता है । इसकेलिए कोई पूर्व निर्धारित विधि-विधान तो नहीं है । अपनी अनुभूति केलिए उपयुक्त शिल्प गढ़ते समय शिल्प विचार एक अलग कड़ी का रूप धारण करता नहीं क्योंकि लेखकीय संवेदना का शिल्पविचार के साथ अटूट सम्बन्ध है । रूप और भाव को अलग अलग करके इसपर विचार नहीं किया जा सकता । सोहनलाल द्विवेदी ने काव्य की विभिन्न शिल्प विधियों को स्वीकारा है । परम्परा को मानकर उन्होंने खण्डकाव्य, प्रबन्ध काव्य तथा गीति काव्य लिखे हैं । लेकिन द्विवेदी की विशेषता इस बात में है कि प्राचीन काव्य रूढ़ियों को अपनाते समय भी उन्होंने अपना अलग शिल्प निर्मित किया है । अतः सैद्धान्तिकता के प्रति उनका लगाव कम है और साथ ही परम्परा को मानते हुए एक अन्वेषणात्मक कौतुक को बनाये रखना भी उनका ध्येय रहा है ।

खण्डकाव्य का सामान्य विवेचन

खण्ड काव्य में समाज या किसी व्यक्ति के जीवन के किसी एक अंश, रूप या पक्ष का चित्रण होता है । विश्वनाथ कवि राज ने साहित्य दर्पण में खण्ड काव्य का सूक्ष्म विवेचन करते हुए लिखा है - खण्डकाव्य भवेद् काव्यस्यैक देशानुसारि[1] च: अर्थात् महाकाव्य के एक देश या अंश का अनुसरण करनेवाला काव्य खण्डकाव्य कहलाता है । किन्तु खण्डकाव्य को काव्य खण्ड या महाकाव्य का एक संक्षिप्त रूप समझना बड़ी भूल है । खण्ड काव्य की कथा वस्तु जीवन की किसी मार्मिक भावोत्तेजक घटना से सम्बन्धित होती है । खण्डकाव्य में निहित अनुभूति एक समग्र जीवन की

---

1. साहित्य दर्पण - विश्वनाथ कविराज - पृ.328

प्रभावात्मकता से बनता है । जीवन के कई मर्मस्पर्शी मुहूर्तों का सम्मिलित प्रभाव कवि के हृदय पर पड़ता है । इस प्रेरणा के बल पर जो रूप खड़ा होता है वह खण्ड-काव्य कहलाता है ।

हिन्दी साहित्य कोश में खण्डकाव्य की जो परिभाषा दी गयी है, अधिक वैज्ञानिक लगती है । उस परिभाषा के अनुसार खण्डकाव्य के मुख्य लक्षण ये हैं -

1. खण्डकाव्य के कथानक में एकात्मक अन्विति हो ।
2. अप्रासंगिक कथा का समावेश न किया जाय ।
3. कथा में एकांगिता, एकदेशीयता तथा कथा विन्यास में क्रम-आरंभ, विकास, चरम सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो । एकांगिता के फलस्वरूप आकार में लघुता, उद्देश्य में महाकाव्य की सी महनीयता का अभाव तथा गीत के लक्षणों का समावेश ।
4. खण्डकाव्य के कवि का दृष्टिकोण उतना व्यक्ति निरपेक्ष या वस्तुपरक नहीं रहता जितना महाकाव्य केलिए अपेक्षित है । क्योंकि खण्डकाव्य में किसी सामाजिक या जीवन दर्शन सम्बन्धी सत्य का उद्घाटन मात्र किया जाता है ।
5. कथा विन्यास में नाटकीयता, संक्षिप्तता चूंकि कथावस्तु भावात्मक अधिक होती अतः गीति काव्य की भाव प्रवणता और तीव्र अनुभूति खण्ड काव्य में जितनी अधिक होती है, उसका प्रभाव भी उतना अधिक होता है ।
6. खण्ड काव्य का कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित, प्रतीकात्मक किसी भी प्रकार का हो सकता है ।
7. छंद, सर्ग सम्बन्धी नियम कठोरता से पाला नहीं जाता । बीच बीच में गीतों का प्रयोग भी इसकी एक विशेषता कही जा सकती है ।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - 1, ब्रजेश्वर शर्मा - पृ.274-275

खण्डकाव्य में रस-परिपाक पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता । केवल यही बात ध्यान में रखी जाती है कि वर्णित भाव सहृदयों के हृदय को प्रभावित कर सके ।

द्विवेदी जी के खण्डकाव्यों का वस्तु-विन्यास

प्राचीनता के प्रति द्विवेदी जी के मन में अपार श्रद्धा है । इसलिए द्विवेदी जी ने इतिहास एवं पुराण से अपने खण्डकाव्यों के कथा-सूत्र का चयन किया है । "कुणाल" और "विषपान" द्विवेदी जी के दो खण्डकाव्य हैं । कुणाल का सम्बन्ध अशोक कालीन इतिहास से तथा विषपान का सम्बन्ध महाभारत से है । द्विवेदी जी ने अपने ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथानकों के द्वारा युगीन समस्याओं का पुरस्करण एवं समाधान प्रस्तुत किया है ।

मौर्यवंश के सम्राट वृद्ध अशोक की सम्राज्ञी, विमाता तिष्यरक्षिता के प्रणय निवेदन पर अशोक पुत्र कुणाल की प्रतिक्रिया की मर्मांतक कथा ही "कुणाल" काव्य की रंगभूमि है । घटना-विधान एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण को लेकर इसकी कथा तेरह सर्गों में गुंथी गयी है । इसमें प्रत्येक पात्र का परिचय देने केलिए स्वतंत्र सर्ग की रचना हुई है जिससे काव्य में विस्तार आ गया है । उदाहरण केलिए कुणाल, तिष्यरक्षिता, अशोक आदि सर्गों के द्वारा कवि प्रस्तुत पात्रों के चरित्रोद्घाटन करते हैं । साथ ही समकालीन उच्च आदर्शों के प्रति कवि का श्रद्धा-भाव भी प्रकट होता है । "कुणाल" में कुणाल के चरित्र की असाधारण दृढ़ता और सहन शक्ति भारतीय जीवन-दर्शन के अनुकूल रहा है । उसकी चारित्रिक गरिमा की रक्षा केलिए ही वह निरपराध होता हुआ भी कठोर से कठोर दण्ड सहर्ष स्वीकार करता है । इस प्रसंग में उसने राजाज्ञा के प्रति जो अनुल्लंघनीयता का भाव दिखाया है, वह भी प्रकारान्तर से उसके चारित्रिक पवित्रता का अंग बन गया है ।

कुणाल के चरित्र का आख्यान ही नहीं सामयिक जीवन में भी सार्वभौमिक मूल्य हैं । तत्कालीन जीवन के यथातथ्य चित्रण में कवि का आशय अपने प्राचीन कृतित्व की ओर ध्यान आकृष्ट कर राष्ट्रीयता की भावना भरना है ।

रूपगर्विता, उन्मुक्त प्रेमाश्रय की पुजारिणी, अतृप्त वासनाओं की समष्टि और अपनी रक्त-गत कुत्सित मनोवृत्तियों से घिरी नारी कितनी क्रूर और भयावह हो जाती है, तिष्यरक्षिता का चरित्र इस का साक्षी है । वह वृद्ध अशोक की युवति पत्नी है । वह अशोक के वैभवपूर्ण राज्य की अधिकारिणी है । अधिकार मद में और विलास प्रवाह में पड़कर वह कर्तव्य-अकर्तव्य को भूल गयी है । जब उसका अनुचित प्रस्ताव अस्वीकार किया जाता है तब अकस्मात उसकी चारित्रिक चेतना जाग उठती है और वह अपनी करनी पर पछताती है । किन्तु दूसरे ही क्षण वह रोष-मग्न होकर जो कठोर आज्ञाएं प्रचारित करती है, वह उसकी जैसी स्थिति की राजमहिषी के लिए स्वाभाविक ही है ।

अशोक जैसे दुर्धर्ष राजा को अकर्मण्य समस्त कार्य व्यापारों से अनभिज्ञ और स्त्रैण चित्रित किया है जो कुणाल के उदात्त चरित्र को और भी गरिमा मण्डित बना देने में सहायक कार्य करता हैं ।

"कुणाल" में कुणाल के चरित्रवान व्यक्तित्व के उच्चतम यज्ञ-त्याग एवं उत्सर्ग को उद्घाटित करना कवि का लक्ष्य एवं साध्य रहा है । इस दृष्टि से काव्य की इति कुणाल के निर्वासन पर हो जाना चाहिए था । किन्तु यहाँ कथा एक बार दम तोड़कर फिर उठती है । कवि ने भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों के अतिशय मोह में पड़कर कथानक को आगे बढ़ाया तथा पुनर्मिलन, क्षमादान, राज्याभिषेक और कषाय ग्रहण की कथा भी जोड़ दी । कथानक का यह पुनःविकास

केन्द्रीभूत प्रभावात्मकता को धूमिल बना देता है ।

सर्गों का नामकरण पात्र या घटना के आधार पर किया गया है और संपूर्ण काव्य का नामकरण प्रमुख पात्र कुणाल के आधार पर है । 'कुणाल' का मुख्य रस शान्त है । अन्तिम सर्ग, अशोक के काषाय ग्रहण में शान्त रस का परिपाक हुआ है । बीच बीच में करुण रस की धारा भी बही है ।

कुणाल का काव्य-विस्तार एक प्रकार से खण्डकाव्य के सिद्धान्त तत्व के अनुकूल नहीं है । काव्य के आकार विस्तार में त्रिवेदी जी ने वर्णनात्मक प्रसंगों को ग्रहण किया है । काव्य के प्रारम्भिक सर्ग में कवि ने भूमिका के रूप में पाटलीपुत्र नगर, कुणाल के बाल्य और तारुण्य तथा अशोक का वर्णन करते हुए कई पृष्ठ रंगे हैं । वर्णनात्मकता के अतिशय मोह के कारण खण्ड काव्य के लिए वांछित जिज्ञासा और उत्सुकता ठीक तरह से उद्बुद्ध नहीं होती । किन्तु फिर भी इस से काव्य में कहीं भी नीरसता या एकरसता उत्पन्न नहीं हुई है । काव्य की घटना योजना में गतिशीलता सुरक्षित है ।

इसी प्रकार प्रबन्धात्मक गतिशीलता के बीचों बीच गीतों का प्रवेश भी नियमानुकूल नहीं लगता है । किन्तु यह कवि के नये प्रयोग का परिचायक है । कलात्मक दृष्टि से ये गीत उच्च कोटि के हैं । उसको कवि की शिल्पगत मौलिकता मानना चाहिए । राखी को सम्बोधित करते हुए कई गीत लिखे गए हैं -

आया सुभग सवेरा,
          राखी ।
आशा की निद्रा है टूटी

अरुण किरण अंबर में फूटी
किया मलय ने फेरा
राही !
आया सुभग सवेरा !
डाल डाल में फूटी कोंपल
स्वर्णिम, ताम्र, नील औ' उज्ज्वल
कितने रंग बिखेरा ?
राही !
आया सुभग सवेरा ![1]

यहाँ कवि ने भाव के आन्तरिक संगीत के साथ स्वरलय आदि बाह्य संगीत की भी योजना की है । "विश्राम" काव्य में भी ऐसे गीत गूँथे गये हैं ।

"विश्राम" में द्विवेदी ने समकालीन समस्याओं एवं उनका समाधान प्रस्तुत करने के साथ साथ शंकर का पुनर्सृजन करते हुए उन्हें मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया है । वास्तव में मानवीय पात्र ही मानव पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं इसलिए कवि कहते हैं -

तुम ना पाकर निज अभिनायक
फिर क्यों सिंधु, न हो अमृत-पान !
हो सकल साधना का विश्राम ![2]

---

1. कुणाल - पृ.48-49
2. विश्राम- पृ.45

द्विवेदी जी के पात्रों के पुर्नसृजन में स्वाभाविकता है । उनके पात्रों में सहज मानवीयता की प्रतिष्ठा का प्रयास दृष्टिगत होता है । किन्तु 'कुणाल' और 'विषपान' में कहीं कहीं अप्राकृतिक तत्वों का समावेश भी हुआ है । जैसे कुणाल के नेत्रों में ज्योति के आजाने के अलौकिक चमत्कार का वर्णन, विषपान में आकाशवाणी के द्वारा निराश देवताओं को समुद्र मंथन के लिए प्रेरणा देना आदि बिल्कुल अप्राकृतिक और अलौकिक प्रतीत होता है ।

द्विवेदी जी ने अपने पात्रों के प्रतिष्ठित रूप को सुरक्षित रखते हुए उनका पुनर्निर्माण किया है । शंकर, सती, कुणाल, तिष्यरक्षिता, अशोक आदि इस कथन के साक्षी हैं । शंकर देवकुल का है फिर भी मानव के अधिनायक के रूप में उसका पुनर्निर्माण हुआ है । पति शंकर को जगत के कल्याणार्थ विषपान के लिए सहर्ष सहमति देनेवाली पत्नी के रूप में सती का चित्रण कवि के परिवर्तित दृष्टिकोण का नमूना है । यहाँ शंकर और सती के पौराणिक तथा धार्मिक स्वरूपों के साथ उन्हें समाज तथा राष्ट्र सापेक्ष रूप में ग्रहण किया है । पौराणिक चेतना को देश व राष्ट्र का वाहक बनाया गया है । द्विवेदी ने दोनों पात्रों के द्वारा समाज एवं राष्ट्र के प्रति एक बौद्धिक जागरूकता का दर्शन कराया है । 'कुणाल' में निज तिष्यरक्षिता पर दमित वासना का रंग चढ़ा है फिर भी वे पूज्या हैं, आर्या हैं । वह अपनी करनी पर पश्चाताप करती है -

> क्षमा माँगूँ कैसे मैं आज ? किया मैंने था, कितना पाप ?
> देव दुर्लभ सुत को पा गोद, दिया था मैंने उसको शाप ।
> क्यों न यह धरा हुई सौ खंड, उसी में धंस होती मैं चूर्ण,
> आह, विधि ने मेरे ही व्याज, कौन सी इच्छा की पूर्ण ।[1]

---

1. कुणाल - पृ. 79

अलावा इसके, द्विवेदी जी ने मानव और मानवीय सम्बन्धों - मानव के पारिवारिक सामाजिक और राजनैतिक जीवन-का कुशल अंकन किया है। मानवेतर सृष्टि प्रकृति को केवल अलंकरण या परिस्थिति द्योतन केलिए स्वीकृत है। "कुणाल" में अशोक के पारिवारिक, राजनैतिक तथा तत्कालीन सामाजिक जीवन का सफल अंकन हुआ है। मानव जीवन के सभी पक्षों का अंकन किसी एक ही खंड काव्य में मिलना कठिन है। बल्कि द्विवेदी जी ने केवल "कुणाल" की रचना के द्वारा यह महान कार्य कर दिखाया है। ~~किन्तु प्रबन्ध के ... का ... ...~~ किन्तु उसमें महाकाव्य की जैसी विराटता और भव्यता का अभाव है। यहाँ आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई का कथन विचारणीय है - यों तो साहित्य शास्त्र की शाब्दिक व्याख्या के अनुसार "कुणाल" भी अच्छा महाकाव्य कहा जा सकता है पर वास्तव में यह एक खण्डकाव्य है। उसमें कुणाल के जीवन से संबंध रखनेवाली एक ही घटना मुख्य रूप से चित्रित है। वह है सौतेली माता की आसक्ति पर कुणाल की प्रतिक्रिया। इस घटना के सूत्र में सारा काव्य संजोया हुआ है। देश, काल और चरित्र का इतना विस्तार नहीं है कि इसे हम महाकाव्य कह सकें। किंतु खण्डकाव्य की दृष्टि से यह एक सफल रचना है[1]।

"विषपान" में केवल राजनीतिक पक्ष को ग्रहण किया गया है। इस वीर काव्य की रचना के मूल में एक मनोवैज्ञानिक कारण द्रष्टव्य है। उस समय का मध्यवर्गीय समाज ब्रिटीश साम्राज्यवाद से आतंकित था। राजनीति के क्षेत्र में विदेशी सत्ता का प्रभाव देखकर उस वर्ग में असन्तोष की भावना उत्पन्न हुई। यह बल पाकर काव्य के क्षेत्र में एक सक्रिय रूप धारण करता है। इस आतंक का सामना करने केलिए कर्तनिष्ठ नेताओं की आवश्यकता थी। उस अभाव की पूर्ति करने हेतु और सुप्त भारतीयों को जागरित करने केलिए द्विवेदी जी ने शंकर की विषपान कथा को ग्रहण किया। यहाँ कवि का राष्ट्र-प्रेम और उसकी दायित्व-भावना उभर कर सामने आती है।

---

1. कुणाल की भूमिका - नन्ददुलारे वाजपेयी।

वस्तुविन्यास में नाटकीय तत्व

द्विवेदी जी ने अपनी रचनाओं को अधिक रोचक और औत्सुक्य प्रदान करने के लिए मौलिक तथा नाटकीय प्रसंगों को ग्रहण किया है ।

पाटलीपुत्र के नगर वर्णन से 'कुणाल' काव्य का आरम्भ होता है जिससे नाटक का रंगमंच तैयार होता है -

जन संकुल आकुल नाट्य भवन, जन संकुल गृह के वातायन,
बैठा रनिवास वहाँ शोभन, सुषमा बरसी क्षण-क्षण नवीन
सामंत, सभासद, महामात्य, सेनाधिप, योधा, भट उदात्त,
वैदिक, औमापिक, धर्म आप्त, मंत्रीसे यथापद सुखासीन ।
गूँजी शंखध्वनि कर निनाद, सुषमा बनी, हरती प्रमाद,
दृश्योद्घाटन का था प्रसाद, हो गए नव-गृह दृश्य हीन ।
:: :: :: ::
कुसुमायुध बन आया कुणाल, कर लिए पुष्प धन्वा विशाल
शिव के त्रिनेत्र हो रहे लाल, जलता था बना काम व्याकुल ।
पीछे रति के मादक माया, फैलाती थी स्वप्निल छाया,
लेकर के कनकमयी काया, करती थी जनमन को आकुल ।

प्रस्तुत पंक्तियों में एक सुसज्जित नाटकीय रंगमंच का और आगामी दु:ख का आभास होता है । तिष्यरक्षिता के प्रणय निवेदन से काव्य में संघर्ष आरंभ होता है । तिष्यरक्षिता का प्रतिशोध संघर्ष की चरम प्राप्ति का अंग है ।

---

1. कुणाल - पृ.5 (संक्षिप्त संकलन)

कुणाल की आँखें निकालकर उन्हें निर्वासित करने का अंत काव्य की चरम परिणति है। यहाँ काव्य के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

कुणाल में कवि ने कथानक की गतिशीलता केलिए विवरणात्मक शैली को ग्रहण किया है। प्रणय निवेदन सर्ग में तिष्यरक्षिता की ओर से रतिभाव की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में ही की गयी है। कुणाल के संवादों में नाटकीयता की अपेक्षा भावुकता और मृदुता अधिक है। यह भावुकता एवं मृदुता कारुणिक प्रसंगों के समावेश के कारण हुआ है। तिष्यरक्षिता का प्रणय निवेदन सुनिए -

कुछ समझा, कुछ देखा तुमने, है जगजीवन में सार कौन ?
अलि क्या कहता सरसिज से सरसिज खिल उठता त्याग मौन
.. ..
अनजानपथिक पावस ऋतु में सहसा निज गृह को मुड़ता है।
क्यों दीपशिखा का स्पर्श, मर्दन करने आता पतंग ?
क्यों लतिका है आकुल होती, पाने को तरु का सघन संग ?

माता के प्रणय निवेदन से मर्माहत से अस्थिर चित्त कुणाल प्रशान्त बनकर कहते हैं -

आर्ये! तुम हो जननी मेरी, सोचो तो क्या कहती हो फिर ?
कैसे यह साहस हुआ तुम्हें, माता! आज राज भवन जाओ,
कुछ पूजा यजन करो जिससे, इस मन में परम शांति पाओ।

उपर्युक्त संवादों में नाटकीयता की अपेक्षा नाट्य गीतात्मकता अधिक है। इसके अलावा कुणाल और कांचना तथा अशोक और कुणाल के बीच होनेवाले संवादों में नाटकीयता की अपेक्षा भावुकता अधिक झलकती है। द्विवेदी ने आत्मनिरीक्षण की

---

1. कुणाल - पृ.13

अपेक्षा आत्माभिव्यंजक भावमूलक शैली को अधिक ग्रहण किया है । किन्तु 'अनुताप' और 'प्रतिशोध' दोनों सर्ग मनोवैज्ञानिक है । "इनमें कार्य व्यापार सतह में न रह कर तलस्थ और मनोमय हो जाता है ।"[1] तिष्यरक्षिता की आत्मपीडा और मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए विश्लेषणात्मक शैली को ग्रहण किया गया है ।

मूढ़ मैं बन गयी एकांत ही चुपचाप,
व्यक्त करने चली अपना स्नेह अपने आप,
पाप है यह पूर्ण मण्डित, याकि अभिशप्त ताप ?
नियति निष्ठुर मैं भाल गई, थी तापना ।
:: :: ::
दोष किसका, मदन का, मनका, कि दैव-विधान ?
किया क्यों यों भाव इतने रूप का निर्माण ?
प्रश्न थी मैं ही स्वयं, उत्तर स्वयं अनजान,
हो गयी तन्मय न दुविधा का रहा कुछ ध्यान ?
बो चुकी हूँ बीज अपने पाप का यह आज,
फल न जाने कब लगे, मैं छूट नारी लाज ।[2]

इस संपूर्ण सर्ग में कवि ने तिरस्कृत नारी के मन की पीड़ा, शंका, क्षोभ, प्रतिशोधपूर्ण मानसिक संघर्ष का विश्लेषण किया है । इस अमूर्त घटनाओं का रंगमंच अन्तर्मन है । यों बीच-बीच में आत्मकथात्मक शैली के द्वारा काव्य में नाटकीय क्षणों को उत्पन्न किया गया है ।

---

1. कुणाल की भूमिका - पृ.3
2. कुणाल - पृ.15-16

'कुणाल' की अपेक्षा 'त्रिपथगा' में नाटकीयता अधिक मौजूद है । यहाँ प्रकृति को परिस्थिति-द्योतन के रूप में ग्रहण किया है । यहाँ कल्पनात्मकता की उपेक्षा करते हुए सीधे ही बात कही जाती है ।

त्रिदिव का विषम विधान देखकर
प्रकृति उदास मलीन हुई ।
देव लोक की नहीं, सभी जग की
शोभा थी क्षीण हुई ।
x x x x x x
आज अप्सरा किन्नरियों की
सुन पड़ती है तान नहीं,
वो भंगिमा नृत्य हास,
वह पहले की मुस्कान नहीं ।
देख रहे सुर एक दूसरे का मुख,
कहते पर नहीं कथा,
अम्लान कमल की पंखुरियों को
बिखराती थी मौन व्यथा[1] ।

कथा कहने के ढंग में परिवर्तन आया है । कथा को गतिशील बनाने के लिए स्वयं पात्र ही उपस्थित होते हैं । उनके संवादों द्वारा कथा आगे बढ़ती है । अमृत के पान से अमर बनने की प्रबल इच्छा से देवगण दैत्यों के पास जाते हैं । अब इन्द्र और बलि के संवादों द्वारा काव्य में गतिशीलता आती है -

---

1. त्रिपथगा - पृ. 1-3

कहा इन्द्र ने, दैत्य राज ।
हम आए यहाँ आज इससे
चलो आज अमृत संधान करें
सब अमर बनें, न मरें जिससे ।
बलि ने कहा इन्द्र से, "अब से
हम में तुम में संधि रही,
जब तक अमृत न मिले,
तब तलक जानें अंबर सिंधु मही[1] ।

समुद्र मंथन सर्ग में शेषनाग के मुख पकड़ने में दैत्यों और दानवों के बीच जो विवाद उत्पन्न होता है उसे अधिक सजीव बनाने केलिए कवि दैत्य को उपस्थित करते हैं -

बोले दैत्य, मूर्खता के मूल
क्या हम तुम से छोटे हैं
जो पकड़े हम पूँछ शेष की
क्या हम तुम से खोटे हैं ?
x x   x x   x x
हटो देवताओ । आओ तुम
हमें शीश को गहने दो,
तुम आकर यह पूँछ संभालो,
हमें न पीछे रहने दो[2] ।

---

1. विषपान - पृ.8-9
2. वही - पृ.24-25

अन्तिम सर्ग में काव्य की चरम घटना विष का पान जो कवि का अभीष्ट है, उसे अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने शंकर और सती के संवादों को ग्रहण किया है -

कहा शंभु ने - 'सती आज
मेरे जाने की वेला है,
आज विश्व जल रहा गरल में,
ठीक न अब अवहेला है
यदि न गया मैं अभी अभी तो
तो न रहेगा यह संसार
कालकूट के काल ज्वाल में
होगा भव का उपसंहार ।

सारा रहस्य समझते हुए सती ने कहा -

जाओ हे विश्वम्भर
आशुतोष औढ़र दानी ।
पियो गरल विष काल कूट तुम
कुछ भी हो परिणाम प्रभो
जिससे हो ये भव का मंगल ।

यों बिल्कुल नाटकीय ढ़ग से द्विवेदी ने अपने अभीष्ट को उद्घाटित किया है । इस दृष्टि से "वासवदत्ता" कथा-काव्य संकलन विशेष, विचारणीय है

1· विषपान - पृ·38-39

'वासवदत्ता' के "कर्ण और कुन्ति" तथा "कुणाल" को छोड़कर शेष सबमें वर्णनात्मक शैली को ही ग्रहण किया है। "वासवदत्ता" शीर्षक काव्य में संयोग के उस नाटकीय मुहूर्त को बिल्कुल नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। संयोग को उद्दीप्त करने के लिए बौद्धकालीन विलास वैभव को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया है। तत्पश्चात् कथा का आरम्भ होता है। कथा कहने की रीति बिल्कुल प्राचीन है। कवि ने श्रोता और वक्ता के बीच कथा कहने सुनने की परम्परागत शैली को ही ग्रहण किया है -

> एक दिवस,
> निर्जन में
> मधु ऋतु की संध्या में
> ×× ×× ××
> लज्जा से छुई-मुई बनती सिकुड़ती-सी
> बोली वीणा - वाणी में
> अतिथि देव।
> यौवन यह समर्पित पद पद्म में
> इसको स्वीकार करो,
> यह न तिरस्कार करो[1]।

यहाँ बुद्ध की प्रतिक्रिया में अनुभूति की तीव्रता नहीं, क्योंकि इसमें बाह्य घटनाओं को ही प्रमुखता दी गयी है। किन्तु उसके वर्णन में स्फूर्ति, ओज और वाग्मिता है। वासवदत्ता के समूचे काव्य में यही तत्त्व है। "वासवदत्ता" के समान "एक बूंद" और "उर्वशी" का काव्यारम्भ भी बिल्कुल प्राचीन रहा है।

---

1. वासवदत्ता - पृ. 2-3

एक बार -
ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा देश में
सभी पड़े क्लेश में[1] ।

फिर उर्वशी में -

एक बार
सभी सुर लोक में
सुरपति के ओक में
ऊर्ध्वगामी पुण्यमन, सौख्य सम...[2]।

कर्ण और कुन्ति तथा कुणाल का काव्यारम्भ इससे एकदम भिन्न है । इनमें वातावरण निर्माण के पश्चात स्वयं पात्र ही उपस्थित होकर कथा को गति प्रदान करता है । काव्य का आरम्भ नाटकीय ढंग से होता है । बिना किसी वर्णन या विवरण के कुन्ती के वार्तालाप से काव्य का आरम्भ होता है -

दानवीर कर्ण !
तेरे यश का कलश सुवर्ण
घूमता है अंबर दिगन्त,
शत्रु है विवर्ण,
देख तेरा बल-विक्रम, अतुल पराक्रम,
शक्र - सम ।
दान दे मुझे भी एक

---

1. वासवदत्ता - पृ.35
2. वही - पृ. 8

दान दिए हैं तू ने आज तक अनेक ।
जिनकी महिमा से हैं दिशाएं प्रतिध्वनित ।[1]

कुन्ती की उपस्थिति ही से पाठकों में जिज्ञासा उद्बुद्ध हो जाती है । किन्तु संवादों में स्फूर्ति या चुस्ती नहीं । संवाद अधिक व्याख्यात्मक बन गया है । कर्ण और कुन्ती का संवाद देखिए -

आह ! आज कैसे यहाँ तुम आई ।
क्यों आई ?
घोर गहन कानन में वन में निशीथ में
भय से जहाँ मौन हो खग, मृग, पशु-पक्षी सभी
तम का साम्राज्य जहाँ
स्वयं ही विभीषिका सजीव जहाँ डोलती है ।
तम में तमी चरों के भी मन में भय घोलती है ।[2]

व्याख्यात्मकता के कारण काव्य की सजीवता नष्ट हो गयी है । किन्तु प्रश्नात्मकता के कारण समस्त कथा में नाट्य तत्व अवश्य मिलता है । नवपरिणीता पत्नी से वियुक्त होते हुए सरदार चूड़ावत का वर्णन इसका प्रमाण है ।

जाते सरदार, हेरते थे मुड़-मुड़ अधीर,
उठती थी उर में रह-रह न जाने कौन पीर ।
रासशिथिल, चाल शिथिल, ढाल शिथिल,
हार और करवाल शिथिल,

---

1. वासवदत्ता - पृ॰26-27
2. वही - पृ॰17

अकुला था अब भी न,
स्वामी का मुख देख, रूप देख[1]।

इसके बावजूद कतिपय कथाओं के अन्त में वर्णन और व्याख्या के अतिरेक से काव्य का नाटकीय प्रभाव नष्ट हो गया है। "वासवदत्ता" में गौतम की अन्तिम परिचर्या, "चूड़ाकत" में कवि का उपसंहारात्मक वक्तव्य, "कर्ण और कुन्ती" में कर्ण का रण क्षेत्र की ओर प्रस्थान इसका साक्षी है।

वस्तुत: द्विवेदी जी ने 'वासवदत्ता' काव्य संकलन के द्वारा जीवन के किसी न किसी महत्वपूर्ण मुहूर्त का उद्घाटन किया है। खण्डकाव्य की गरिमा से च्युत होते हुए भी उसमें द्विवेदी जी का दृष्टिपथ विस्तृत और ग्रहण क्षमता सदा ही उदार रही है। द्विवेदी जी ने कथाकाव्यों की रचना सोद्देश्य किया है। उनकी रचनाओं का लक्ष्य किसी न किसी प्रकार के नैतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय आदर्शों की स्थापना है। इसीलिए उन्होंने इतिहास पुराण एवं कल्पना से विषय का चयन किया है।

द्विवेदी जी द्वारा गृहीत काव्य शैली

शैली का अर्थ है - चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा, वाक्य-रचना का विशिष्ट प्रकार आदि[2]। प्लेटो के अनुसार 'जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है[3]। शापन हावर के मतानुसार शैली आत्मा की मुखाकृति होती है[4]। द्विवेदी जी ने अपनी भावाभिव्य

---

1. वासवदत्ता - पृ.23
2. प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश - रामचन्द्र वर्मा
3. हिन्दी साहित्य कोश - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
4. Style is the physiognomy of the soul — Schopenhauer
Encyclopaedia Britannica

केलिए भिन्न-भिन्न शैलियों को ग्रहण किया है - वर्णनात्मक शैली, व्याख्यात्मक या आत्मपरक शैली, उद्बोधनात्मक शैली, प्रार्थना शैली, गीत शैली आदि ।

<u>वर्णनात्मक शैली</u>

द्विवेदीजी ने प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त फुटकल काव्यों में भी वर्णनात्मक शैली को स्थापित किया है । 'खेलता का सत्याग्रह', 'दण्डी-यात्रा', 'गांवों में', 'ग्रामवधू', 'ग्रामबालिका', आदि इस दृष्टि से विचारणीय है । द्विवेदी जी ने प्रतीकों, बिम्बों तथा अलंकार योजना से अपने शैली सामर्थ्य को अभिव्यक्त किया है । 'ग्राम कन्या' में द्विवेदी ने सांस्कृतिक बिंबों द्वारा भारतीय ग्रामीण युवति का जो मूर्त रूप उपस्थित किया है वह अधिक स्वाभाविक और यथार्थ बन गया है । ग्रामीण कन्या का शब्द चित्र देखिए -

गालों पर गुदना गुदा हुआ है नीला
कुछ बन्दे उसके चमक रहे हैं बढ़कर
रांगे की काली बिछियां हैं पावों में
हाथों में चूड़ी पड़ी लाख की पीली,
दो कांसे के हैं कड़े कड़े बाजू में ।[1]

भारतीय स्त्रियों का अंग में गोदना गुदाना तथा पावों में बिछिया और हाथ में लाख की चूड़ी पहनना आदि परम्परा चित्रित हो गया है । "कुणाल" में अशोक के रूप वर्णन में भी सांस्कृतिक बिम्ब का चयन हुआ है ।

---

1. चित्रा - मोहनलाल द्विवेदी - पृ.58-59

मस्तक पर अक्षत शुचि चन्दन, भुज दंडों पर मरकत कंकण,
कटि तट पीताम्बर का शोभन, मणिमुकुट शीश पर कमनीय[1] ।

मस्तक पर अक्षत, चंदन भुजदंडों पर मरकत कंकण और कटि-तट पर पीताम्बर धारण करना प्राचीन समय में प्रत्येक हिन्दू अपना पावन कर्तव्य समझता था । इसलिए वर्णन में स्वाभाविकता आयी है । अलावा इसके कृषकों एवं मज़दूरों के कुंठित जीवन की सही अभिव्यक्ति केलिए द्विवेदी ने सामाजिक बिम्ब का ग्रहण किया है । द्विवेदी की लेखनी का स्पर्श पाकर उनका सामाजिक जीवन अधिक मूर्तिमान बन गया है, देखिए -

दिन-रात सदा पिसते रहते -
कृषकों में औ मज़दूरों में ।
जिनको न नसीब नमक-रोटी
जीते रहते उन भूखों में ।
भूखे ही जो सो रहते -
विधना के निठुर विधानों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गाँवों में[2] ।
उन रात-रात भर, दिन-दिन भर ?
खेतों में चलते हलों में ।
दुपहर की घमा चमेली में -
सिरहा के सूखे झोंकों में ।
फिर भी होठों पर हँसी लिए -
मस्ती के मधुर भुलावों में ।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ -
वह बसा हमारे गाँवों में[2] ।

---

1. कुणाल - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.1
2. भैरवी - पृ.10

यहाँ वर्णन में न तो भाषा का अकुंठन है न भावों को व्यक्त करने के लिए व्यंजना और लक्षणा शक्तियों की ही आवश्यकता पड़ी है। शब्दों के अर्थ के साथ-साथ गाँव की गरीबी और सामाजिक अव्यवस्था का चित्र खड़ा हो गया है। वर्णन शैली में अधिक प्रांजलता और स्वाभाविकता आयी है। ऊपर रेखांकित पंक्ति में कवि ने ग्रामीण बोली को ही ग्रहण किया है। यहाँ भाषा सरलता की सीमा को स्पर्श करती है। फिर भी उसमें जिवंतता है, प्रवाह है। विधि के लिए विधना, निष्ठुर के लिए निठुर और नियम के लिए नियाव शब्द प्रयोग में ग्रामीण जीवन का स्पंदन है। वासवदत्ता में कवि की वर्णनात्मक प्रतिभा और भी अधिक उभर आयी है। वासवदत्ता का श्रृंगार वर्णन देखिए -

सुषमा की प्रतिमा,
एक तरुणी दिवांगना-सी
विधि की अनूप रचना-सी
सुन्दर प्रणय अभिलाषा-सी
मादक मदिरा-सी
मोहक चन्द्र कला-सी।[1]

यहाँ कवि ने छंद के बन्धन को तोड़ा है। किन्तु भाषा सौष्ठव से ऐसा प्रभाव और प्रवाह उत्पन्न कर दिया गया है कि पाठक पढ़कर भाव विभोर हो जाता है। मूर्त और अमूर्त दोनों के समन्वय से उसकी वर्णन शैली अधिक कलात्मक बन गयी है। 'कुणाल' में तिष्यरक्षिता के रूप-वर्णन में उपमानों की होड़ लगी है। उसको यौवन की मादक सुषमा-सी, मानस की मधुमय आशा सी, उसकी मादक अभिलाषा सी, रागारुण रंजित उषा, मधुर मिलन की संध्या सी, नयनों की नील

---

1. कुणाल - पृ०10

भाषा सी, सन्ध्या की नव परिभाषा सी, माधवी, मालती, शेफाली, बेला, रजनी गंधा, कुंदन, कंचन, चंपक तथा विद्युत की रेखा सी[1] चित्रित किया गया है। मालोपमा की यह सुन्दर योजना द्विवेदी जी की कलात्मक, निपुणता का अनूठा हस्ताक्षर है। 'लहरों के प्रति' शीर्षक कविता में द्विवेदी की विद्युत कला और भी खरी उतरी है। उसमें कवि ने लहर को अनेक उपमानों से लाद दिया है -

प्रणयी की मृदुल उमंगों - सी
सन्ध्या की सरस तरंगों-सी
अँधियारी में उजियाली-सी
सूखे वन में हरियाली-सी
तुम हो अतीत-सी मधुर कोमल
उषा की मादक लाली-सी[1]।

यहाँ अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमानों की योजना हुई है जिससे उनकी शैली में अधिक प्रभावोत्पादकता आयी है। साभिप्राय विशेषणों के विधान के साथ साथ मानवीय एवं प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के सायास चयन से द्विवेदी की वर्णन शैली में अधिक सजीवता एवं गतिशीलता आयी है। कुणाल के पास तिष्यरक्षिता के आगमन का वर्णन देखिए -

आयी कुणाल के पास तिष्यरक्षिता सजे सोलह श्रृंगार
रति चली मुग्ध करने जैसे उठे अंगों को ले उभार[2]।

---

1. विद्युत - पृ.44
2. कुणाल - पृ.43

रति जैसे अनंग को मुग्ध करने लगी उसी प्रकार तिष्य रक्षिता सोलह शृंगार करके कुणाल को मुग्ध करने लगी । यहाँ मूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान की संयोजना हुई है । द्विवेदी की वर्णनात्मक शैली लाक्षणिक वैचित्र्य से संपन्न है । निम्नलिखित पंक्तियों से द्विवेदी की नवीन अलंकरण पद्धति का परिचय मिलता है -

थी प्राचीर धैर्य-सी निर्मित

तथा

सर्द सी आहें भहरातीं
दीप्त उन्मत्त भाल ।

ऐसी अप्रस्तुत योजनाओं का उद्देश्य काव्य में रमणीयता की सृष्टि करना मात्र नहीं, बल्कि विषय को यथा संभव समग्रता में काव्य द्वारा प्रत्यांकित कर पाठक तक पहुँचाना होता है । मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग उसकी क्रिया, गुण व प्रभाव की समानता के आधार पर भी किया जाता है । कहीं कहीं इस प्रयत्न की अति ने काव्य की चित्रमयता को भी हर लिया है । नायिका का वर्णन देखिए -

मुस्कान की नव उपमा-सी
नायिका नवीन निरुपमा-सी
लावण्यमयी खिलनेवाली,
यौवन की मादक सुषमा सी
मानस की मधुमय आशा-सी,
उसकी मादक अभिलाषा-सी

---

1. कुणाल - पृ.19
2. वही - पृ.40

नयनों की मौन भाषा-सी
लज्जा की नव परिभाषा-सी[1] ।

यहाँ उपमा की एक माला ही दिखाई पड़ती है जो काव्य की भंगिमा को भी उभारनेवाली है । "विषपान" काव्य में समुद्र मंथन का वर्णन द्विवेदी ने बड़ी चित्ताकर्षक शैली में किया है । यहाँ उन्होंने उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग किया है -

यम तो चले साथ ही कितने
आज नए यमराज चले
महाकाव्य भीषण जैसे
काले पर्वत उठ आज चले[2] ।
××　　　××　　　××
मर मर करके उस अमृत की
सभी खोज करते जैसे,
जब तक मिलता अमृत नहीं,
सब पानी सा भरते जैसे[3] ।

उद्बोधनात्मक शैली

उत्साह और माधुर्य का संयोग इस शैली में वर्तमान है । राष्ट्रकवि होने की वजह से द्विवेदी जी ने उद्बोधनात्मक शैली को यथोचित ग्रहण किया है ।

---

1. कुणाल - पृ.40
2. विषपान - पृ.17,16
3. वही - पृ.14

इसके अन्तर्गत वे सभी रचनाएं आती हैं जो श्रमजीवियों और सैनिकों को सम्बोधित करके लिखी गयी है । "युगगीत" और "भैरवी" की अधिकांश रचनाएं इस प्रकार की हैं ।

आज युद्ध की बेला ।
बुझे मशाल न, तेल डाल लो,
अस्त्र शस्त्र अपने संभाल लो
है तोपें हुंकार भर रहीं ।
: : : : : :
कोटि कोटि मेरे सेनानी
देखें तुम में कितने पानी
अन्तिम विजय हार अपनी है ।
है यह अन्तिम बेला
आज युद्ध की बेला[1] ।

काव्य में ओज गुण लाने के लिए द्वित्व एवं संयुक्त वर्णों का प्रयोग किया गया है ।

खण्ड खण्ड भूखण्ड, खण्ड ब्रह्माण्ड
पिण्ड नभ में डोले,
मेरी मृत्युंजय की टोली
जय माँ की जयजय बोले[2] ।

---

1. भैरवी - पृ. 62
2. वही - पृ. 130

विषपान में देव-दैत्यों को समुद्र मंथन केलिए उद्बोधित करते हुए वस्तु चित्रों द्वारा द्विवेदी ने वीर रस उत्पन्न किया है -

तूरी फूंको, शंख बजाओ,
झांझ मृदंग मुरज ले गाओ,
डमरू में भयनाद उठाओ
प्राणों में हो नई लहर ।
बढ़े चलो हे अजर अमर[1] ।

द्विवेदी की उद्बोधनात्मक शैली में पौरुष-भावव्यंजित होता है । उनमें पौरुष के प्रति गहरा अनुराग है ।

युद्ध करोगे, प्रेम करोगे
क्रूर करोगे और सदय भी
प्रलय रचोगे और प्रणय भी[2] ।

भाषा पर द्विवेदी जी का पूर्ण अधिकार है । काव्य में ओज गुण लाने केलिए कहीं कहीं एक ही अर्थ के कई शब्दों का एक साथ प्रयोग करके दिखाया है -

चकित से, विस्मित से,
भ्रमित से, अवाक् से[3] ।

---

1. विषपान - पृ. 21
2. चित्रा - पृ. 86
3. वासवदत्ता - पृ. 3

प्रार्थना शैली

राष्ट्र कवि होने के कारण द्विवेदी जी के राष्ट्रीय गीतों में प्रार्थना शैली भी प्राप्त है । "पूजागीत" की वीणापाणी वर दो, अन्तस्तम में ज्योति भरो हे । अभय करो, अभय करो, अभय करो हे । आदि कविताओं में प्रार्थना शैली को ग्रहण किया गया है । प्रार्थना गीत विनय भाव से ओत प्रोत है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

अन्तस्तम में ज्योति भरो हे ।
जहाँ जहाँ नत मस्तक पाओ
वहाँ वहाँ मृदु चरण बढ़ाओ,
मेरे कोमलमय, दुर्बल पर
निज कर पल्लव सबल धरो हे ।
अन्तस्तम में ज्योति भरो हे[1] ।

रेखांकित पंक्तियाँ प्रार्थनापरक शैली का निदर्शन है । कवि, फिर वीणा पाणी से प्रार्थना करते हैं -

वीणा पाणी ! मुझे वर दो ।
गाऊँ मैं तुमें जग भव में,
बहे तिमिर किरणों के पथ में,
मेरे उर के तारों में वे
वो कड़ियाँ भर दो[2] ।

---

1. पूजागीत - पृ. 3
2. वही - पृ. 1

सम्बोधन शैली

"मेघदूत" तथा "लहरों के प्रति" शीर्षक कविताओं में कवि ने सम्बोधनात्मक शैली का प्रयोग किया है । "मेघदूत" में कवि मेघ को सम्बोधित करते हुए अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देते हैं -

कालिदास के विधुर यक्ष के
सहृदय दूत ! नील जलधर !
क्या तुम मुझको इतनी भिक्षा
दे न सकोगे करुणाकर ?
ले जाओ मेरे ये आंसू
बरसा दो उन चरणों में,
जीवन जिन पर चढ़ा दिया है
जिनकी कोमल किरणों में ।[1]

"लहरों के प्रति" में कवि लहरों को सम्बोधित करते हुए उस चिरंतन सत्य को उद्घाटित करते हैं कि जीवन अस्थिर है -

ऐ सुन्दरियों, जल की परियो !
यह कैसी केलि मचाती हो !
इठलाती हो बलखाती हो !
:: :: ::
पल में उठती पल में गिरती
यह कैसा है उत्थान-पतन ?
करती रहस्य का उद्घाटन
है ऐसा ही अस्थिर जीवन ।[2]

---

1. शिखा - पृ.39-40
2. वही -- पृ.45-46

आत्मपरक शैली

प्रेम, शोक, विरह आदि मानव जीवन के मूलभूत भावों को अभिव्यक्ति देने केलिए कवि ने आत्मपरक शैली को ही प्रधानता दिया है जिससे काव्य में भावुकता एवं अनुभूति की तीव्रता हो जाती है,

उस दिन पहुँचा मैं संध्या में
जब बैठी करुणा-समान,
ले पुष्प-भार, बिखरी अलकें
उन्मन उन्मन, मुख कांति म्लान ।
मैं उन्मद था अपने सुख में
देख सका न उसपर नमित ध्यान ।[1]

प्रेयसी की विरहातुर दशा का वर्णन देखिए -

आकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं
मुखर हो मौन जो
उस मौनता की तान हूँ मैं ।
दीप्त होकर बुझ चुकी,[2] उस
बुझे मन की आग हूँ मैं ।

---

1. वासन्ती - पृ. 90
2. शिखा - पृ. 33

प्रश्नवाचक शैली

कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए कहीं कहीं प्रश्न वाचक शैली को ग्रहण किया है । 'प्रभाती' में द्विवेदी सुप्त भारतीयों को प्रश्नवाचक शैली का जागरण गीत सुनाते हैं -

बोलो वे द्रोणाचार्य कहाँ ?
वह सूक्ष्म लक्ष्य-संधान कहाँ ?
हैं कहाँ वीर अर्जुन मेरे
गांडीव कहाँ है, बाण कहाँ ?
गीता-गायक वे कृष्ण कहाँ ?
वह वीर-धनुर्धर पार्थ कहाँ ?
है कुरुक्षेत्र सेना भी पर
वह शौर्य कहाँ, पुरुषार्थ कहाँ ?[1]

गीत-शैली

वासन्ती और चित्रा में द्विवेदी ने गीत शैली को ग्रहण किया है । उनकी गीत-शैली में भावना की सरसता एवं सरलतानुभावों की प्रतिध्वनि है । उनके गीतों में बाह्य और आन्तरिक संगीत दोनों एक साथ फूट पड़ती हैं । 'चित्रा' के 'मंदिर दीप', 'ग्रामवधू', 'ग्राम बालिका' आदि उच्च कोटि के गीति काव्य हैं । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

---

1. प्रभाती - पृ.10-11

आओ कर लो क्षण भर विराम
निर्झर झर-झर झरता रहता
अपनी अनंत धुन में विलीन,
रुक-रुक रुन झुन कर कह जाता
अपनी सुख दुःख गाथा नवीन[1] ।

गीत में अर्थ बोध होने केलिए द्विवेदी ने कहीं कहीं अर्थ ध्वन्यकारी की योजना की है । इससे काव्य में गति एवं लय आने के साथ अर्थ बोध भी होता है -

ये नूपुर की रुन झुन रुन झुन
ये पायल की छम छम छम छम[2] ।

रेखांकित ध्वनियों से नूपुर की रुन झुन तथा पायल की छम छम स्वर साकार हुआ है । द्विवेदी ने भाव के आन्तरिक संगीत के साथ साथ स्वर-लय आदि के बाह्य संगीत की योजना भी की है । उनके अधिकांश गीतों में अन्त्यानुप्रास का विधान हुआ है -

जब मैं कुछ गाती हूँ डर-डर
वे उसमें भर देते निज स्वर,
मेरे गायन सुन्दर-सुन्दर
उनमें पड़ जाता है अन्तर[3] ।

---

1. शिप्रा - पृ.18
2. भैरवी - पृ.20
3. शिप्रा - पृ.79

"मचली" शब्द प्रयोग के द्वारा द्विवेदी ने अनुराग और आस्वादन का अनूठा चित्र भी उपस्थित किया है -

'तुम किस ललना की ललित लली, तुम किस तड़ाग की कुमुद कली ?[1]
प्राणों में मधु बरसाती हो, लहरा लावण्य लता मचली ।

द्विवेदी ने अपने गीतों में संगीत के साथ साथ रूपकों एवं प्रतीकों द्वारा अनुभूति को अधिक सप्राण एवं सम्प्रेषणीय बनाया है । प्रतीक एक प्रकार से व्यंग्यार्थ का परिणत रूप है ।

चन्द्र मुस्काता अम्बर में, ओ शशि तुम भी मुस्काना ।
मधु वसन्त की खिली यामिनी, चुपके चुपके आ जाना ।[2]

शशि वासन्ती उन्माद के आरोपी साक्षी है । "शशि' शब्द प्रयोग के द्वारा अभिव्यक्ति में कलात्मकता एवं अनुभूति में तीव्रता आ गयी है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

कानन-कानन उपवन-उपवन,
खिले सुमन-दल, सुरभित कण-कण,
यह कैसी मद भरी पिकी ने
पंचम तान उठाई,
मधुकर आज वसन्त बधाई
कोमल आकुलता फैला दो
स्नेहालिंगन कुंज बनाओ[3] ।

---

1. वासन्ती - पृ.4
2. वही - पृ.4
3. वही - पृ.2

यहाँ कानन, उपवन, पिकी, मधुकर आदि शरीरी उन्माद के साक्षी हैं। बालुकाएँ, स्नेहालिंगन-कुंज उनके भावोन्माद की जान है जिससे गीत में सप्राणता आयी है।

गांधीवादी कवि होने की वजह से द्विवेदी की काव्य-कला में सरलता एवं सादगी ज्यादा झलकती है। फिर भी छायावादी युग से गुजरे कवि होने के कारण उनके काव्य में छायावादी मणि कुट्टिम शैली का प्रभाव कहीं कहीं देखा जाता है। निम्नलिखित गीत में मानवीकरण की सुन्दर योजना की है देखिए -

क्या तुम मेरे रूप बनोगे ?
मेरे नयन डोर पनघट के,
फिर छवि जल के कूप बनोगे ?
xx xx xx
मैं सिखला दूँ याचनाएँ
मैं सिखला दूँ कामनाएँ
प्रणय की शत कल्पनाएँ ।[1]

नयन डोर, पनघट और छविजल के कूप जैसे रूपक में याचना, कामना और कल्पना का मानवीकरण करते हुए द्विवेदी ने भाषा को अधिक कलात्मक बनाया है। 'कुणाल' में भी कई नवीन रूपकों का प्रयोग हुआ है।

बने कामना के पक्षीदल करने मधुमय कलरव
बनी वासना की कलिकायें बिखराने मधु वैभव,
xx xx xx

---

1. वासन्ती - पृ.

आँखों की नीलम घाटी में उगी नई दूर्वादल
चारु कपोलों की सरसी में लहरें लहरी कोमल ।
यौवन के रसाल-वन में मंजरी रूप की मादक
भरने लगी सुरभी तृण-तृण में विस्तृत सुख उन्मादक ।[1]

भाषा के चमत्कार केलिए द्विवेदी ने विशेषण विपर्यय, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । 'कुणाल' में यमक अलंकार का प्रयोग देखिए -

वह अशोक बन गया स्वयं ही,
पाकर पृथ्वी पाल अशोक

उत्प्रेक्षा का भी सुन्दर प्रयोग देखिए -

यम तो चले साथ ही कितने
आज नए यमराज चले
महाकाय भीषण जैसे
काले पर्वत उठ आज चले ।[2]
xx xx xx
मर मर करके उस अमृत की
सभी खोज करते जैसे,
जब तक मिलता अमृत नहीं,
सब पानी सा भरते जैसे ।[3]

---

1. कुणाल - पृ. 7
2. विषपान-पृ.17
3. वही -पृ.14

छन्द योजना

जो कार्य भावजगत में कल्पना का होता है, वही शब्द जगत में राग का होता है । द्विवेदी जी ने अपने गीतों को रागात्मक स्वरूप देने के लिए अधिकतर मुक्त छन्दों को ही ग्रहण किया है । किन्तु फिर भी उन्होंने हिन्दी के कतिपय प्रचलित छन्दों को ग्रहण किया है । इन में पीयूष वर्षण, रूपमाला, घनाक्षरी, पद्धरि, रोला, सवैया आदि प्रमुख है । वासवदत्ता में द्विवेदी ने घनाक्षरी छन्द का प्रयोग किया है । इस छन्द का एकमात्र आधार भाव-लय है । इसके अतिरिक्त मात्रा, वर्ण, यति, विराम, चरण संख्या आदि विषयक प्रतिबंध कवि ने स्वीकार नहीं किया है । भाव की गति, विराम, उत्थान-पतन के अनुसार छन्दों में वर्ण, यति, विराम, छोटी बड़ी पंक्ति आदि को उन्होंने ग्रहण किया ।

तीक्ष्ण खड्ग धार पर,
विक्रम अपार पर,
भिन्न भुज-दंड पर,
पौरुष प्रचंड पर ।[1]

इसमें कवित्त घनाक्षरी के बन्ध का आधार स्पष्ट है । कहीं कहीं कवि ने उक्त व्याधार न लेकर स्वतंत्र रूप से भाव के आरोह-अवरोह के आधार पर वर्ण संख्या, यति, विराम, अन्त्यांत, चरण-विस्तार आदि का नियमन किया है -

सुन्दरी चलीं विभावरी
सजकर मन हीर हार
मुक्ताहार

---

1. वासवदत्ता - पृ. 20

श्री-श्री की राग,
केसर, मृगमद-पराग,
मलयज, कुंकुम-सुहाग
अलक्त-चरण
नूपुर ध्वनि[1] ।

कुणाल में कवि ने रोला छंद का प्रयोग किया है ।

चर ले आशापत्र चला नभ में सकुचाता
वह मेरे ही हाथ पाप था लिखा विधाता ।
किसकी नियति कठोर ? नहीं कुछ वश है अपना
लाद शीश पर शिला, हमें आजीवन तपना[2] ।

<u>पद्धरि</u>

16 मात्राओं का सममात्रिक छन्द है । पद्धरि के चरणारम्भ में सममात्रिक लय आवश्यक मान लिया गया है । अन्त में "ज" का विधान दोनों में समान है । पद्धरि के ओजपूर्ण लय का सौन्दर्य वीर रस के प्रसंगों में ही पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो पाता है -

कोई धर देता मुकुट भाल,
फिर, वही छीन लेता कराल,
मानव पाकर भी दुख विशाल,
देखता सत्य का शुभ सकाल[3] ।

---

1. वासवदत्ता - पृ.12
2. कुणाल - पृ.28
3. वही - पृ.46

चौबीस मात्राओं के रोला छन्द को द्विवेदी जी ने नवीन ढंग से षट्पदी के रूप में प्रयुक्त किया है ।

आज मधु-ऋतु का मनोरम, प्रथम प्रथम प्रभात
लिए अभिनव गंध, मधु, सौरभ लता तृण-पात
हो चला था शिथिल कुछ कुछ, मलय मधु के भार
और कलिका में अभी, कुछ कुछ सुरभ संचार ।
दूर्वादल में अभी, कुछ कुछ हरा संभार,
और कुछ कुछ लगा होने, विपिन का शृंगार[1] ।

सार छन्द के अर्ध सम रूप का प्रयोग भी द्विवेदी जी ने किया है । इसकी प्रथम, तृतीय और द्वितीय, चतुर्थ पंक्तियों में क्रमशः सोलह पन्द्रह मात्राओं का प्रयोग हुआ है ।

बढ़े कहीं रजपूत युद्ध में
तो उर शंकित हो न कहीं,
कारो स्मरण तुम्हारा मुकुल
सकुचा संकुल हो न कहीं[2] ।

6 और 12 मात्राओं की समछन्द में कवि ने अपनी अनुभूति को बांधा है ।

---

1. कुणाल - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 66-67
2. प्रभाती- सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 15

शिर करतल ।
जय करतल ।
बलि करतल
जन करतल
क्षण भर क्षण
चल रे चल ।[1]

12 मात्राओं का समछन्द -

कर बंधन, उर बंधन,
तन बंधन, मन बंधन,
अविचल रण, अविरत प्रण,
रण रत प्रण, हो क्षण क्षण ।[2]

बत्तीस मात्राओं का मत्त सवैया छन्द का प्रयोग भी द्विवेदी के काव्य में होता है । सोलह सोलह मात्राओं पर यति इस छन्द की विशेषता है ।

आज उमड़ी आती है भीर, उड़ रही केसर कनक अबीर,
सजे हैं मङ्गल-घट गृहद्वार, आज आँखें हो रही अधीर ।[3]

द्विवेदी जी के शिल्प विधान में कई दोष भी प्रकट हुआ है । उन्होंने तुकों का बेढंगे प्रयोग किया है -

---

1. प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी - पृ.32
2. वही - पृ.32
3. कुणाल- पृ.77

अब हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गए आज भी बैरागी
उत्फुल्ल मधु मंदिर मस्जिद में
ये कैसी तरुण अरुण आगी[1] ।

कहीं कहीं उनके काव्य में लिंग, वचन दोष भी आते हैं -

माँ ने किया पुकार बढ़ाव
बढ़ा हुआ कुहराम
हमने देखा तुझे टहलते
सिक्खों के दरम्यान[2] ।

यहाँ "पुकार" के साथ क्रिया का रूप "किया" न होकर "की" होना चाहिए, क्योंकि पुकार स्त्रीलिंग है साथ ही छन्द के आग्रह के कारण "सीखों" को बिगाड़कर "सिक्खों" प्रयुक्त किया गया है ।

माताएँ छोड़ें पुत्रों को
पति को छोड़ें बालाएँ[3] ।

इसमें वचन दोष के कारण अर्थ ही हास्यास्पद हो गया है । साथ ही वह भारतीय संस्कृति और मर्यादावाद को कुंठित भी करता है । दूसरी पंक्ति से जो अर्थ निकलता है वह कवि की शिल्प सम्बन्धी असावधानी का द्योतक है ।

---

1. भैरवी - सोहनलाल द्विवेदी - पृ. 34
2. वही -91
3. वही 123

धूम केतु चमके-चमके शनि
चमके राहु ग्रास घन-घन
होने युद्ध बारहों केन्द्रस्त
विकल करें रव दिग्मंडल[1] ।

कतिपय स्थानों में अनुपयुक्त सादृश्य योजना से रसात्मक असामंजस्य भी आ गयी है ।

आहें भीतर जा रही थीं
जिस गौरव का मन रहा सूख
लग गया पेट था पीठी से
मानव हड्डी का खड़ा स्तूप[2] ।

स्तूप की उपमा दुर्बल और कंकाल व्यक्ति के सन्दर्भ में बिल्कुल अनुपयुक्त है ।

निष्कर्ष

द्विवेदी की भाषा व्यक्तिवादी कुण्ठा तथा छायावादी कामुकता से बिल्कुल अछूती है । सर्वग्राह्यता, सरलता एवं संस्कारिता उनकी भाषा की सब से बड़ी खूबी है । संस्कारशीलता उनके शब्द शब्द से झाँकती है । भाव के समान भाषा में भी भारतीय संस्कृति की गन्ध है । भाषा में ग्राम की प्रांजलता तथा नगर की संस्कारिता का जो सामंजस्य हुआ है भावात्मक एकता केलिए स्वस्थ भूमिका का प्रदान करती है । भाषा की सर्वजन-बोधगम्यता हिन्दी साहित्य को द्विवेदी की ही दुर्लभ देन है ।

अध्याय - आठ

उपसंहार

अध्याय - आठ

उपसंहार

द्विवेदी का योगदान

पिछले अध्यायों में द्विवेदीजी की रचनाओं का विभिन्न कोणों से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्याय में उपर्युक्त अध्ययनों से उपलब्ध निष्कर्षों के आधार पर उनके योगदान तथा उनकी सार्थकता पर प्रकाश डाला जाएगा ।

बीसवीं शताब्दी के जिन कवियों ने युग की माँग की पूर्ति केलिए अपनी साहित्यिक संपदा से मानव मन को जागरित किया है उनमें सोहनलाल द्विवेदी का महत्वपूर्ण स्थान है । द्विवेदी जी के रचनाकाल के बीच हिन्दी कविता में अनेक आन्दोलनों का उद्भव और विकास हुआ है । किन्तु फिर भी वे इन सभी आन्दोलनों के समानान्तर एक तपस्वी की भाँति राष्ट्रीयता की भाव-भागीरथि बहाते रहे । अर्थात् द्विवेदी जी का भाव-बोध किसी आन्दोलन विशेष से संबन्धित नहीं । यह उनके अन्तःकरण से स्वतः निःसृत हुई है ।

उन्होंने अतीत की गौरव गाथाओं के बावजूद वर्तमान समाज और वर्तमान विचारों की अनुभूति भाव-भूमियों का आलिंगन करते हुए राष्ट्रीय विचारों को एक नया मोड़ दिया । इस से वे हिन्दी साहित्य का एक अभिन्न अंग बन चुके हैं । निष्कर्ष: द्विवेदी जी की देन निम्नांकित श्रेणियों में बाँट सकते हैं, उन्होंने देश प्रेम की व्यापक परिभाषा दी, कविता का राजनीतिकरण किया, गांधी विचारधारा की सही अभिव्यक्ति की, परम्परा और मूल्यों का अन्वेषण किया तथा मानवतावाद की प्रतिष्ठा भी की ।

द्विवेदी जी ने देश प्रेम सम्बन्धी हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्थानवाली प्राचीन पिटी-पिटाई मान्यता को दूर फेंक दिया । अर्थात् उन्होंने राष्ट्रीयता या देश प्रेम सम्बन्धी परम्परागत रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा साम्प्रदायिकता को समाप्त किया । अपने युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में उभरे सत्य को ग्रहण करके मानव जीवन के उदात्त मूल्यों के प्रति प्रेरित किया, उनको सुख शान्ति एवं स्वतंत्रता केलिए प्रेरित करनेवाले एक व्यापक भाव-बोध के रूप में देश प्रेम की व्याख्या की ।

देश प्रेम को व्यापक-भूमिका प्रदान करने या युग चेतना को जागरित करने के यत्न में द्विवेदी ने अपनी रचनाओं में राजनीतिक चेतना को अधिक स्थान दिया । क्योंकि उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक सीमित नहीं । वह सामाजिक होती जाती है । उन्होंने अपने युगीन राजनीतिक घटनाओं को वाणी देते हुए युग को जगाया । द्विवेदी जी की रचनाएँ गांधी युग की

राजनीतिक चेतना से समन्वित है। उसमें राष्ट्र की असन्तोषपूर्ण आर्थिक दशा, किसानों और मज़दूरों के निरन्तर शोषण की कहानी का मार्मिक चित्रण है। अलावा इसके गांधीजी ने जिस आध्यात्म को और राजनीति का एकीकरण चाहा वही एकीकरण की प्रवृत्ति द्विवेदी में भी है। गांधीजी के जैसे ही द्विवेदी ने अपनी रचनाओं द्वारा यह घोषित किया है कि अहिंसा से मण्डित सत्याग्रह ही स्वराज्य प्राप्ति तथा मानव मुक्ति का एकमात्र सहारा है। इसलिए राजनीतिक स्तर पर किए गए गांधी जी के असहयोग आन्दोलन, उपवास आदि को अभिव्यक्ति देकर उन्होंने गांधीजी के राजनीतिक विचारों का सही पैमाने में आकलन किया है। इस दृष्टि से द्विवेदी की दण्डी-यात्रा, उपवास, सत्याग्रह, अहिंसा/अवतरण, अर्ध-नग्न, खादी-गीत, किसानों के प्रति [जिसमें चम्पारन, खेड़ा और बारडोली में हुए किसानों के शक्तिपूर्ण आन्दोलन का उल्लेख है] आदि विशेष उल्लेखनीय है। उनके काव्य में गांधीयुगीन स्वातंत्र्य आन्दोलन की समग्र झांकी देखी जा सकती है। उन्होंने अहिंसात्मक जनक्रान्ति के द्वारा राष्ट्र के कल्याण का दर्शन कराया। इसके अलावा स्वतंत्रता केलिए अर्पित बलिदानों का मूल्यांकन करते हुए जनता में सत्याग्रह के भाव भरने का प्रयास किया।

द्विवेदी जी की राष्ट्रीयता राजनीति की अपेक्षा नैतिक अधिक है। उन्होंने मानव की पूर्ण मुक्ति केलिए समाज की विकृत परम्पराओं जैसे - साम्प्रदायिकता अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को दूर करने की रीतियाँ अपनाई हैं। देश में व्याप्त साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त कर धर्म, जाति और समाज में एकता स्थापित करने में गांधीजी कृत संकल्प थे। द्विवेदी जी इस एकसूत्रता को ही राष्ट्रीयता मानते हैं। उन्होंने "प्रार्थना", 'हम हिन्दू और मुसलमान', जैसी अनेक कविताओं द्वारा छुआछूत को समाप्त कर आपस में भाई-चारा स्थापित करने का आदेश दिया है। वे देश का कल्याण समस्त जातियों की एकता में देखते हैं।

उन्होंने समाज के उपेक्षित नारियों के प्रति भी सहानुभूति दिखाई है। वे अनुभव करते हैं कि जब तक नारी का चाहे वह वेश्या ही हो, जब तक उसका उद्धार नहीं होता तब तक राष्ट्र का कष्ट-निवारण नहीं होता। उन्हें गले लगाकर संयम की शिक्षा देकर सुधारना ही वे हमारा कर्त्तव्य मानते थे। राजस्थान की हाड़ी रानी, कुणाल पत्नी कांचना जैसे नारी पात्रों द्वारा कवि ने नारी जागरण की आवश्यकता पर जोर दिया है। ये सब गांधीजी के आदर्श समाज की आदर्श नारियां हैं। वे स्त्रियों को पुरुषों के कर्तव्य मार्ग में रोड़े के रूप में नहीं देखना चाहते। ये नारियां स्वतंत्रता की पक्षपाती हैं।

आधुनिक युग की एक प्रमुख विचारधारा है मानवतावाद। द्विवेदी जी ने इस मानवतावादी दृष्टिकोण को पूर्णत: आत्मसात किया है। उनकी रचनाओं के प्रमुख पात्र इसका साक्षी हैं। "कुणाल" खण्डकाव्य के नायक कुणाल, "वासवदत्ता" एवं "गृहत्याग" के नायक भगवान बुद्ध, 'भिक्षा प्राप्ति' की नायिका भिक्षुकी, "एक बूंद" का अकेला बूंद और "विषपान" में लोक-रक्षा के लिए विष का पान करनेवाला भगवान शंकर लोक-सेवा को अपने सबसे बड़ा धर्म और जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य मानते हैं। इस सन्दर्भ में कतिपय स्थानों पर कवि ने देवता को मानव के रूप में चित्रित करते हुए मानव और मानवता की प्रतिष्ठा का महान कार्य किया है। वस्तुत: सोहनलाल द्विवेदी ने गांधी के भावात्मक एकता को महत् व्यक्तित्व के चयन द्वारा स्वस्थ काव्य लोक तथा यथार्थ जीवन दृष्टि का सृजन किया है। उनकी इन रचनाओं के बीच से ही भावी पीढ़ियाँ अपने सही रास्ता दर्शायेंगी।

द्विवेदी ने पारम्परिक मूल्यों तथा राजनीति का समन्वय करके अपनी रचनात्मक कृती को उद्घाटित किया है। उन्होंने अपने परम्परागत उच्च सांस्कृतिक मूल्यों जैसे - सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, समन्वय, आदर्शोन्मुखता,

तथा कर्मठता को पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक पात्रों तथा परिवेश द्वारा संवारते हुए राजनीतिक मुक्ति केलिए अनिवार्य बताया है । साथ ही साथ मूल्य-च्युति के इस युग में उन परम्परागत मूल्यों के अन्वेषण केलिए आदेश देते हैं और उनका पुन:स्थापन की अनिवार्यता की ओर संकेत करते हैं । कुणाल खण्डकाव्य में उन्होंने कुणाल के चरित्र के पारम्परिक मूल्यों तथा सम्राट अशोक के शासनकाल की राजनीतिक गतिविधियों का समन्वय करके प्रस्तुत तथ्य का उद्घाटन किया है । राष्ट्रीयता की लक्ष्मण-रेखाओं के बाहर भी उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें मूल्यों केलिए विशेष आग्रह है ।

सार्थकता के पहलू

जीवित व्यक्तियों की सार्थकता व निरर्थकता पर निरंकुश निर्णय लेना साहसपूर्ण कार्य है । किन्तु फिर भी कभी कभी ऐसा करना पड़ता है । इसलिए इस निर्णय की पूर्णता व अपूर्णता पर प्रश्न चिह्न डालना तर्कसंगत नहीं है ।

द्विवेदी जी एक सफल कवि, देश-प्रेमी, जननायक, सम्पादक, अनासक्त-कर्म योगी एवं भारतीय संस्कृति के उपासक के रूप में आज हमारे बीच जीवित है । उनका रचनाकाल छायावाद युग से लेकर अब भी जारी रहता है । इस दीर्घ कालावधि के उनके रचनात्मक व्यक्तित्व की आलोचना करते समय उनकी सार्थकता के कुछ पहलू उभर आते हैं । ये हैं उनकी प्रतिबद्धता और भाषागत सरलता एवं सुबोधता जो काव्य को चिरंतनता प्रदान करती हैं ।

समय के परिवर्तन के साथ कविता बदलती है । यह एक शाश्वत सत्य है । कविता का स्वयं परिवर्तित होना भी एक अनिवार्यता है । यह एक प्रगतिशील समाज तथा साहित्य के प्रति एक प्रतिबद्ध साहित्यकार की प्रतिक्रिया का परिणाम है । कहने का मतलब यह है कि द्विवेदी जी छायावाद युग में

अवतीर्ण कवि है । इसी वजह से उन्होंने स्वच्छन्द छायावादी गीतों की भी रचना की है । पर छायावादी उत्कर्ष युग में मान्य काव्य सिद्धांतों के बावजूद भी उन्होंने अपना रास्ता अपनाया । यह समय के साथ उनकी प्रतिक्रिया है । उस समय हिन्दी कविता रीतिकालिक प्रवृत्ति से मुक्त होकर हिन्दी की अपनी बन जाती थी । छायावाद की बड़ी गहराइयों के बावजूद भी उन्होंने जो रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया वह समय के अनुकूल था । एक कवि के अपने समय के अनुकूल पढ़ना उनकी सब से बड़ी सफलता है । कालातीत मूल्यों से उनका कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं । छायावाद के अनुरूप उनका व्यक्तित्व विकसित नहीं हुआ है । पौराणिक विषयों पर रचना करते समय कभी भी वह अतीत का स्पर्श नहीं करता । अतीत उनकेलिए ऐसा धरोहर है जहाँ से वे स्वयं ऐसे मूल्यों को अपनाते हैं जो अपने ज़माने केलिए अनिवार्य समझते हैं ।

भारतीयता के प्रति अटल आस्था उनकी लोकप्रियता एवं प्रभाव का एक दूसरा वजह है । उनकी रचनाओं का मूल स्रोत भारत की गौरवशाली परम्पराएँ, मानदंड और आस्थाएँ हैं जिनका विश्वसाहित्य में आज भी अपना अलग अस्तित्व है । मिट्टी की गंध से सराबोर उनकी रचनाएँ एवं व्यक्तित्व व्यापक प्रभाव प्राप्त कर चुका है, यद्यपि अति आदर्शवादिता उनके प्रभाव एवं प्रवाह में बाधक बन गया है जो व्यावहारिक स्तर पर लागू नहीं हो सकते ।

हिन्दी राष्ट्रीय-काव्य तथा बालकाव्य जगत के उत्तुंग प्रतिभावान व्यक्तित्व के रूप में उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा । निश्चय ही आनेवाली पीढ़ियाँ द्विवेदी जी की साहित्यिक उपलब्धियों केलिए चिर ऋणी रहेंगी ।

****

परिशिष्ट

परिशिष्ट

जन्म	1906	फाल्गुन शुक्ल, संवत् 1962 विक्रमीय, बिन्दकी, फतेहपुर जिला, उत्तर प्रदेश ।
शिक्षा	1921	एंग्लो हाई स्कूल फतेहपुर में प्रवेश ।
	1925	गवर्नमेण्ट हाई स्कूल फतेहपुर से हाई स्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण ।
	1930	हिन्दू युनिवर्सिटी बनारस से बी॰ए॰ परीक्षा उत्तीर्ण
	1933	हिन्दू युनिवर्सिटी बनारस से एम॰ए॰एल॰एल॰बी॰ परीक्षा उत्तीर्ण ।
	1935	एडवोकेट की ट्रेनिंग समाप्त ।
सार्वजनिक जीवन		
	1936	जिला परिषद फतेहपुर के सदस्य निर्वाचित ।
	1938-44	लखनऊ से प्रकाशित प्रथम राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक "अधिकार" का सम्पादन ।
	1944	गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन एवं महात्मा गांधी को उनकी हीरक जयन्ती के अवसर पर 10,000/- रु॰ की चेक महादेव देसाई के स्मारक केलिए समर्पण ।
	1957-67	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित 'बालभारती' का सम्पादन ।
	1962	भारत सरकार द्वारा नेपाल भेजे गए शिष्टमंडल का नेतृत्व ।

1964 नगरपालिका बिन्दकी के अध्यक्ष निर्वाचित ।

1969 राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर द्वारा सर्वोत्तम उपाधि "साहित्य चूडामणि" से विभूषित ।

1969 14 सितम्बर हिन्दी दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश के उपशिक्षा निर्देशक श्री कान्ती प्रसाद सकलानी द्वारा आयोजित विशेष समारोह में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी एवं डॉ॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित अभिनन्दन ग्रन्थ "एक कवि एक देश" - समर्पित ।

1970 गणतंत्र दिवस के उपलक्ष में राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री अलंकरण से अलंकृत ।

1975 कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी॰लिट्॰ की उपाधि से विभूषित ।

1980 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से विशिष्ट दीर्घकालीन साहित्य रचना और हिन्दी सेवा केलिए पन्द्रह हज़ार रूपये की धनराशी देकर सम्मानित ।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

सृजनात्मक साहित्य - हिन्दी

सोहनलाल द्विवेदी की रचनाएँ

1.	कुणाल	ज्ञान भारती, दिल्ली ।
2.	गान्धायन	साहित्य भवन,प्रा०लिमिटेड, इलाहाबाद ।
3.	गौरव गीत	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली ।
4.	चित्रा	इण्डियन प्रेस,प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।
5.	चेतना	"
6.	जय गान्धी	"
7.	जय भारत जय	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली ।
8.	तितली रानी	ज्ञानभारती, दिल्ली ।
9.	तुलसीदल	मानस संगम, कानपुर ।
10.	दस कहानियाँ	इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।
11.	दूध बताशा	"
12.	नेहरू चाचा	"
13.	पूजागीत	"
14.	प्रभाती	साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।
15.	बच्चों के बापू	इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।
16.	बाँसुरी	"
17.	भैरवी	"
18.	मुक्तिगंधा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
19.	यह मेरा हिन्दुस्तान है	साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।
20.	युगाधार	इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद ।

21॰	बालकवस्ता	इण्डियन प्रेस प्रा॰ लिमिटेड, प्रयाग।
22॰	बालरश्मी	इण्डियन प्रेस प्रा॰ लिमिटेड, इलाहाबाद।
23॰	विषपान	..
24॰	शिशुगीत	प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, पाटियाला हाउस, नई दिल्ली।
25॰	हम बालवीर	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
26॰	हुआ सवेरा उठो उठो	शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
27॰	गांधी शतदल	संपादक-सोहनलाल द्विवेदी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
28॰	अशोक के फूल	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
29॰	उत्तरा	सुमित्रानंदन पन्त, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
30॰	एकांत गीत	बच्चन, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
31॰	कुंकुम	बालकृष्ण शर्मा नवीन
32॰	गीतिका	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
33॰	चक्रवाल	दिनकर, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना
34॰	झरना	जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
35॰	त्रिधारा	माखनलाल चतुर्वेदी।
36॰	तृप्यन्ताम्	प्रतापनारायण मिश्र।
37॰	द्विवेदी काव्यमाला	
38॰	नीहार	महादेवी वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।
39॰	परिमल	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ
40॰	पल्लव	सुमित्रानंदन पन्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

41.	प्रवासी के गीत	नरेन्द्रशर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग ।
42.	प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी ।
43.	प्रेमघन-सर्वस्व	प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
44.	बापू	सियाराम शरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
45.	भारत-गान	रामनरेश त्रिपाठी
46.	भगवद्गीता	राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली ।
47.	भारत-गीत	श्रीधर पाठक
48.	भारत-भारती	मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव ।
49.	भारतेन्दु-ग्रन्थावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
50.	मंगलघट	मैथिलीशरण गुप्त
51.	मधुशाला	बच्चन, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली ।
52.	मौर्य-विजय	सियाराम शरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।
53.	मुकुल	सुभद्राकुमारी चौहान, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
54.	युगवाणी	सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
55.	युगान्त	सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग ।

56. रामचरित मानस — अयोध्याकाण्ड - इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

57. राष्ट्रीय-वीणा — रामचरित उपाध्याय

58. लहर — भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

59. विरह-वेदना — मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।

60. श्रान्त-पथिक — श्रीधर पाठक

61. साकेत — मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी ।

62. सान्ध्यगीत — महादेवी वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

63. हंसमाला — नरेन्द्र शर्मा, भारती भंडार, प्रयाग

64. हल्दी घाटी — श्यामनारायण पाण्डेय, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

65. हिमकिरीटिनी — माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग ।

66. हिन्द-वन्दना — श्रीधर पाठक

67. हुंकार — दिनकर, उदयाचल, पटना ।

आलोचनात्मक ग्रन्थ - हिन्दी

68. अहिंसा दर्शन — धनभद्र जैन

69. आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन : इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी भवन, इलाहाबाद ।

70. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य-विषय और शिल्प - जीवन प्रकाश जोशी, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-7

71· आधुनिक कविता में चित्रविधान — रामरतन सिंह भ्रमर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

72· आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प — डॉ· कैलाश वाजपेयी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

73· आत्मकथा — महात्मा गांधी, अनु· काशीनाथ [illegible], त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद ।

74· आधुनिकता और राष्ट्रीयता — राजमल बोरा, मनिषा प्रकाशन 6, आनंदनगर, टाउन हाल, औरंगाबाद ।

75· आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ — डॉ· नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

76· आधुनिक साहित्य — नन्ददुलारे वाजपेयी, साहित्य भवन, प्रा·लिमिटेड, इलाहाबाद ।

77· एक कवि एक देश — — — सोहनलाल द्विवेदी का अभिनन्दन ग्रन्थ

78· काव्य के इतिहास पुरुष सोहनलाल द्विवेदी — अमर बहादुर सिंह अमरेश, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी ।

79· काव्य के रूप — गुलाबराय, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली ।

80· कांग्रेस का इतिहास — हरिभाऊ उपाध्याय

81· गांधीविचार धारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव — डॉ· अरविन्द जोशी जवाहर पुस्तकालय, मथुरा ।

82. गांधी ग्रन्थमाला

83. गांधी साहित्य — सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली ।

84. गांधी विचार दोहन — नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद ।

85. जीवन और काव्य — महादेवी वर्मा

86. छायावादोत्तर काव्य — सिद्धेश्वर प्रसाद

87. छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत — विनोद गोदरे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

88. नया साहित्य नए प्रश्न — नन्ददुलारे वाजपेयी, विद्यामन्दिर, वाराणसी ।

89. नवजागरण और छायावाद — महेन्द्रनाथ राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अंसारी रोड, दिल्ली ।

90. नया हिन्दी काव्य और विवेचन — शंभुनाथ चतुर्वेदी, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक, वाराणसी ।

91. प्रकृति और काव्य — डॉ. रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली ।

92. बाल साहित्य लक्ष्य और हमारा कर्तव्य - डॉ. रामकुमार वर्मा

93. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा — बाबू गुलाबराय, किताबघर, ग्वालियर

94. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी साहित्य - डा.. कीर्तिलता, हिन्दुस्तानी एकादमी, इलाहाबाद ।

95. भारतेन्दुकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - कमला कनोडिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।

96. मानवमूल्य और साहित्य — धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

97. महादेवी — इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

98. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य - डॉ॰ कमलाकान्त पाठक, रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स हाउस, दिल्ली ।

99. मेरे सपनों का भारत — महात्मा गांधी

100. विचार और वितर्क — हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, प्रा॰लि इलाहाबाद ।

101. विचार और विवेचन — डॉ॰ नगेन्द्र, नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

102. विवेचनात्मक गद्य — महादेवी वर्मा ।

103. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ कवि राज, अनु॰डॉ॰ सत्यव्रतसिंह, चौखम्भ विद्याभवन, वाराणसी ।

104. सत्यार्थ प्रकाश — दयानन्द सरस्वती, आर्य साहित्य भवन, दिल्ली ।

105. साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ — शिवकुमार मिश्र, कला प्रकाशन, दिल्ली ।

106. संस्कृति के चार अध्याय — रामधारीसिंह दिनकर, उदयाचल, पाटना ।

107. साकेत एक अध्ययन — डॉ॰नगेन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।

108. स्वतंत्रता और संस्कृति — डॉ॰ राधाकृष्णन, अनु॰ विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी ।

109. हिन्दी कविता में युगान्तर — डॉ॰ सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

110· हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-नवम भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

111· हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा ।

112· हमारे राष्ट्र निर्माता — सत्यकाम विद्यालंकार, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

113· हिन्दी राष्ट्रीय काव्य धारा — डॉ· लक्ष्मीनारायण दुबे, विद्यालय प्रकाशन, छतरपुर ।

114· हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन — डॉ· हरिकृष्ण देवसरे, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

115· हिन्दी काव्य शैलियों का विकास — डॉ· हरदेव बाहरी, भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

हिन्दी कोश

116· मानक हिन्दी कोश — रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

117· बृहद् हिन्दी कोश — कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ।

118· हिन्दी साहित्य कोश — ब्रजेश्वर शर्मा - भाग - 1,

119· हिन्दी साहित्य कोश — धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ।

120·

अंग्रेजी ग्रन्थ

120. An Autobiography or the Story of My Experiments with truth
M.K. GANDHI? Translated by Mahadev Desai
Navajeevan Publishing House, Ahammadabad.

121. A Critical Approach to Childrens Literature
Lillian Smith

122. A Readers Guide to Literary Terms
Karl Beckson & Arthur Ganz.

123. Books Children and Men - Paul Hazard

124. Comprehensive English Hindi Dictionary - Dr. Raghuveera Ed.1955

125. Culture and Anarchy - Mathew Arnold

126. Discovery of India - Jawaharlal Nehru, Asia Publishing, Bombay.

127. Eighteen Fifty Seven - Surendranath Sen, Govt. of India Publication

128. Encyclopeadia Britanica - Chopen Hawr, Vol.21, London

129. Glories of India - P.K. Acharya

130. Gandhian Values and 20th Centuary Challenges
J.D. Sethi, Publication Dvn. Govt. of India, Delhi.

131. History of Freedom Movement in India - R.C.Majumdar
Firma K.L. Mukhopadhyay, Culcutta

132. Indian Liberalism - V.V.Naik

133. Memoirs of My Life and Times - Paul, B.C. Vol.2

134. Modern Poetry - Herbert Read-London

135. Mental and Physical Growth of Children - Peter Sandiford

136. Mahatma Gandhi - Romain Rolland, Publication Division, Govt. of India, Delhi.

137. Nationality in History - J. Holland Rose

138. Oxford Junior Encyclopaedia Vol. 12, London

139. Poetry and politics - C.M. Boura, Cambridge University Press, London

140. Poets on poetry - Charles Norman, The Free Press, New York

141. Students English Sanskrit Dictionary -V.S. Apte Edn. 3rd Prasad Prakasan, Poona.

142. Society An Introductory Analysis - R.M. Maciver & Charles, H. Page, Macmillan, Delhi

143. The prophets of New India - Roman Rolland.

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

बालसखा - जून, 1946

गवाह - बालसाहित्य विशेषांक, अक्तूबर 1979, मार्च 1980

बाल समस्या विशेषांक - 1980

शिक्षा - जनवरी, 1961

हरिजन सेवक - सं॰ महात्मागांधी

बालसखा - जून, 1946, अक्तूबर, 1940

शिशु - जून, 1929

यंग इंडिया - सं॰ महात्मागांधी

हिन्दी नवजीवन - सं॰ महात्मागांधी

गांधी मार्ग - सं॰ श्रीमन्नारायण अग्रवाल

डी॰ए॰वी॰ कालिज जुबिली कमेमोरेशन, वॉल्यूम - 1936

xxxxxxxxxx